GEPA- 02

भारतीय प्रशासन

Indian Administration

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139
फोन नं0- 05946- 261122, 261123
टॉल फ्री नं0- 18001804025
ई0 मेल- info@uou.ac.in
वैबसाईट- http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे निदेशक- समाज विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर अल्का धमेजा, लोक प्रशासन विभाग इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रोफेसर उमा मैदुरी, लोक प्रशासन विभाग इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली	प्रोफेसर बी0 अरूण कुमार, लोक प्रशासन विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान
डॉ0 घनश्याम जोशी (असिस्टेन्ट प्रोफेसर) लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्री सुमित सिंह (असिस्टेन्ट प्रोफेसर- एसी) लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
श्री शुभांकर शुक्ला (असिस्टेन्ट प्रोफेसर- एसी) लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्री प्रमोद चन्याल (असिस्टेन्ट प्रोफेसर- एसी) लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
पाठ्यक्रम संकलन और सम्पादन डॉ0 घनश्याम जोशी(असिस्टेन्ट प्रोफेसर) कार्यक्रम समन्वयक, लोक प्रशासन लोक प्रशासन विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ0 सूर्यभान सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	1, 2, 3,4,5,6
डॉ 0 सुशील सिंह चौहान	7, 8
डॉ0 संतोष सिंह राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, मगलौर, हरिद्वार, उत्तराखण्ड	9
डॉ0 संतोष सिंह राजनीति विज्ञान विभाग, चौरी बेलहा महाविद्यालय, तरवा, आजमगढ, उत्तर प्रदेश	10
डॉ0 घनश्याम जोशी, लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	11, 12, 13

प्रकाशन वर्ष- 2023

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशक निदेशालय- अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अनुक्रम

खण्ड- 1 भारतीय प्रशासन	
1. भारतीय प्रशासन का विकास	1 – 16
2. भारतीय प्रशासन की विशेषताऐं	17 – 24
3. भारतीय संविधान की विशेषताऐं	25 – 32
खण्ड- 2 संघीय शासन	
4. राष्ट्रपति	33 – 46
5. प्रधानमंत्री, मन्त्रिपरिषद	47 – 53
6. केन्द्रीय सचिवालय, मन्त्रिमंडलीय सचिवालय , प्रधानमंत्री सचिवालय	54 – 66
खण्ड- 3 राज्य शासन	
7. राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मन्त्री-परिषद	67 – 81
8. राज्य सचिवालय, मुख्य सचिव	82 – 94
खण्ड- 4 स्थानीय शासन- पंचायती राज	
9. स्थानीय शासन: परिचय, भूमिका, महत्व	95 – 102
10. बलवंत राय मेहता समिति, प्रतिवेदन एवं त्रीस्तरीय व्यवस्था	103 – 113
11. पंचायती राज का 73वां संविधान संशोधन	114 – 125
खण्ड- 5 स्थानीय शासन- नगरीय शासन	
12. नगरीय शासन का विकास	126 – 138
13. 74वां संविधान संशोधन एवं नगरीय शासन का आधुनिक परिप्रेक्ष्य	139 – 151

इकाई-1 भारतीय प्रशासन का विकास

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 भारतीय प्रशासन विकास
    1.2.1 मौर्य प्रशासन
        1.2.1.1 केन्द्रीय प्रशासन
        1.2.1.2 मंत्री-परिषद
        1.2.1.3 नौकरशाही
        1.2.1.4 राज्य का सप्तांग सिद्धान्त
        1.2.1.5 प्रान्तीय प्रशासन
        1.2.1.6 स्थानीय प्रशासन
        1.2.1.7 नगर प्रशासन
        1.2.1.8 कौटिल्य के अर्थशास्त्र की प्रांसगिकता
    1.2.2 मुगल प्रशासन
        1.2.2.1 केन्द्रीय प्रशासन
        1.2.2.2 प्रान्तीय प्रशासन
        1.2.2.3 स्थानीय प्रशासन
        1.2.2.4 मनसबदारी प्रथा
        1.2.2.5 जागीरदारी प्रथा
    1.2.3 ब्रिटिश प्रशासन
        1.2.3.1 केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद का विकास
        1.2.3.2 केन्द्रीय सचिवालय का विकास
        1.2.3.3 वित्तीय प्रशासन का विकास
        1.2.3.4 पुलिस प्रशासन का विकास
        1.2.3.5 न्याय व्यवस्था का विकास
1.3 सारांश
1.4 शब्दावली
1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.8 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

यद्यपि लोक प्रशासन एक अध्ययन के विषय के रूप में नवीन विषय है, जिसका जन्म 1887 में वुडरो विल्सन की राजनीति-प्रशासन द्वैतभाव की विचारधारा के प्रतिपादन के परिणामस्वरूप हुआ, तथापि लोक प्रशासन एक कार्य या प्रक्रिया के रूप में सभ्यता के अस्तित्व के साथ ही दिखाई देता है। जब से सभ्यता का अस्तित्व है, तब से मानव के विकास हेतु निरंतर संगठित प्रयास होते रहे और सभ्यता के अस्तित्व के साथ ही प्रशासन का अस्तित्व भी देखने को मिलता है।

भारतीय परिवेश में भी प्रशासन का विकास प्राचीन काल से ही देखा जा सकता है। हड़प्पा सभ्यता से लेकर आज तक भारतीय प्रशासन अनेक उतार-चढ़ावों से गुजरा है। भारतीय प्रशासन अपने वर्तमान रूप में विरासत और निरंतरता का परिणाम है, जिसके विकास की कड़ियां किसी न किसी रूप में अतीत से जुड़ी हुई है। हालांकि वर्तमान भारतीय शासन प्रणाली मूल रूप से ब्रिटिश काल की देन मानी जाती है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- मौर्यकाल में भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- मुगलकाल में भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- ब्रिटिश शासन में भारतीय प्रशासन के विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे।

1.2 भारतीय प्रशासन विकास

वी0 सुब्रह्मण्यम के अनुसार वर्तमान प्रशासनिक प्रक्रिया का सिलसिला सदियों तक विचारों का रहा, न कि संस्थाओं का। संस्थागत सिलसिला अंग्रेजों के शासनकाल की देन है। भारतीय प्रशासन के विकास में मौर्यकाल, मुगलकाल तथा ब्रिटिशकाल का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनकी विस्तार से चर्चा करते हैं-

1.2.1 मौर्य प्रशासन

मौर्य प्रशासन, भारतीय इतिहास में दिलचस्पी का विषय है। मौर्य प्रशासन का अध्ययन पूर्ववर्ती प्रक्रियाओं के परिप्रेक्ष्य में ही किया जा सकता है, अर्थात इसकी स्थिति वैदिक कबायली संरचना और सामांतवादी युग के बीच की है। मौर्यकाल में भारत ने पहली बार राजनीतिक एकता प्राप्त की तथा एक विशाल साम्राज्य पर मौर्य शासकों ने शासन किया। इस विशाल साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालने वाले अनेक ऐतिहासिक स्रोत उपलब्ध हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र, मेगस्थनीज की इंडिका, अशोक के शिलालेख व अनेक यूनानी रचनाओं से मौर्य शासन प्रणाली के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा अपने गुरू और प्रधानमन्त्री चाणक्य की सहायता से जिस शासन प्रणाली का प्रारम्भ किया गया, उसके अनेक तत्व वर्तमान प्रशासन में भी दृष्टिगोचर होते हैं। मौर्य प्रशासन के दौरान निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। पहला- यह एक अति केन्द्रीकृत प्रशासन था, जिसकी पहुँच नागरिक जीवन के सभी क्षेत्रों में थी। इसकी चिंता बाजार-व्यवस्था के नियंत्रण से लेकर नागरिक जीवन में नैतिक मूल्यों की सुरक्षा तक थी। दूसरा- यह एक नौकरशाही पर

आधारित प्रशासन था, जिसमें सबल एवं निर्बल दोनों पक्ष थे। तीसरा- वस्तुतः मौर्य प्रशासन कोई नवीन प्रशासन नहीं था वरन् नंद शासकों की पद्धति का ही एक विकसित रूप था अर्थात् केन्द्रीकरण की प्रक्रिया नंद शासकों के समय ही शुरू हो गयी थी।

1.2.1.1 केन्द्रीय प्रशासन

मौर्य साम्राज्य का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। अतः शासन का प्रधान राजा होता था। राजपद एक महत्वपूर्ण पद होगया और इस पद की शक्ति एवं अधिकार बढ़ गये। राजा, राज्य का प्रमुख होता था। जिसके पास कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के अधिकारों के साथ वित्तीय शक्तियाँ भी थी। राजा की खुशी प्रजा की खुशी पर निर्भर करती थी। जनकल्याण पर राजा का कल्याण आश्रित था। राज्य में रहने वाले लोगों के हितों का सम्पादन ही राजा का प्रमुख कर्त्तव्य था।

राजा अब केवल दूरस्थ संरक्षक नहीं वरन् जनता का एक निकट संरक्षक बन गया। राजशक्ति निंरकुश पितृसत्तावाद पर आधारित थी। अशोक ने स्पष्ट रूप से अपने धौली शिलालेख में घोषणा की "कि सारी प्रजा मेरी संतान है।" अर्थात मौर्य शासक जनता के व्यक्तिगत जीवन में भी हस्तक्षेप करने लगे थे। राजा अब न केवल धर्मशास्त्र के द्वारा संचालित होता था। बल्कि अर्थशास्त्र के द्वारा संचालित होता था। अर्थशास्त्र में राजा की विवेकशीलता पर बल दिया गया, अर्थात् राजा न केवल पुराने कानूनों का पालन करवा सकता था वरन् प्रशासनिक आवश्यकताओं से प्रेरित होकर नए कानूनों का निमार्ण भी कर सकता था और फिर परंपरागत कानून तथा राजा के कानून में किसी प्रकार का विरोधाभास उत्पन्न होने की दशा में राजा का कानून ही ज्यादा मान्य होता था। अर्थशास्त्र के अनुसार प्रशासन के प्रत्येक पहलू में राजा का आदेश या विचार ही सर्वोपरि है।

अर्थशास्त्र में राजा के कर्त्तव्यों का भी निर्धारण किया गया। अर्थशास्त्र ने इस बात पर बल दिया, कि राजा को किसी भी समय कर्मचारियों एवं जनता की पहुँच से परे नहीं होना चाहिए। ऐसा होने पर गड़बड़ी एवं असंतोष फैलेगा और राजा शत्रुओं का शिकार हो जाएगा। मेगस्थनीज का भी कहना है कि मालिश करवाते समय राजा से विचार विमर्श के लिए मिला जा सकता है। अशोक के शिालालेख भी इस बात की पुष्टि करते है। अर्थशास्त्र में राजा के कुछ आवश्यक गुण भी निर्धारित किए गये, जिसके अनुसार जनसाधारण, राजा नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त राजा को दैवीय बुद्धि व शक्ति वाला, वृद्धजनों की बात सुनने वाला, धार्मिक व सत्यवादी होना आवश्यक है।

1.2.1.2 मंत्री-परिषद

सिद्धान्त के रूप में मौर्य काल में राज्य की संपूर्ण शक्ति राजा के हाथों में ही केन्द्रित थी, किन्तु व्यवहार में अनेक प्रतिबन्धों के कारण राजा की शक्ति की निरंकुशता सीमित थी विशाल मंत्री-परिषद व प्राचीन परंपराओं के पालन ने मौर्य शासकों की निरंकुशता पर सदैव अंकुश लगाए रखा। राजा को अपने कर्त्तव्यों के निवर्हन में सहायता हेतु एक मंत्री-परिषद होती थी। अर्थशास्त्र एवं अशोक के अभिलेखों में मंत्री-परिषद का जिक्र है। अर्थशास्त्र के अनुसार राज्यरूपी रथ केवल एक पहिए(राजा) के द्वारा नहीं चल सकता। अतएव दूसरे पहिए के रूप में उसे मंत्री-परिषद की आवश्यकता होती है।

मंत्री-परिषद एक परामर्शदात्री निकाय थी, जिसकी शक्ति राजा एवं मंत्रियों की परस्पर स्थिति पर निर्भर करती थी। सामान्यतः राजा के समानान्तर मंत्री-परिषद की शक्ति कमजोर थी और राजा मंत्री-परिषद की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं था। राजा के समानांतर मंत्रियों की स्थिति का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि राजा

अपने मंत्री को स्वयं नियुक्त करता था। मेगस्थनीज के अनुसार राजा के सलाहकार एक विशेष जाति से नियुक्त होते थे। राजा द्वारा मुख्यमंत्री तथा पुरोहित का चुनाव उनके चरित्र की भली भांति जाँच के बाद किया जाता था।
अर्थशास्त्र में मंत्रियों के कुछ गुण निर्धारित किए गये अर्थात उनमें उच्चकुल में जन्म, वीर, बुद्धिमान, ईमानदारी जैसे गुण होने चाहिए। मंत्री-परिषद से 3-4 मंत्रियों की एक छोटी उपसमिति भी बनती थी जो राजा को कुछ विशिष्ट बातों में परामर्श देती थी। कौटिल्य ने नीति निर्धारण की गोपनीयता पर बल दिया है। मंत्री-परिषद का अपना सचिव होता था, जिस पर उसके कार्यालय की देखभाल का भार था। कौटिल्य ने उसे मंत्री-परिषद अध्यक्ष कहा है। डॉ0 आर0सी0 मजूमदार ने मौर्यकालीन मंत्री-परिषद की तुलना इंग्लैण्ड की प्रिवि कौंसिल से की है।

1.2.1.3 नौकरशाही

मंत्री-परिषद व राजा के द्वारा मुख्यतः नीति निर्धारण का कार्य किया जाता था। तत्पश्चात् उन नीतियों को कार्यान्वित करने का प्रमुख कार्य नौकरशाही के द्वारा किया जाता था। मौर्यकालीन नौकरशाही अत्यधिक सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित थी। प्रशासन के संचालन में कौटिल्य ने 18 तीर्थों (अधिकारियों का नाम) एवं 27 अध्यक्षों की भूमिका पर बल दिया है। मौर्यकाल में प्रशासन की सुविधा के लिए 18 विभागों की स्थापना की गयी थी, जिन्हें तीर्थ कहते थे। प्रत्येक विभाग के संचालन व निरीक्षण के लिए अध्यक्ष होता था। एक महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिकारी सन्निधाता अर्थात् कोषाध्यक्ष होता था। वह केन्द्रीय खजाने का प्रभारी होता था। वह एक दूसरे महत्वपूर्ण अधिकारी समाहर्त्ता से मिलकर कार्य करता था। समाहर्त्ता भू-राजस्व की वसूली से जुड़ा हुआ था। युवराज, राजा का उत्तराधिकारी होता था। मंत्री सर्वोच्च सलाहकार था। पुरोहित शासकीय तथा धार्मिक मामलों में राजा का परमर्शदाता था।
अर्थशास्त्र में राजस्व के महत्वपूर्ण स्रोतों की चर्चा की गयी है, जैसे भूमि, खनन, जंगल, सड़क आदि। महत्वपूर्ण राजकीय खर्च- वेतन, सार्वजनिक कार्य निमार्ण, सड़क एवं कुऐं, विश्रामगृह, सिचाई से संबंधित कार्यों में होता था। अर्थशास्त्र में राष्ट्रीय कोष एवं राजा के व्यक्तिगत कोष में कोई अन्तर नहीं किया गया था।

1.2.1.4 राज्य का सप्तांग सिद्धान्त

कौटिल्य के अनुसार राज्य एक आवश्यक और अनिवार्य संस्था है। राज्य की स्थापना के बिना समाज में अराजकता तथा मत्स्य न्याय की स्थापना हो जाएगी तथा शक्तिशाली, दुर्बल को अपने हित का साधन बना लेगा। कौटिल्य राज्य की उत्पत्ति के सन्दर्भ में सामाजिक समझौते के सिद्धान्त में विश्वास करता है। राजा व प्रजा के बीच समझौते के परिणामस्वरूप राज्य अस्तित्व में आया। चूंकि राज्य, व्यक्ति के लिए हितकारी संस्था है। अतः व्यक्ति की निष्ठा एवं आस्था राज्य में होती है। कौटिल्य के अनुसार राज्य के सात अंग हैं, जिन पर राज्य की व्यवस्था, स्थिरता और अस्तित्व निर्भर करता है। ये सात अंग हैं- राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोषालय, सशस्त्र सेना तथा मित्र। राज्य के इन भागों में सावयव एकता होती है।
राजा, राज्य का प्राण है। अर्थशास्त्र के अनुसार राजा धर्म का रक्षक होता है। उसमें निर्भयता, आत्मनियंत्रण, निणर्य लेने की क्षमता तथा विचार करने की शक्ति होनी चाहिए। यदि राजा अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार नहीं करता, तो वह आदर योग्य नहीं है। अयोग्य राजा को पद से हटा देना चाहिए।
राजा के बाद पदसोपान में दूसरा स्थान अमात्य का आता हैं। वह आजकल के मंत्रिमंडलीय सचिव के समान शासकीय अधिकारियों में सबसे उच्च अधिकारी होता था। अमात्य प्रशासन सम्बन्धी बातों को देखता था। राजा कुशल, बुद्धिवान तथा निर्णय लेने की क्षमता वाले व्यक्ति को अमात्य पद के लए चयन करता था।

जनपद, राज्य का तीसरा अंग था। इसमें भूमि-भाग के साथ साथ क्षेत्र में रहने वाले लोगों भी सम्मिलित होते थे। कौटिल्य के आनुसार श्रेष्ठ जनपद वह है जो प्राकृतिक सीमाओं जैसे नदी, पहाड़, जंगल में बसा हो। जनपद की भूमि उपजाऊ होनी चाहिए तथा रहने वाले लोग मेहनती, बुद्धिमान, वफादार होने चाहिए।

दुर्ग भी राज्य का एक अनिवार्य अंग था। राज्य की स्थिरता और युद्धों में सुरक्षा के लिए दुर्ग की भूमिका अहम होती थी। दुर्ग में पर्याप्त खाद्य सामग्री, अस्त्र-शस्त्र, पानी, दवाईयां आदि का रहना आवश्यक था, जो समय पर काम आ सके।

कोष व कोषालय भी राज्य के अस्तित्व के लिए अनिवार्य था। मौर्यकाल में वित्त की व्यवस्था बेहतर थी। विभिन्न प्रकार के करों से प्राप्त राशि कोषालय में एकत्रित होती थी। विभिन्न खर्चों के लिए बजट में व्यवस्था होती थी। आपात स्थितियों से निपटने के लिए आपात निधि की आवश्यकता थी।

सेना की राज्य में महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। कौटिल्य ने मौर्य सेना के संगठन तथा सैन्यशास्त्र का व्यापक चित्रण किया है। सैनिकों से राज भक्ति, साहस, बहादुरी की अपेक्षा की जाती थी। सीमा विस्तार पर विशेष ध्यान होने की वजह से सेना राज्य का आवश्यक अंग थी।

मित्र से तात्पर्य मित्र राज्यों से था। राज्य की प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि पड़ोसी राज्यों के साथ उसके सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण हैं या नहीं।

इस प्रकार कौटिल्य ने राज्य के अस्तित्व एवं स्थिरता हेतु राज्य के सात अंगों पर आधारित होने की बात कहीं इन अंगों के बीच उचित संतुलन अनिवार्य था।

1.2.1.5 प्रान्तीय प्रशासन

मौर्यकाल में संपूर्ण साम्राज्य का विभाजन प्रान्तों में किया गया था। पाँच प्रान्तीय राजधानियां प्रमुख थी तथा उत्तरापथ की राजधानी तक्षशिला, अवंति राज्य की राजधानी उज्जैन, कलिंग प्रांत की राजधानी तोसली, दक्षिणापथ की राजधानी सुवर्णगिरि और पूर्वी प्रान्त की राजधानी पाटलिपुत्र। ये पाँच महत्वपूर्ण एवं बड़े प्रान्त थे तथा इनके अधीन छोटे छोटे प्रान्त भी थे। बड़े प्रान्तों का प्रशासक राजकुल का होता था। अशोक के फरमानों में उन्हें कुमार या आर्यपुत्र कहा गया है। अर्थशास्त्र में इस बात की चेतावनी दी गयी कि कुमार या आर्य पुत्र खतरे का कारण हो सकता है। इसलिए उसे राज्य पर सम्पूर्ण नियंत्रण नहीं होना चाहिए। प्रान्तीय प्रशासन में केन्द्रीकरण की प्रकृति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि प्रान्तीय मंत्रिपरिषदों को यह स्वतन्त्रता थी कि वह प्रान्तीय प्रशासक को सूचित किए बिना राजा को महत्वपूर्ण सूचना प्रेषित कर सकती है। इस बात की पुष्टि दिव्यावदान से भी होती है।

किन्तु क्षेत्रीय स्तर पर मौर्य प्रशासन में कुछ स्वायत्तता प्रदान की गयी थी, अर्थात संबंधित क्षेत्र के व्यक्ति को ही उस क्षेत्र का प्रशासक नियुक्त किया जाता था। उदाहरण के लिए रुद्रदमन के जूनागढ़ अभिलेखों से ज्ञात होता है कि काठियावाड़ का शासक यौनराज तुशाष्क था।

1.2.1.6 स्थानीय प्रशासन

प्रान्तों का विभाजन विभिन्न जिलों में किया गया था। जिले को विषय या आहार कहा जाता था। जिला प्रशासन से जुड़े तीन पदाधिकारी थे- प्रादेशिक, रज्जुक और युक्त। प्रादेशिक नामक अधिकारी कानून एवं व्यवस्था को बनाऐ रखने और भू-राजस्व की वसूली से जुड़े हुए थे, जबकि रज्जुक नामक अधिकारी विशेष रूप से न्यायिक कार्यों से जुड़े हुए थे। रज्जुक की नियुक्ति ग्रामीण जन कल्याण के उद्देश्य से की जाती थी। उसके अतिरिक्त युक्त का कर्त्तव्य सचिव एवं लेखा संबधी काम देखना था। अशोक के अभिलेखों में इन अधिकारियों की चर्चा की गयी है।

जिला एवं ग्रामीण प्रशासन के बीच एक और प्रशासनिक इकाई थी। जो संभवतः पांच या दस गांवों का समूह होती थी। इसका महत्वपूर्ण अधिकारी गोप होता था जिसका काम सामान्य प्रशासन की देख रक रेख करना था। गोप के अतिरिक्त स्थानिका नामक अधिकारी भी होता था जिसका मुख्य कार्य कर की वसूली था। वह सीधे प्रादेशिक के अधीन था। ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानिका आधुनिक सहायक कलेक्टर और प्रादेशिका जिला कलेक्टर के समान थे और ये दोनों अधिकारी समाहर्त्ता या चीफ कलेटर के अधीन होते थे।

सबसे निचले स्तर पर ग्रामीण प्रशासन था जिसका प्रधान मुखिया होता था। वह ग्रामीण वृद्धजनों में से निर्वाचित होता था। छोटे गांवों में मुखिया ही एक मात्र अधिकारी होता था किन्तु बड़े गावों में मुखिया की सहायता के लिए लेखपाल एवं लिपिकों की नियुक्ति की जाती थी और अधिकारियों का वेतन या तो भू-राज्स्व से या फिर भूमि प्रदान करके पूरा किया जाता था।

1.2.1.7 नगर प्रशासन

मौर्यकाल में नगर प्रशासन का अपना श्रेणीबद्ध संगठन था। नगर प्रशासन का प्रधान नगरक नामक अधिकारी होता था। अशोक के एक अभिलेख में नगर-व्यवहारिक की चर्चा की गयी है। नगरक या नगर निरीक्षक का काम नगर कानून व्यवस्था बनाए रखना था। आकाल पड़ने पर गोदामों से अनाज बंटवाने का काम भी नगरक करता था। इस नगरक नामक अधिकारी की सहायता एवं मंत्रणा के लिए समाहर्त्ता एवं प्रादेशिका नामक अधिकारी होते थे। मेगस्थनीज के इंडिका में विस्तार से पाटलिपुत्र के नगर प्रशान की चर्चा की गयी है। मेगस्थनीज के अनुसार पाटलिपुत्र के प्रशासक के लिए पांच-पांच सदस्यों की छ: समितियां होती थी, जिनके कार्य एवं कार्त्तव्य निम्नलिखित थे- उद्योगों व शिल्पों का निरीक्षण, विदेशियों की देखभाल, जन्म-मरण का पंजीकरण, वाणिज्य व्यापार की देखभाल, सार्वजनिक बिक्री का निरीक्षण और बिक्री कर संग्रह।

1.2.1.8 कौटिल्य के अर्थशास्त्र की प्रांसगिकता

कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्राचीन भारत में लोक प्रशासन पर किया गया सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। यद्यपि अर्थशास्त्र में स्पष्ट रूप से लोक प्रशासन के सिद्धान्त नहीं रखे गये हैं, लेकिन इसमें वर्णित सरकारी कार्यप्रणाली महत्वपूर्ण है। कौटिल्य ने एक कल्याणकारी प्रशासन की बात की थी। राजा को प्रजा के हित के लिए कार्य करना चाहिए। उसे प्रजा को पुत्र की भांति पालना चाहिए, क्योंकि 'प्रजा हिते, हिते राज्ये, प्रजानाम च सुखे सुखम्'। अर्थात प्रजा के हित में ही राज्य का हित है और प्रजा के सुख से ही राज्य सुखी है। कल्याणकारी प्रशासन के साथ ही कौटिल्य ने सुशासन की बात की है, अर्थात जनता की सारी सुविधाओं को सरकार द्वारा मुहैया कराया जाना चाहिए। क्षेत्रों की आवश्यकतानुसार उन्हें संसाधन उपलब्ध कराना राष्ट्र का दायित्व है।

कौटिल्य ने राजस्व संग्रहण के सन्दर्भ में उचित करारोपण को महत्व दिया है। करारोपण राज्य की आवश्यकता व प्रजा की स्थिति के अनुरूप होना चाहिए, उसके अनुसार उचित करारोपण की व्यवस्था वैसी ही होनी चाहिए, जैसे वृक्ष से फल गिरते हैं। कौटिल्य ने जट को जनता को खुशहाली की गारंटी देती है। कौटिल्य का कथन है कि सभी उद्यम वित्त पर निर्भर है अतः कोषागार पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

कौटिल्य का विचार है कि राजा का लोकसेवक कोषागार रक्षक मात्र होना चाहिए। प्रशासन के नियमों का उल्लंघन करने पर न्यायपालिका के दायरे में नहीं आते, किन्तु निजी गुप्तचर व्यवस्था तथा विदेश सम्बन्धी आदि विषयों पर कौटिल्य के द्वारा दिए गये विचार वर्तमान भारतीय प्रशासन के सन्दर्भ में पर्याप्त रूप से प्रासंगिक है।

1.2.2 मुगल प्रशासन

मुगल प्रशासन, जिसने प्रशासन को एक नयी दिशा दी,का अध्ययन निम्न बिन्दुओं के आधार पर करते हैं-

1.2.2.1 केन्द्रीय प्रशासन

प्रशासन के शीर्ष पर बादशाह होता था। वह सभी प्रकार के सैनिक एवं असैनिक मामलों का प्रधान होता था। बादशाह मुगल साम्राज्य के प्रशासन की धुरी था बादशाह की उपाधि धारण करता था, जिसका आशय था कि राजा अन्य किसी भी सत्ता के अधीन नहीं है। वह समस्त धार्मिक तथा धर्मोत्तर मामलों में अंतिम निर्णायक व अंतिम सत्ताधिकारी है। वह सेना, राजनीतिक, न्याय आदि का सर्वोच्च पदाधिकार है। वह सम्पूर्ण सत्ता का केन्द्र है तथा खुदा का प्रतिनिधि है।

मुगल बादशाह बहुत शानो-शौकत का जीवन व्यतीत करते थे। उनको बहुत से विशेषाधिकार प्राप्त थे और उनकी इच्छा ही कानून थी। तुर्की मंगोल परम्परा से ही मुगल प्रशासन को केन्द्रीकृत प्रशासन की अवधारणा विरासत में प्राप्त हुई थी। वैसे कुछ विद्वानों का मानना है कि अकबर के समय केन्द्रीकृत तुर्की मंगोल परम्परा में संशोधन किया गया। इन सबके उपरान्त भी राजा का जीवन नियमों से बंधा हुआ था और यह माना जाता था कि जनता की भलाई में ही राजा की भलाई है। कुरान में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि प्रजा के कल्याण का पूरा उत्तर दायित्व राजा के कंधों पर है। केन्द्रीय प्रशासन के संचालन हेतु राजा के द्वारा निम्नांकित पदाधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी-

1. **वकील या वजीर-** वकील सम्पूर्ण प्रशासन का पर्यवेक्षण करता था। इसे राजस्व और वित्त का अधिभार दिया गया था, यह भू-राजस्व का आकलन करता था और उसकी वसूली का निरीक्षण करता था। वह इससे संबंधित हिसाब की जाँच भी करता था।
2. **दीवाने-आला/दीवाने-कुल-** दीवाने आला वित्तीय शक्तियाँ रखता था। इसे राजस्व और वित्त का अधिभार दिया गया था। यह भू-राजस्व का आकलन करता था और उसकी वसूली का निरीक्षण करता था। वह इससे संबंधित हिसाब की जाँच भी करता था।
3. **मीर बख्शी-** यह साम्राज्य का सर्वोच्च भुगतान अधिकारी होता था क्योंकि मुगलकाल में मनसबदारी प्रथा प्रचलित थी तथा सैनिक एवं असैनिक सेवाओं का एकीकरण किया गया था। इसलिए यह साम्राज्य के सभी अधिकारियों को भुगतान करता था। यह मनसबदारों की नियुक्ति की सिफारिश करता था और उनके लिए जागीर की अनुशंसा करता था।
4. **दीवाने-शामा/खान-ए-शामा-** यह राजकीय कारखनों का निरीक्षण करता था तथा राजकीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उन कारखानों के उत्पादन को नियंत्रित करता था।
5. **सद्र-उस-सूद्र-** यह बादशाह का मुख्य धार्मिक परामर्शदाता होता था। यह धार्मिक अनुदानों को नियंत्रित करता था। साथ ही यह धार्मिक मामलों से संबंधित मुकद्दमे भी देखता था।
6. **मुख्य काजी-** यह न्याय विभाग का प्रधान होता था।
7. **मुहतसिब-** यह जनता के नैतिक आचरण का निरीक्षण करता था और देखता था कि शरीयत के अनुसार कार्य हो रहा है या नहीं साथ ही यह माप तौल का निरीक्षण भी करता था।

उपरोक्त सातों अधिकारियों के अतिरिक्त केन्द्रीय प्रशासन में कुछ छोटे-छोटे पद भी होते थे, जैसे- दरोगा-ए-तोपखाना, दरोगा-ए-डाकचौकी, मीर-माल (टकसाल प्रधान), मीर-बर्र (वन अधीक्षक) आदि।

1.2.2.2 प्रान्तीय प्रशासन

मुगल सम्राट बाबर ने अपने साम्राज्य का विभाजन जागीरों में किया था तथा उसके समय किसी प्रकार की प्रान्तीय प्रशासनिक व्यवस्था विकसित नहीं हुई थी। सबसे पहले पहले एकरूप प्रान्तो का निर्माण अकबर के शासनकाल में हुआ। सन् 1580 में अकबर ने अपने साम्राज्य का विभाजन 12 प्रान्तों में किया, जिसकी संख्या शाहजहां के काल तक 22 हो गयी। अकबर की प्रशासनिक नीति प्रशासनिक एक रूपता तथा रोक और संतुलन के सिद्धांतों पर आधारित थी परिणामस्वरूप प्रान्तीय प्रशासन का ही प्रतिरूप था।

प्रान्तीय प्रशासन का प्रमुख सूबादार/नजीम कहलाता था, जिसकी नियुक्ति बादशाह करता था। आमतौर पर सूबेदार का कार्यकाल तीन वर्ष का होता था। नजीम की सहायता हेतु कुछ अन्य अधिकारी भी होते थे। प्रान्तीय दीवान की नियुक्ति केन्द्रीय दिवान की अनुशंसा पर बादशाह करता था। प्रान्तीय दीवान, नजीम के बराबर का अधिकारी होता था और कभी-कभी श्रेष्ठ अमीर को भी दीवान का पद दे दिया जाता था। इसी तरह प्रान्तीय बख्शी की नियुक्ति केन्द्रीय बख्शी की अनुशंसा पर होती थी और प्रान्तीय बख्शी सुरक्षा से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण बातें नजीम को बताए बिना केन्द्रीय बख्शी तक प्रेषित कर देता था। अकबर ने केन्द्रीय सद्र शक्ति को कम करने के लिए प्रान्तीय सद्र को नियुक्त करना शुरू किया। अब प्रान्तीय सद्र के परामर्श से भी धार्मिक बातों का निर्णय लिया जा सकता था। इनके अतिरिक्त प्रान्तीय स्तर पर काजी भी होता था।

1.2.2.3 स्थानीय प्रशासन

प्रान्तों के विभाजन सरकार में होता था। सरकार से जुड़े हुए अधिकारी थे- फौजदार, अमालगुजार, खजानदार आदि। फौजदार शांति व्यवस्था की देख-रेख करता था और अमालगुजार भू-राजस्व से जुड़ा अधिकारी था। खजानदार सरकार के खजाने का संरक्षक होता था। कभी-कभी एक सरकार में कई फौजदार होते थे और कभी-कभी दो सरकारों पर एक फौजदार भी होता था। सरकार का विभाजन परगनों में होता था। परगनों से जुड़े अधिकारी सिकदार, आमिल, पोतदार, कानूनगों आदि थे। सिकदार शांति व्यवस्था का संरक्षक होता था और भू-राजस्व संग्रह में आमिल की सहायता करता था। आमिल भू-राजस्व प्रशासन से जुड़ा अधिकारी था। पोतदार, खजांची को कहा जाता था तथा कानूनगो गाँव के पटवारियों का मुखिया होता था और स्वयं कृषि भूमि का पर्यवेक्षण करता था।

सबसे नीचे ग्राम होता था जिससे जुड़े अधिकारी मुकद्दमे और पटवारी थे। मुगलकाल में ग्राम पंचायत की व्यवस्था थी। इस विभाजन के अतिरिक्त नगरों में कानून व्यवस्था की देख-रेख के लिए कोतवाल की नियुक्ति होती थी। अबुल फजल के आइने-अकबरी में कोतवाल के कार्यों का विवरण दिया गया है। इसी तरह प्रत्येक किले पर किलेदार कीह नियुक्त होती थी।

इस प्रकार मुगल प्रशासन केन्द्रीय प्रशासन से लेकर गाँव तक शृंखलाबद्ध था। लेकिन कुछ इतिहासकार जिनमें इरफान हबीब और आर्थर अली महत्वपूर्ण हैं, मुगल प्रशासनिक ढ़ाँचे को अतिकेन्द्रीकृत मानते हैं।

1.2.2.4 मनसबदारी व्यवस्था

अकबर के द्वारा स्थापित की गयी मनसबदारी पद्धति मौलिक रूप से एक प्रशासनिक सामरिक उपकरण थी, जिनका उद्देश्य अमीरों एवं सेना का एक सक्षम संगठन स्थापित करता था। वस्तुतः मनसबदारी पद्धति की व्याख्या केन्द्रीकृत राजनैतिक ढ़ाँचे के परिप्रेक्ष्य में की जा सकती है। इसके साथ साम्राज्य की शक्ति को एक चैनल में बांध दिया गया और अमीर-वर्ग, सेना तथा नौकरशाही तीनों को जोड़ दिया गया।

मुगल साम्राज्य के सभी पंजीकृत अधिकारियों को एक मनसब प्रदान किया गया, जो जोड़े के अंक में प्रस्तुत किया जाता था। प्रथम, संबधित अधिकारी के जात रैंक का बोध होता था तथा दूसरे उसके सवार रैंक का बोध कराता था। जात रैंक किसी भी अधिकारी का विभन्न अधिकारियों के पदानुक्रम में पद और स्थान को निर्धारित करता था। दूसरी तरफ सवार रैंक उसके सैनिक उत्तर दायित्व को रेखांकित करता था। सैद्धान्तिक रूप से मनसब के कुल 66 ग्रेड होते थे। निम्नतम 10 और उच्चतम 10 हजार होता था, किन्तु व्यवहारिक रूप में केवल 33 ग्रेड ही प्रचलित थे। पांच हजार से अधिक रैंक सामान्यतः राजकीय व्यक्ति को ही प्रदान किए जाते थे, किन्तु यह प्रतिष्ठा कुछ राजपूत योद्धाओं को भी प्राप्त हुई।

1.2.2.5 जागीरदारी प्रथा

वस्तुतः जागीरदारी पद्धति की स्थापना के पीछे साम्राज्य का एक व्यापक उद्देश्य था, जिसके द्वारा उन राजपूत जमींदारों से भू-राजस्व संग्रह करना सम्भव हो गया, जो सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली थे और जाति, गोत्र के आधार पर विभाजित थे। अकबर मनसबदारों का वेतन नकद में देना चाहता था, किन्तु उस समय के कुलीन वर्ग को भू-संपत्ति से जबर्दस्त आकर्षण था। इसलिए जागीरदारी प्रथा के अंतर्गत कुछ अधिकारियों को जागीर में वेतन दिया जाता था।

दिल्ली सल्तनत काल में इक्तादारी पद्धति प्रचलित थी और इक्ता के मालिक इक्तादार कहे जाते थे। इक्तादारी पद्धति भी कृषकों से अधिशेष प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण जरिया था किन्तु इक्ता और जागीर में एक महत्वपूर्ण अंतर यह था कि इक्ता में भूमि का आबंटन होता था जबकि जागीर में भू-राजस्व का आबंटन होता था। जागीरदारी व्यवस्था और इकतादारी व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण अंतर यह भी था कि जागीरदारों को केवल भू-राजस्व की वसूली का अधिकार दिया गया था संबंधित क्षेत्र के प्रशासन का नहीं, जागीरदार को राजकीय नियमों के अनुरूप केवल प्राधिकृत राजस्व वसूलने का अधिकार था तथा प्रशासनिक कार्यो के लिए राज्य जिम्मेदार था। यदि भू-राजस्व की वसूली में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित होता, तो जागीरदार उस क्षेत्र के फौजदार से सैनिक सहायता भी प्राप्त कर सकता था। जागीरदारी व्यवस्था के द्वारा प्रशासनिक केन्द्रीकरण का प्रयास हुआ था और नौकरशाही को ग्रामीण समुदाय पर आरोपित कर दिया गया था।

1.2.3 ब्रिटिश प्रशासन

भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के आगमन के साथ ब्रिटिश प्रशासन के बीज पड़े। सन् 1600 में एक व्यापारिक कम्पनी के रूप में ईस्ट इंडिया कम्पनी का भारत में आगमन हुआ, किन्तु देखते ही देखते यह कम्पनी और इसके माध्यम से ब्रिटिश संसद का भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। प्रारम्भ में कम्पनी का उद्देश्य व्यापार करना था और मुम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास के बंदरगाहों से होकर शेष भारत से इसका सम्पर्क रहता था। धीरे-धीरे कम्पनी की प्रादेशिक महत्वकांक्षा प्रबल होती गयी और शीघ्र ही वह भारत में एक प्रमुख युरोपीय शक्ति बन गयी। यही कम्पनी आगे चलकर मुगल शासन की उत्तराधिकारी बनी। प्लासी और बक्सर के युद्ध के बाद भारत में कम्पनी की साम्राज्यीय महत्वकांक्षाऐं प्रबल हुई और सन् 1765 की इलाहाबाद की संधि के द्वारा कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अधिकार प्राप्त हुए, परिणामस्वरूप द्वैध शासन की शुरूआत हुई, जहां कि राजस्व संग्रहण का कार्य ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकार में था, लेकिन सामान्य प्रशासन की जिम्मेदारी संबंधित प्रान्त में मुगल प्रशासन द्वारा नियुक्त नवाब के जिम्मे होती थी। इस प्रकार कर्त्तव्य नवाब के पास थे लेकिन शक्तियाँ कम्पनी के पास। यद्यपि नवाब की नियुक्ति में भी कम्पनी का हस्तक्षेप होता था और उप-नवाब की नियुक्ति का अधिकार तो

कम्पनी के पास ही था। इस प्रकार सारी शक्तियाँ कम्पनी के हाथ में केन्द्रीत हो गयी, लेकिन कर्त्तव्य और उत्तर दायित्व नहीं, परिणामस्वरूप द्वैध शासन की वजह से अकाल, अव्यवस्था जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ा।

कम्पनी के शासन की शुरूआत होने और उसकी शक्तियों में वृद्धि होने के साथ-साथ ब्रिटिश संसद का भी भारतीय प्रशासन सम्बन्धी मामलों में कम्पनी के माध्यम से अप्रत्यक्ष नियंत्रण प्रारम्भ हुआ, जो कि 1857 की क्रांति के बाद कम्पनी शासन की समाप्ति और भारत में प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन की स्थापना में परिणत हो गया।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन की स्थापना के बाद ब्रिटिश संसद ने समय समय पर विभिन्न अधिनियम पारित करके कम्पनी के शासन पर नियंत्रण करने का प्रयास किया, जिनकी संक्षिप्त चर्चा निम्नांकित रूप में की जा सकती है-

1.2.3.1 केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद का विकास

भारतीय संवैधानिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था के विकास में सन् 1773 के रेग्यूलेटिंग एक्ट का विशेष महत्व है। सरकार ने कम्पनी के आर्थिक, प्रशासनिक एवं सैनिक कार्यों पर संसद के आंशिक नियंत्रण के लिए यह अधिनियम पारित किया था। इस अधिनियम के द्वारा बंगाल के गवर्ननर को कम्पनी के भारतीय प्रदेशों का गर्वनर जनरल बनाया गया तथा इसकी सहायता के लिए चार सदस्यों की एक परिषद की स्थापना की गयी। इस कानून में मुम्बई और मद्रास के प्रेसीडेंसी को कलकत्ता प्रेसीडेंसी बंगाल के अधीन कर दिया गया, साथ ही भारतीय मामलों में संसद का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप आरम्भ हुआ। परिणामस्वरूप इस कानून से भारत में प्रशासन के केन्द्रीकरण का कार्य शुरू हुआ।

सन् 1784 में पिट्स इंडिया एक्ट के माध्यम से गवर्नर जनरल की कौंसिल में सदस्यों की संख्या चार से घटाकर तीन कर दी गयी, साथ ही मद्रास तथा बम्बई प्रेसीडेंसियों पर गवर्नर जनरल के निरीक्षण एवं नियंत्रण के अधिकार अधिक स्पष्ट कर दिए गये । इस अधिनियम का उद्देश्य कम्पनी पर ब्रिटिश क्राउन का नियंत्रण बढ़ाना था। अतः ब्रिटेन में छः सदस्यों के 'बोर्ड ऑफ कंट्रोल' की स्थापना की गयी। '1786 के अधिनियम' के द्वारा गवर्नर जनरल को परिषद् से अधिक शक्तियाँ प्रदान की गयी और उसे मुख्य सेनापति बनाया गया।

1793 के अधिनियम से गवर्नर जनरल को अपनी कौंसिल की अनुशंसा को रद्द करने का अधिकार दिया गया। 1813 के चार्टर एक्ट द्वारा भारत में ब्रिटिश कम्पनी का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया, लेकिन भू-राजस्व प्रशासन एवं भारतीय प्रशासन का कार्य कम्पनी के अधीन रहने दिया गया। 1833 के चार्टर अधिनियम से बंगाल का गवर्नर भारत का गवर्नर जनरल कहलाने लगा। बंबई एवं मद्रास प्रेसीडेंसी को पूर्णतः बंगाल के अधीन कर दिया गया। सम्पूर्ण भारत के लिए विधि निर्माण का एकाधिकार गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद को प्रदान किया गया तथा बंबई और मद्रास प्रेसीडेंसी से विधि निमार्ण के अधिकार छीन लिए गये। अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल की काउंसिल में एक चौथा सदस्य फिर से जोड़ा गया, जिसे विधि सदस्य का नाम दिया गया। इस प्रकार इस अधिनियम से भारत में केन्द्रीकृत प्रशासन की स्थापना हुई।

'1858 के अधिनियम' द्वारा भारत पर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के स्थान पर ब्रिटिश संसद के शासन की स्थापना हुई। भारत सचिव के पद का सृजन किया गया। तथा समस्त संवैधानिक, प्रशासनिक तथा वित्तीय शक्तियाँ भारत सचिव तथा उसकी 15 सदस्यीय परिषद में केन्द्रित हो गयी। भारत में सत्ता का केन्द्रीकरण गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद में निहित हो गया। गवर्नर जनरल को वायसराय कहा जाने लगा।

1861 के अधिनियम द्वारा भारतीय प्रशासन में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गये। पहली बार प्रान्तीय विधायिकाओं की स्थापना हुई। यद्यपि इनके कई अधिकार सीमित थे। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद तथा विधायिका का पुनर्गठन किया गया। अधिनियम की व्यवस्था द्वारा कार्यकारिणी के महत्व में कमी एवं गवर्नर जनरल के प्रभाव में वृद्धि हुई। गवर्नर जनरल को इस बात के लिए अधिकृत किया गया कि वह प्रशासनिक व्यवस्था हेतु विधि बनाए। कैनिंग के द्वारा विभागीय व्यवस्था की शुरूआत की गयी। अधिनियम के द्वारा मद्रास और बंबई प्रेसीडेंसी को पुनः विधिक निर्माण के अधिकार तथा अन्य प्रान्तों में ऐसी ही विधायिकाओं की स्थापना की व्यवस्था करके विधि-निर्माण में विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया की नींव पड़ी।

1892 के भारतीय परिषद अधिनियम के अन्तर्गत विधायिकाओं की सदस्य संख्या और शक्ति में वृद्धि हुई तथा प्रतिनिधि संस्थाओं की सिफारिशें पर मनोनीत किया जाने लगा। 1909 के मार्ले-मिन्टो सुधारों द्वारा विधायिकाओं की सदस्य संख्या में वृद्धि हुई परन्तु बहुमत सरकारी सदस्यों का ही बना रहा। अधिनियम में अप्रत्यक्ष चुनाव पद्धति को अपनाया गया अर्थात् केन्द्रीय विधान परिषद में विभिन्न प्रान्तों से सदस्य चुनकर आने थे। इस अधिनियम का सबसे बड़ा दोष पृथक निर्वाचन व्यवस्था थी।

1919 में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार द्वारा वायसराय की कार्यकारिणी परिषद में भारतीयों को स्थान दिया गया। केन्द्रीय स्तर पर द्वि-संदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना हुई। अधिनियम के द्वारा केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया। आरक्षित विषयों का प्रशासन गवर्नर को अपने पार्षदों की सहायता से करना था तथा हस्तांतरित विषयों का प्रशासन निर्वाचित मंत्रियों की सहायता से किया जाना था।

सन् 1919 से स्वतंत्रता तक, प्रशासनिक व्यवस्था '1935 के भारत सरकार अधिनियम' का भारत के संवैधानिक इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इस अधिनियम ने भारत में संघात्मक व्यवस्था का सूत्रपात किया। इस संघ का निर्माण ब्रिटिश भारत के प्रान्तों, देशों राज्यों और कमिश्नरी के प्रशासनिक क्षेत्र को मिलाकर किया जाना था। संघ स्तर पर 'द्वैध शासन-प्रणाली' को अपनाया गया और आंशिक उत्तर दायी शासन की स्थापना करने का प्रावधान किया गया। संघीय कार्यपालिका, संघीय विधान मण्डल तथा संघीय न्यायालय की स्थापना की गयी। प्रान्तों में प्रान्तीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकार की कार्यपालिका शक्ति समस्त प्रान्तीय विषयों तक स्थापित हो गयी। प्रान्तों से द्वैध शासन-प्रणाली का अन्त कर दिया गया, किन्तु व्यवहार में गवर्नर की शक्ति अब भी बनी रही। गवर्नर की शक्तियों को तीन भागों में विभाजित किया गया, पहला- स्वेच्छा से काम में आने वाली शक्तियाँ, दूसरा- व्यक्तिगत शक्तियाँ और तीसरा- विधायिका के प्रति उत्तर दायी मंत्रियों की सलाह से काम में आने वाली शक्तियाँ।

इस अधिनियम का सबसे विवादास्पद पहलू धारा- 93 थी, जिसके अनुसार गवर्नर विशेष परिस्थितियों में प्रान्तीय प्रशासन को अपने नियंत्रण में ले सकता था। इसी शक्तियों का प्रयोग कर 1939 में विभिन्न प्रान्तों में गवर्नर ने शासन कार्य अपने हाथ में ले लिया। भारतीय स्वतंत्रता तक इसी अधिनियम के अनुसार भारतीय प्रशासन का संचालन किया जाता रहा। स्वतंत्रता के बाद भारतीय प्रशासन स्वतंत्र भारत के संविधान द्वारा प्रारम्भ हुआ।

1.2.3.2 केन्द्रीय सचिवालय का विकास

स्वतंत्र भारत में केन्द्रीय सचिवालय औपचारिक रूप से 30 जनवरी, 1948 को स्थापित हुआ, लेकिन मूल रूप से केन्द्रीय सचिवालय अन्य प्रशासनिक संस्थाओं की भाँति ब्रिटिश शासनकाल की देन है। ब्रिटिश काल में इसे "इंपीरियल सेक्रेटेरिएट" कहा जाता था। ब्रिटिश साम्राज्य के समय भारत में प्रशासनिक एकता स्थापित करने में केन्द्रीय सचिवालय की विशेष भूमिका थी। समय के परिवर्तन के साथ जैसे जैसे सरकार का कार्यभार बढ़ता गया,

विभागों की संख्या भी बढ़ती गयी। 1919 से 1947 तक का काल केन्द्रीय सचिवालय में विभिन्न सुधारों के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा। सन् 1919 की लिविलियन स्मिथ कमेटी के सुझाव पर-

- विभागीय विषयों को पुनर्गठित किया गया।
- लिखित आलेखों की प्रथा प्रारम्भ की गयी ।
- केन्द्रीकृत भर्ती की व्यवस्था आरम्भ हुई।
- सचिवालय में प्रतिनियुक्ति व्यवस्था को सुदृढ़ किया गया।

1919 में पुनर्गठित सचिवालय में कुल 11 विभाग थे।

सन् 1936-37 में नियुक्त होने वाली व्हीलर समिति और मैक्सवेल समिति (संगठन तथा प्रक्रिया समिति) ने केन्द्रीय सचिवालय के संगठन और कार्य-पद्धति में सुधार हेतु और भी सुझाव प्रस्तुत किए। आजादी के उपरान्त गठित सरकार को कुछ ऐसी विशेष समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिनके परिणामस्वरूप केन्द्रीय सचिवालय का कार्यभार अत्यधिक हो गया। ये समस्याऐं निम्नांकित थीं-

- देश का विभाजन होने के कारण पाकिस्तान से आए शरणार्थियों को भारत में बसाना।
- जम्मू-कश्मीर में बाह्य आक्रमण की समस्या।
- रियासतों का भारतीय संघ में एकीकरण।
- आंतरिक सुरक्षा की समस्या।
- आवश्यक वस्तुओं के अभाव की समस्या।
- प्रशासनिक अधिकारियों की संख्या में भारी मात्रा में कमी।

कल्याणकारी राज्य की स्थापना से प्रेरित होने के कारण भी सरकार के कार्यभार में अत्यधिक मात्रा में बढोत्तरी हुई, परिणामस्वरूप केन्द्रीय सचिवालय का कार्यभार बढ़ा 15 अगस्त, 1947 को जब सत्ता का हस्तांतरण हुआ तो केन्द्रीय सचिवालय में 19 विभाग थे, जिनका फिर से पुनर्गठन एवं सुधार करने के लिए स्वतंत्र भारत की सरकार ने सर गिरिजा शंकर बाजपेयी की अध्यक्षता में सचिवालय पुनर्गठन समिति की स्थापना की। कालांतर में विभागों की संख्या बढ़ी जैसे 1978 में 69 विभाग और 2001 में 81 विभाग।

1.2.3.3 वित्तीय प्रशासन का विकास

भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासक स्थापित होने के बाद प्रान्तों को वित्त के सम्बन्ध में बहुत अधिक सीमा तक स्वतंत्रता दी गयी, किन्तु 1833 के चार्टर अधिनियम के द्वारा वित्त का केन्द्रीकरण कर दिया गया। अधिनियम के द्वारा यह निश्चित किया गया कि किसी प्रान्तीय सरकार को नए पद तथा नए वेतन भत्ते की स्वीकृति का अधिकार नहीं होगा, जब तक कि गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति न मिल जाए।

1833-1870 तक प्रान्तीय सरकारें केन्द्र सरकार के अभिकर्त्ता के रूप में ही कार्य करती रहीं, उन्हें कर लगाने अथवा उसे खर्च करने का कोई अधिकार नहीं था। सर्वप्रथम 1870 में वित्तीय विकेन्द्रीकरण की दिशा में लार्ड मेयो की सरकार द्वारा एक निश्चित योजना को अपनाया गया।

- जिसके अन्तर्गत जेलें, रजिस्ट्रेशन, पुलिस, शिक्षा, सड़कें, चिकित्सा सेवाऐं, छपायी आदि के व्यय की मदों तथा उनसे प्राप्त होने वाले राजस्व को प्रान्तीय सरकारों के नियंत्रण में हस्तांतरित कर दिया गया।
- प्रान्तों को कुछ निश्चित वार्षिक अनुदान देने की व्यवस्था की गयी।

1877 में स्ट्रेची द्वारा प्रस्तावित नवीन योजना के अन्तर्गत भूमि कर, स्थानीय चुंगी, स्टाम्प, स्टेशनरी, कानून व न्याय और सामान्य प्रशासन की कुछ व्यय मदें प्रान्तीय सरकारों के नियंत्रण में हस्तांतरित कर दी गयी। वित्तीय विकेद्रीकरण की दिशा में 1882 में प्रस्तावित नई योजना के अनुसार राजस्व के समस्त साधनों को तीन भागों में विभक्त किया गया। केन्द्रीय, प्रान्तीय व विभाजित।

केन्द्रीय मदों से प्राप्त होने वाले राजस्व को केन्द्रीय नियंत्रण में तथा प्रान्तीय राजस्व को प्रान्तीय नियंत्रण में रखा गया। विभाजित मदों से प्राप्त होने वाली आय को केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के बीच बराबर-बराबर बांटने का निश्चय किया गया। विकेन्द्रीकरण के सम्बन्ध में 1907 में चार्ल्स हॉब हाऊस की अध्यक्षता में एक शाही आयोग नियुक्त किया गया। आयोग ने सिफारिश की, कि गवर्नर जनरल को प्रान्तीय राजस्व में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। 1919 के अधिनियम द्वारा प्रान्तीय बजट केन्द्र सरकार से बिल्कुल पृथक कर दिए गये और प्रान्तीय सरकारों को अपने बजट के निमार्ण का पूर्ण अधिकार दिया गया। प्रान्तों को पहली बार प्रान्तीय या स्थानीय प्रकृति के कर लगाने का अधिकार मिला। 1935 के अधिनियम द्वारा प्रान्तीय स्वायत्ता की व्यवस्था की गयी और संघीय सरकार तथा प्रान्तों के बीच तीन सूचियों के आधार पर न केवल कार्यों का वर्गीकरण किया गया, बल्कि वित्तीय साधनों का भी विभाजन किया गया। संघ सरकार तथा राज्यों के पृथक-पृथक आय साधन रखे गये। कुछ सीमा में प्रान्तों को उधार लेने का अधिकार भी दिया गया। प्रान्तों को अपना घाटा पूरा करने के लिए केन्द्र सरकार की ओर से निमेंयर रिपोर्ट के अनुसार वित्तीय सहायता प्रदान की गयी। निमेंयर रिपोर्ट की इस बात को स्वीकार कर लिया गया, कि आयकर की भी आधी धनराशि प्रान्तों में बांट दी जाए।

1.2.3.4 पुलिस प्रशासन का विकास

मुगल साम्राज्य के विघटन के उपरान्त भारत में कानून-व्यवस्था की स्थिति बगड़ती गयी। पुलिस शक्ति क्षेत्रीय जमीदारों के हाथ आ गयी। जब क्लाइव ने बंगाल की दीवानी प्राप्त की तो उसने प्रचलित प्रशासनिक व्यवस्था को बनाए रखा। वारेन हेस्टिंग्स ने भी पुलिस व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दिया। सर्वप्रथम कार्नवालिस ने एक संगठित पुलिस व्यवस्था की शुरुआत की। उसने थाना व्यवस्था का आधुनिकीकरण किया तथा प्रत्येक क्षेत्र में एक पुलिस थाने की स्थापना कर उसे एक दरोगा के अधीन रखा। जिला स्तर पर जिला पुलिस अधीक्षक के पद का सृजन किया गया। ग्राम स्तर पर चौकीदारों को पुलिस शक्ति दी गयी। इस तरह आधुनिक पुलिस व्यवस्था की शुरुआत हुई।

सक्षम पुलिस व्यवस्था ने बहुत सारे उद्देश्य पूरे किए। मध्य भारत में ठगों का दमन, क्रांतिकारी षड्यंत्रों का पर्दाफाश तथा राष्ट्रीय आंदोलन को इसी पुलिस व्यवस्था के द्वारा कुचला गया। इसने भारतीय जनता के साथ क्रूर व्यवहार भी किया। 1813 ईस्वी में संसद की एक समिति ने रिपोर्ट दी कि पुलिस ने भारतीय जनता को डाकुओं की तरह प्रताड़ित किया है। वस्तुतः महत्वपूर्ण पदों पर भारतीयों की नियुक्ति के मामले में ब्रिटिश कम्पनी सतर्क रही। कार्नवालिस ने तो स्पष्ट रूप से भारतीयों को भ्रष्ट मान लिया एवं उन्हें उत्तर दायी पदों से दूर रखा। कुछ छोटे-छोटे पदों पर भारतीयों की नियुक्ति अवश्य की गयी , जैसे- अमीन एवं दरोगा। 1793 ईसवीं के बाद आधिकारिक नीति भारतीयों को महत्वर्पूण पदों से वंचित करने की रही।

1.2.3.5 न्याय व्यवस्था का विकास

मुगल साम्राज्य के विघटन के बाद मुगलकालीन न्याय व्यवस्था टूट गयी। मुगलकाल के उत्तरार्द्ध में भूमि सुपुर्दगी प्रथा से समृद्ध भू-स्वामियों के हाथों में आ गयी। न्यायिक शक्तियाँ भी भू-स्वामियों के हाथों में आ गयी। बंगाल की दीवानी प्राप्त करने के बाद क्लाइव ने प्रचलित व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। न्याय व्यवस्था में सुधार की दृष्टि से वारेन हेंस्टिंग्स का काल महत्वपूर्ण है। भारत में ब्रिटिश न्याय प्रणाली की स्थापना इसी काल में हुई ब्रिटिश न्याय प्रशासन भारतीय और ब्रिटिश प्रणालियों तथा संस्थाओं का सम्मिश्रण था। कानून के शासन तथा न्याय पालिका की स्वतंत्रता इस प्रणाली की विशेषता थी। वारेन हेसिटंग्स ने सिविल तथा फौजदारी मामलों के लिए अलग-अलग अदालतें स्थापित की। उसने न्याय सुधार में मुगल व्यवस्था को ही आधार बनाया।

सर्वप्रथम वारेन हेंस्टिंग्स ने सिविल अदालतों की शृंखला स्थापित की। सबसे नीचे मुखिया, फिर जिले में जिला दीवानी अदालत तथा सबसे ऊपर कलकत्ता की सदर दीवानी अदालत थी। इसी तरह फौजदारी अदालतों का पुनर्गठन किया गया। प्रत्येक जिले में एक फौजदारी अदालत स्थापित की गयी जो काजी, मुफ्ती एवं मौलवी के अधीन होती थी। इसके ऊपर कलकत्ता की सदर दीवानी अदालत थी।

कार्नवालिस के द्वारा उपरोक्त व्यवस्था में सुधार किए गये। उसके सुधारों में यूरोपीय तत्व प्रबल थे। कार्नवालिस ने शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त के अन्तर्गत लगान प्रबन्ध से दीवानी प्रशासन को पृथक कर दिया। 1793 में कार्नवालिस संहिता द्वारा कलेक्टर से न्यायिक एवं फौजदारी शक्तियाँ ले ली गयी। जिला अदालतों के लिए श्रेणी निर्धारित की गयी तथा दीवानी अदालतों का पुनर्गठन हुआ। फौजदारी अदालतों की भी नई शृंखला बनाई गयी। इसके अतिरिक्त विचारधारा से प्रेरित होने के कारण दण्ड-संहिता में परिवर्तन किया। विलियम बैंटिक के शासनकाल में उपयोगितावादी विचारधारा से प्रेरित होने के कारण दण्ड विधान की कठोरता को कम करने का प्रयत्न किया गया। कुछ महत्वपूर्ण न्यायिक पदों पर भारतीयों को नियुक्त किया गया। 1859 से 1861 के बीच दण्ड विधि, सिविल कार्य विधि तथा दण्ड प्रक्रिया पारित की गयी। इन सुधारों में सम्पूर्ण भारत के लिए एक ही विधि प्रणाली लागू की गयी। 1861 मे भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम पारित हुआ तथा कलकत्ता एवं मद्रास में उच्च न्यायालय की स्थापना की गयी। आगे लाहौर, पटना आदि स्थानों पर भी उच्च न्यायालय स्थापित हुए।

1935 के भारत शासन अधिनियम के आधार पर एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गयी । इस न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीश तथा सरकार द्वारा नियुक्त अन्य न्यायाधीश होते थे। न्यायालय के क्षेत्र में प्रारम्भिक एवं अपीलीय तथा परामर्श सम्बन्धी विषय थे। प्रान्तीय न्यायालयों को दीवानी, आपराधिक, वसीयती, गैर-वसीयती और वैवाहिक क्षेत्राधिकार मौलिक एवं अपीलीय दोनों प्रकार के प्राप्त थे।

अभ्यास प्रश्न-

1. रेग्यूलेटिंग एक्ट कब पारित हुआ?
2. पिट्स इंडिया एक्ट कब पारित हुआ?
3. ईस्ट इंडिया कम्पनी का भारतमें आगमन कब हुआ?
4. 1919 के अधिनियम को किस नाम जाना जाता है?
5. केन्द्रीय स्तर पर द्विसंदनीय व्यवस्थापिका की स्थापना किस अधिनियम से हुई?
6. अशोक ने किस शिलालेख में घोषणा की कि "सारी प्रजा मेरी संतान है"?
7. अर्थशास्त्र के लेखक कौन हैं?
8. मेगस्थनीज की पुस्तक का क्या नाम है?

1.3 सारांश

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन के पश्चात आप यह जानने और समझने में सक्षम हो गये होंगे कि किस प्रकार से भारतीय प्रशासन प्राचीन मौर्य काल से अपनी विकास की यात्रा शुरु करके मुगल काल से होते हुए ब्रिटिश काल तक की यात्रा पूर्ण की है। इस अध्ययन में आप ने यह देखा कि मौर्य साम्राज्य का स्वरूप राजतंत्रात्मक था जिसमें शासन का प्रधान राजा होता था। राजपद एक महत्वपूर्ण पद हो गया और इस पद की शक्ति एवं अधिकार बढ़ गये। राजा, राज्य का प्रमुख होता था। जिसके पास कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के अधिकारों के साथ वित्तीय शक्तियाँ भी थी। राजा की खुशी प्रजा की खुशी पर निर्भर करती थी। जनकल्याण पर राजा का कल्याण आश्रित था। राज्य में रहने वाले लोगों के हितों का सम्पादन ही राजा का प्रमुख कर्त्तव्य था। प्रशासन के शीर्ष पर बादशाह होता था। वह सभी प्रकार के सैनिक एवं असैनिक मामलों का प्रधान होता है था। बादशाह मुगल साम्राज्य के प्रशासन की धुरी था और बादशाह की उपाधि धारण करता था, जिसका आशय था कि राजा अन्य किसी भी सत्ता के अधीन नहीं है। वह समस्त धार्मिक तथा धर्मोत्तर मामलों में अंतिम निर्णायक व अंतिम सत्ताधिकारी है। वह सेना, राजनीतिक, न्याय आदि का सर्वोच्च पदाधिकार है। वह सम्पूर्ण सत्ता का केन्द्र है तथा खुदा का प्रतिनिधि है। इसके बाद भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के आगमन के साथ ब्रिटिश प्रशासन के बीज पड़े। सन् 1600 में एक व्यापारिक कम्पनी के रूप में ईस्ट इंडिया कम्पनी का भारत में आगमन हुआ, किन्तु देखते ही देखते यह कम्पनी और इसके माध्यम से ब्रिटिश संसद का भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य का भारतीय प्रशासन के विविध पक्षों पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

1.4 शब्दावली

राजतंत्र- राजतंत्र वह शासन है जिसमें शासन का प्रधान राजा होता है। राजा, राज्य का प्रमुख होता था। जिसके पास कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के अधिकारों के साथ वित्तीय शक्तियाँ निहित हों।

सद्र-उस-सूद्र- यह बादशाह का मुख्य धार्मिक परामर्शदाता होता था। यह धार्मिक अनुदानों को नियंत्रित करता था। साथ ही यह धार्मिक मामलों से संबंधित मुकद्दमे भी देखता था।

मुख्य काज- मुगल काल में यह न्याय विभाग का प्रधान होता था।

जागीरदारी प्रथा- मुगल काल में राजपूत जमींदारों के माध्यम से भू-राजस्व संग्रह करने की प्रथा, जो सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली थे और जाति, गोत्र के आधार पर विभाजित थे। अकबर मनसबदारों का वेतन नकद में देना चाहता था, किन्तु उस समय के कुलीन-वर्ग को भू-संपत्ति से जबर्दस्त आकर्षण था। इसलिए जागीरदारी प्रथा के अन्तर्गत कुछ अधिकारियों को जागीर में वेतन दिया जाता था।

इक्तादारी और जागीरदारी प्रथा- दिल्ली सल्तनत काल में इक्तादारी पद्धति प्रचलित थी और इक्ता के मालिक इक्तादार कहे जाते थे। इक्तादारी पद्धति भी कृषकों से अधिशेष प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण जरिया था किन्तु इक्ता और जागीर में एक महत्वपूर्ण अंतर यह था कि इक्ता में भूमि का आबंटन होता था, जबकि जागीर में भू-राजस्व का आबंटन होता था। जागीरदारी व्यवस्था और इक्तादारी व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण अंतर यह भी था कि जागीरदारों को केवल भू-राजस्व की वसूली का अधिकार दिया गया था, संबंधित क्षेत्र के प्रशासन का नहीं।

1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1773, **2.** सन् 1784, **3.** सन् 1600, **4.** मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड, **5.** मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड, **6.** धौली शिलालेख, **7.** कौटिल्य, **8.** इंडिका

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय संविधान- ब्रज किशोर शर्मा।
2. भारतीय लोक प्रशासन- बी0एल0 फड़िया।
3. भारतीय लोक प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी।

1.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारतीय संविधान- डी0डी0 बसु।
2. भारतीय लोक प्रशासन- एस0सी0 सिंहल।

1.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश काल में भारतीय प्रशासन के विकास पर निबंध लिखिये।
2. मुगल प्रशासन,केन्द्रीय प्रशासन था, स्पष्ट कीजिये।
3. मौर्य प्रशासन में राजा पर कर्त्तव्य का अंकुश था, व्याख्या कीजिये।

इकाई-2 भारतीय प्रशासन की विशेषताऐं

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तर दायी कारण
2.3 भारतीय प्रशासन की विशेषताऐं
2.3.1 गतिशील प्रशासन
2.3.2 विकास प्रशासन
2.3.3 उत्तर दायी प्रशासन
2.3.4 नौकरशाही एवं लालफीताशाही
2.3.5 प्रशासन की तटस्थता
2.3.6 सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ
2.3.7 प्रशासन की बढ़ती हुई शक्तियाँ
2.3.8 प्रशासन का लक्ष्य सामाजिक-आर्थिक न्याय
2.3.9 समन्वित प्रशासन
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

प्रथम इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जानने और समझने में सक्षम हो गये होंगे कि किस प्रकार से भारतीय प्रशासन प्राचीन मौर्य काल से अपनी विकास की यात्रा शुरु करके मुगल काल से होते हुए ब्रिटिश काल तक की यात्रा पूर्ण की है। भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के आगमन के साथ ब्रिटिश प्रशासन के बीज पड़े। सन् 1600 में एक व्यापारिक कम्पनी के रूप में ईस्ट इंडिया कम्पनी का भारत में आगमन हुआ, किन्तु देखते ही देखते यह कम्पनी और इसके माध्यम से ब्रिटिश संसद का भारत पर साम्राज्य स्थापित हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य का भारतीय प्रशासन के विविध पक्षों पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

इस इकाई में हम भारतीय प्रशासन की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। जिसमें हम स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तर दायी कारणों का अध्ययन करते हुए संसदीय लोकतंत्र, संघात्मक शासन, स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन की बदलती प्रकृति (प्रशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों में परिवर्तन) का अध्ययन करेंगे। साथ ही यह भी देखेंगे कि किस प्रकार भारतीय संविधान, समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है और अंततः हम यह अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार भारतीय प्रशासन गतिशील प्रशासन है, विकास प्रशासन है,

उत्तर दायी प्रशासन है और राजनीतिक उथल-पुथल से अपने को अलग रखते हुए सामाजिक-आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समन्वित रूप से कार्य कर रहा है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तर दायी कारणों को जान सकेंगे।
- भारतीय प्रशासन की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- संसदीय लोकतंत्र की स्थापना के उद्देश्यों को जान सकेंगे।
- संघात्मक शासन और उसकी स्थापना के कारणों को जान सकेंगे।

2.2 स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तरदायी कारण

जैसा कि हम जानते है कि 15 अगस्त 1947 को हमारे देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। देश को आजादी मिलाने के साथ ही उन सपनों को साकार करने के लिए भी प्रयास शुरू किये जाने लगे, जिनको लक्ष्य मानकर आजादी के दीवानों ने संघर्ष किया था। लेकिन उन सपनों को साकार करने के लिए यह आवश्यक था कि उसके अनुरूप प्रशासनिक तंत्र का निर्माण किया जाए साथ ही साथ इस नवनिर्मित प्रशासनिक तंत्र के लक्ष्य भी स्पष्ट किये जाए। स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई कारण उत्तर दाई थे, जो निम्नलिखित हैं-

2.2.1 संसदीय लोकतंत्र की स्थापना

स्वतंत्रता के पश्चात देश में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गयी। आजादी के पूर्व कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तर दायी नहीं थी, वह केवल ब्रिटिश आकाओं के प्रति ही उत्तर दायी थी। परन्तु संसदीय लोकतंत्र की स्थापना के साथ ही कार्यपालिका को विधायिका के प्रति उत्तर दायी बनाया गया। कार्यपालिका का अर्थ मंत्रिमण्डल से है, जबकि विधायिका का तात्पर्य कानून निर्माण करने वाली संस्था 'संसद' से है। कार्यपालिका का गठन संसद के सदस्यों में से किया जाता है और कार्यपालिका के गठन का अवसर उस दल को मिलाता है, जिसे संसद के निम्न सदन में बहुमत प्राप्त होता है और संसद के निम्न सदन में जनप्रतिनिधि होते हैं जो जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुनकर आते है। इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि कार्यपालिका अपने अस्तित्व के लिए जनप्रतिनिधियों के बहुमत के साथ समर्थन पर निर्भर करती है और ये जनप्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तर दायी होते हैं। इस प्रकार अब प्रशासन ,ब्रिटिश शासन के विपरीत,जनता के प्रति उत्तर दायी हैं।

2.2.2 संघात्मक शासन की स्थापना

ब्रिटिश शासन के समय हमारे देश में एकात्मक शासन था जिसमे एक केन्द्र से शासन संचालित किया जाता था । जब कि हमारे देश में भौगोलिक ,सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नताऐं पायी जाती हैं, इन भिन्नताओं के साथ इनकी समस्याऐं भी भिन्न प्रकृति की होती हैं, इसलिये इनका स्थानीय आधार पर बेहतर समाधान किया जा सकता है। शक्ति विभाजन के सिद्धान्त के आधार संघात्मक शासन की स्थापना की गयी जो सामाजिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं को बनाए रखने के साथ ही उनकी समस्याओं के स्थानीय स्तर पर समाधान संभव हो सका।

2.2.3 प्रशासन की प्रकृति में परिवर्तन (प्रशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों में परिवर्तन)

जैसा कि यह सर्वविदित है कि भारतीय संविधान में उन लक्ष्यों और उद्देश्यों का स्पष्ट प्रावधान किया गया है, जिनकी सिद्धि के लिए प्रशासन को करना है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि स्वतंत्रता के पहले हमारे देश का प्रशासन नियामकीय प्रकृति का था, दूसरे शब्दों में प्रशासन के कार्य मुख्यतःनियामकीय थे, अर्थात प्रशासन का मुख्य कार्य क़ानून और व्यस्था बनाये रखना था, जिससे अंग्रेज शासन को अपने लक्ष्यों की सिद्धि में अनवरत सहूलियत बनी रहे।

परन्तु स्वतंत्रता के उपरान्त संविधान निर्माताओं ने स्पष्ट रूप से उन लक्ष्यों का प्रावधान किया जिनको ध्यान में रखकर प्रशासन को संचालित किया जाना था। पहले प्रशासन जनता पर अपना दबाव बनाकर कार्य करता था, जनता के कोई मौलिक अधिकार नहीं थे, जनता का यह दायित्व था की प्रशासन के निर्देशों का पालन करता रहे। किन्तु आजादी के बाद अब प्रशासन जनता के लिए काम करता है, क्योंकि जिसकी हम आप को ऊपर बता चुके हैं कि हमारे देश में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गयी, जिसमें सरकार जनता द्वारा निर्वाचित होती है और जनता के लिए काम करती है, इसलिए अब प्रशासन जनता के दबाव में काम करता है। संविधान के द्वारा मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया। ये वे अधिकार हैं, जो राज्य और व्यक्तियों के विरूद्ध प्रदान किये गये हैं। अर्थात इन अधिकारों के उल्लंघन होने पर चाहे वे व्यक्ति के द्वारा हों या राज्य के द्वारा हों, व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अनुच्छेद- 32 के अनुसार सर्वोच्च न्यायलय और अनुच्छेद- 226 के तहत उच्च न्यायलय में जा सकता है।

इसी के साथ-साथ संविधान के भाग- 4 में नीति-निदेशक तत्वों का उपबन्ध भी करके राज्य को कुछ कल्याणकारी दायित्व भी सौंपे गये , जिनको लागू करने की जिम्मेदारी प्रशासन की है।

2.2.4 समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष राज्य

हमारे मूल संविधान में समाजवादी और 'पंथनिरपेक्ष' शब्द का समावेश नहीं किया गया था। 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा इनका समावेश संविधान किया गया। इन शब्दों के समावेश से प्रशासन के लक्ष्यों में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया। इसको और अधिक स्पष्ट करने के लिए इनके अर्थ को भी स्पष्ट करना आवश्यक है। समाजवाद का तात्पर्य है कि राज्य लोगों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने प्रयास करेगा। पंथनिरपेक्ष का अर्थ है कि राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं होगा, इसका तात्पर्य यह भी है कि राज्य सभी धर्मों के साथ सामान बर्ताव करेगा, किसी के साथ किसी भी प्रकार का पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं करेगा। यद्यपि इन शब्दों के संविधान में समावेश के पूर्व भी ऐसे लक्ष्यों की पूर्ति के लिए उपबन्ध थे। इन उपबन्धों से प्रशासन की जिम्मेदारी में आमूलचूल परिवर्तन आया है।

2.3 भारतीय प्रशासन की विशेषताऐं

इस प्रकार से स्वतंत्रता के उपरान्त भारतीय प्रशासन के उद्देश्यों और लक्ष्यों में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन के कारण भारतीय प्रशासन में निम्नलिखित विशेषताऐं दिखाई पड़ती हैं, जो इस प्रकार हैं-

2.3.1 गतिशील प्रशासन

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं कि आजादी के बाद प्रशासन के उद्देश्यों और लक्ष्यों में आमूलचूल परिवर्तन देखने को मिल रहा है। आज प्रशासन जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बन गया है। समय के बदलाव के

साथ नित्य नई आवश्यकताऐं और समस्याऐं पैदा होती रहती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति और समस्याओं के समाधान हेतु प्रशासन को निरन्तर तत्पर रहना होता है और बदलती परिस्थितियों के अनुरूप अपने ढालते रहना है, क्योंकि अब प्रशासन जनता के स्वामी के रूप में नहीं वरन सेवक के रूप में कार्य कर रहा है।

2.3.2 विकास प्रशासन

विकास प्रशासन एक परिवर्तनशील अवधारणा है जो निरन्तर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को लाने के लिए प्रयत्नशील है, साथ ही इन परिवर्तनों को सकारात्मक दिशा देने का भी कार्य कर रहा है। इसका सम्बन्ध योजना के निर्माण, इसके निर्माण हेतु आवश्यक पूर्वाश्यक्ताओं की पूर्ति से भी सम्बन्ध रखता है। विकास प्रशासन का सम्बन्ध नीतियों के कार्यान्वयन से है, इसलिए सरकार के जनकल्याणकारी और सशक्तिकरण सम्बन्धी नीतियों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी भी इसी पर होती है।

2.3.3 उत्तरदायी प्रशासन

संसदीय शासन की एक प्रमुख विशेषता, उत्तर दायी शासन की स्थापना। चूँकि हमारे देश में संसदीय शासन में निम्न सदन(लोक सभा) के सदस्यों का चुनाव जनता के द्वारा, प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। मंत्री-परिषद का गठन संसद के सदस्यों में से ही किया जाता है। मंत्री-परिषद के सदस्य सम्बंधित विभाग के अध्यक्ष (राजनीतिक प्रमुख) होते हैं। इसलिए अपने विभाग के कार्यों के लिए वे जनता के प्रति उत्तर दायी होते हैं।

2.3.4 नौकरशाही एवं लालफीताशाही

हमारे देश में नौकरशाही का एक विस्तृत ढ़ाँचा विद्यमान है, जो नीति-निर्माण में सहयोगी भूमिका से लेकर, नीति के क्रियान्वयन तक के कार्यों में सक्रिय रहती है। परन्तु यह नौकरशाही अपने दायित्वों के निर्वहन में नियम-कानून और प्रक्रिया पर ज्यादा जोर देती दिखायी देती है, जिससे ये नियम-कानून और प्रक्रिया पर ज्यादा जोर देना ही साध्य के रूप में दिखायी देने लगता है, जिससे लालफीताशाही का दोष प्रशासन में उभरकर सामने आता है।

2.3.5 प्रशासन की तटस्थता

भारतीय प्रशासन की एक और महत्वपूर्ण विशेषता इसकी राजनीतिक तटस्थता। अर्थात लोक सेवक अपने सार्वजनिक जीवन में राजनीतिक अभिव्यक्तियों अर्थात राजनीतिक विचारों और व्यवहारों से सर्वथा दूर रखता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रशासनिक अधिकारी बिना किसी दलीय निष्ठा के पूर्वाग्रह से मुक्त होकर अपने दायित्वों का निर्वहन करता है। सरकार चाहे किसी भी दल की हो, उसका सम्बन्ध केवल नीतियों के निष्पक्ष क्रियान्वयन से होता है न कि दलीय भावना से। इस तरह के राजनीतिक तटस्थता के लिए लोक सेवकों हेतु भारतीय संविधान में उपबंध किये गये हैं।

2.3.6 सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ

आजादी के बाद सामान्य रूप से प्रशासन में सामान्यज्ञों की नियुक्ति होती थी, किन्तु उसके बाद के समय में विभिन्न प्रकार की जरूरतों को पूरा करने के लिए विशेषज्ञों की भी नियुक्ति की जाने लगी। जैसे डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, कृषि वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री,विधिवेत्ता आदि।

2.3.7 प्रशासन की बढ़ती हुई शक्तियाँ

स्वतन्त्रता के पूर्व प्रशासन की प्रकृति नियामकीय थी, जिसका प्रमुख लक्ष्य कानून और व्यवस्था बनाए रखना था। परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गयी, जिसमे सरकार जनता की भलाई के लिए कार्य करती है न कि अपने लाभ के लिए, जैसा कि अंग्रेज शासन काल में हुआ करता था। स्वतन्त्रता के पश्चात संविधान निर्माताओं ने मूलभूत सामजिक आर्थिक लक्ष्यों की घोषणा की है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नियोजन प्रक्रिया प्रारम्भ की गयी । इस कारण से प्रशासन की शक्तियों में अभूतपूर्व वृद्धि कर दी है। नित्य नवीन कल्याणकारी योजनाऐं लागू की जा रही हैं, इनको लागू करने की जिम्मेदारी प्रशासन पर ही होती है। इसके साथ ही साथ अब तो सशक्तिकरण से सम्बंधित नीतियां भी लागू की जा रही हैं, जिससे समाज में अब तक हासिए पर रहे समुदायों को भी समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके। यदि इन सब बातों को हम संक्षेप में कहें तो यह है कि व्यक्ति के जन्म से पूर्व माँ के स्वास्थ्य, जन्मोपरान्त जन्म प्रमाण-पत्र, बच्चे के स्वास्थ्य, पोषण, नाना प्रकार के टीके, जनगणना, उसकी शिक्षा, रोजगार, विवाह पंजीकरण, बृद्धावस्था में उनके हित में विभिन्न प्रकार के सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम और अंततः मृत्यु पंजीकरण और इसी प्रकार से अन्य जो भी लोकहित में आवश्यक कार्य हों प्रशासन के द्वारा ही किये जाते हैं। लोकतंत्र में प्रशासन की बढती जिम्मेदारियों ने उसकी शक्तियों में भी अभूतपूर्व बृद्धि कर दी है।

2.3.8 प्रशासन का लक्ष्य सामाजिक-आर्थिक न्याय

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी, जिसका उद्देश्य देशवासियों को उन सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों से सुसज्जित करना था, जिनसे अभी तक वे वंचित रहे हैं, क्योंकि परम्परागत भारतीय समाज में कुछ सामाजिक और आर्थिक निर्योग्यताऐं प्रचलित थीं। जैसे अश्पृश्यता(छुआ-छूत), व्यवसाय की निर्योग्यताऐं आदि। हमारे संविधान में एक तरफ तो इन निर्योग्यताओं को समाप्त किया गया तो दूसरी तरफ संविधान के द्वारा देशवासियों को विभिन्न प्रकार के सामाजिक और आर्थिक अधिकार प्रदान किये गये, जिससे वे सम्मान पूर्वक अपना जीवन यापन कर सकें। इस प्रकार के व्यापक उपबंध हमारे संविधान भाग-3 में मूलाधिकार और भाग-4 के नीति-निदेशक तत्वों में किये गये हैं।

2.3.9 समन्वित प्रशासन

हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधताऐं हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने संघात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया। जिसकी मुख्य विशेषता- लिखित, निर्मित और कठोर संविधान, संघ सरकार और राज्य सरकार के बीच शक्तियों का विभाजन, संविधान की व्याख्या, नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा और संघ सरकार और राज्य सरकार के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों का निराकरण करने के लिए स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना। इसके साथ ही साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना के लिए एकात्मक शासन के मुख्य प्रावधानों को भी सम्मिलित किया गया। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि देश, स्वतंत्रता के समय दुखद विभाजन को देख चुका था। इसी बात को ध्यान में रखते हुए संघ और राज्य के लिए सम्मिलित सेवाओं का प्रावधान किया गया, जिसे अखिल भारतीय सेवा कहते हैं। जिसमें तीन अखिल भारतीय सेवाऐं हैं, पहला- भारतीय प्रशासनिक सेवा, दूसरा- भारतीय पुलिस सेवा और तीसरा- भारतीय वन सेवा। इन सेवाओं का उद्देश्य केन्द्र और राज्य के बीच सहयोग को निरंतर प्रोत्साहित करना, जिससे राष्ट्र निर्माण का कार्य सफलता पूर्वक किया जा सके और कल्याणकारी और सशक्तिकारक नीतियों को भी सफलतापूर्वक लागू किया

जा सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि केन्द्र सरकार के पास अपना कोई अलग प्रशासनिक तंत्र नहीं है, अपितु केन्द्र की नीतियों को भी सफलतापूर्वक लागू करने में राज्य के प्रशासनिक तंत्र से सहयोग लिया जाता है। भारतीय प्रशासन की उपर्युक्त विशेषताओं के साथ ही साथ इसके कुछ अन्य पक्षों का भी अध्ययन करना आवश्यक होगा जो कि इनमें प्रायः दिखाई देता है-

- पिछले कुछ वर्षों में यह तथ्य उभरकर सामने आया है की प्रशासनिक अधिकारियों के अपने दायित्वों के निर्वहन में राजनीतिक हस्तक्षेप दिखाई दे रहा है, परिणामस्वरूप प्रशासकों में निराशा की भावना प्रबल होती दिखाई देती है। राजनीति में अपराधीकरण बहुत ही चिंता का विषय है। इसके निराकरण हेतु कोई संस्थागत उपाय और उन उपायों का समुचित क्रियान्वयन का प्रबंध करना उपयोगी होगा।
- कल्याणकारी योजनाओं, विकास कार्यों और सशक्तिकारक नीतियों के क्रियान्वयन में जनता की सक्रीय भागीदारी नहीं हो पाती है, जिसके फलस्वरूप नीतियों और कार्यक्रमों की सफलता संदिग्ध हो जाती है। इसका प्रमुख कारण प्रशासन के द्वारा जनता को साथ लेकर न चलने की प्रबृत्ति है। इस लिए आवश्यकता इस बात की है प्रशासन को जनता के प्रति संवेदनशील बनाया जाये और प्रशासकों के लिए भी नियत अंतराल पर नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किये जाते रहें। साथ ही जिस क्षेत्र और जिस समुदाय विशेष के लिए नीति का निर्माण किया जाना है, उसकी भी नीति-निर्माण में भागीदारी सुनिश्चित करने के उपाय किये जाने चाहिए।
- देश को आजाद हुए छ: दशक से अधिक हो चुके हैं,परन्तु आज भी समाज का ढ़ाँचा सामंतवादी ही दिखाई देता है, फलस्वरूप बहुत से कार्यक्रमों का लाभ आम आदमी तक नहीं पहुँच पाता है। जिसकी चर्चा हमारे एक पूर्व प्रधानमन्त्री कर चुके हैं, जिसमें उन्होंने यहाँ तक कहा कि गाँव के लिए भेजे गये एक रुपये में, मात्र 15 पैंसे ही उन तक पहुँच पाता है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि इस तरह की सुविधाऐं देश के आम आदमी तक पहुँचे। इसके लिए सामाजिक अंकेक्षण जैसे उपायों के साथ इस प्रकार के अन्य उपायों को भी अपनाने पर जोर दिया जाना चाहिए।
- वोहरा समिति(1955) ने अपने प्रतिवेदन में राजनीतिज्ञों, प्रशासकों और माफियाओं के बीच संबंधों को उजागर करके यह स्पष्ट कर दिया कि अधिकतर योजनाएं आम आदमी के नाम से संचालित तो हो रही हैं, परन्तु उनका वास्तविक लाभ लक्षित व्यक्ति और समूह तक नहीं पहुँच पा रहा है।

अभ्यास प्रश्न-

1. 15 अगस्त 1947 को हमारे देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। सत्य/असत्य
2. संसद के निम्न सदन के जनप्रतिनिधि, जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुनकर आते हैं। सत्य/असत्य
3. शक्ति विभाजन के सिद्धान्त के आधार संघात्मक शासन की स्थापना की गयी है। सत्य/असत्य
4. मूल अधिकारों के उल्लंघन होने पर व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अनुच्छेद- 32 के अनुसार सर्वोच्च न्यायलय और अनुच्छेद- 226 के तहत उच्च न्यायलय में जा सकता है। सत्य/असत्य
5. संविधान के भाग- 4 में नीति निदेशक तत्वों का उपबंध किया गया है। सत्य/असत्य
6. 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता का समावेश संविधान में किया गया। सत्य/असत्य
7. संविधान के भाग- 3 में मूल अधिकारों का प्रावधान किया गया है। सत्य/असत्य

2.4 सारांश

इस इकाई में हमने स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन के स्वरूप में परिवर्तन के लिए कई उत्तर दाई कारणों का अध्ययन किया जिसमें संसदीय लोकतंत्र, संघात्मक शासन, स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन की बदलती प्रकृति (प्रशासन के लक्ष्यों और उद्देश्यों में परिवर्तन) का अध्ययन किया है। साथ ही यह भी अध्ययन किया कि किस प्रकार भारतीय संविधान, समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है और अंततः हमने यह अध्ययन किया कि किस प्रकार भारतीय प्रशासन, गतिशील प्रशासन है, विकास प्रशासन है, उत्तर दायी प्रशासन है और राजनीतिक उथल-पुथल से अपने को अलग रखते हुए सामाजिक-आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समन्वित रूप से कार्य कर रहा है। साथ ही यह भी देखा कि किस प्रकार से प्रशासन में लालफीताशाही के दुर्गुण उभरे हैं, जिसमें सामाजिक-आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनायी जाने वाली प्रक्रिया को इतना महत्व देते दिखाई देते हैं कि, लक्ष्य गौण हो जाते हैं। परन्तु बावजूद इसके स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय प्रशासन ने सामाजिक-आर्थिक न्याय की स्थापना के मार्ग पर चलने का अच्छा प्रयास किया है, किन्तु बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालकर जन-आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

2.5 शब्दावली

संसद- भारत में कानून निर्माण की सर्वोच्च संस्था है जो राष्ट्रपति, राज्य सभा और लोक सभा से मिलकर बनती है।

संघात्मक शासन- स्थानीय स्वायत्तता के साथ राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा को ध्यान में रखकर स्थापित की जाने वाली शासन व्यवस्था है।

समाजवादी- भारत के सन्दर्भ में इसका अर्थ यह है कि राज्य लोगों के बीच आर्थिक असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।

पंथनिरपेक्ष- इसका अर्थ है कि राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं होगा और वह सभी धर्मों को सामान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य, **3.** सत्य, **4.** सत्य, **5.** सत्य, **6.** सत्य, **7.** सत्य

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय लोक प्रशासन- बी0एल0 फड़िया।
2. भारतीय लोक प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी।

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारतीय संविधान- डी0डी0 बसु।
2. भारतीय लोक प्रशासन- एस0सी0 सिंहल।

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय प्रशासन के विशेषताओं की विवेचना कीजिये।
2. स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय प्रशासन की प्रकृति में परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट कीजिये।

इकाई- 3 भारतीय संविधान की विशेषताऐं

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 भारतीय संविाधान की प्रस्तावना
3.3 भारतीय संविधान की विशेषताऐं
3.4 विभिन्न स्रोतों से लिए गये उपबंध
3.5 लोक कल्याणकारी राज्य
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

इकाई एक में हमने भारतीय संविधान के निमार्ण में विदेशी संविधान के प्रभावों का अध्ययन किया साथ ही भारतीय संविधान के महत्वपूर्ण पक्षों का भी अध्ययन किया है।

इस इकाई में भारतीय संविधान की विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन किया जायेगा। जिससे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को समझने में और सुविधा हो सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि भारतीय संविधान में विश्व के संविधानों के उन्हीं पक्षों को शामिल किया गया है, जो हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप है। चाहे वह संसदीय शासन हो चाहे संघात्मक शासन हो या एकात्मक शासन हो। भारत ने ब्रिटेन के संसदीय शासन को अपनाया गया, किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारतीय संविधान इतना विस्तृत क्यों हुआ, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- भारतीय संविधान में संसदीय तत्व क्यों अपनाये गये, इसकी जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- भारतीय संविधान में संघात्मक उपबन्ध क्यों किये गये, इसकी जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- संसदीय शासन के बाद भी संविधान की सर्वोच्चता हैं, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।

3.2 भारतीय संविधान की प्रस्तावना

प्रत्येक देश का संविधान उसके देश-काल की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। चूंकि प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियां भिन्न-भिन्न होती हैं, इसलिए संविधान निर्माण के समय उन सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। इस भिन्नता के कारण यह संभव है कि किसी देश में कोई व्यवस्था सफल हो तो वह अन्य देश में उसी स्वरूप में न सफल हो या उसे उसी रूप में लागू न किया जा सके। यदि हम देखें तो हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय विश्व के प्रचलित संविधानों का अध्ययन किया और उन संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर अपनाने पर जोर दिया है। जैसे- हमारे देश में ब्रिटेन के संसदीय शासन का अनुसरण किया गया है किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है बल्कि संसदीय के साथ संघात्मक शासन को अपनाया गया है। यहाँ यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक है कि संसदीय के साथ एकात्मक शासन न अपनाकर संघात्मक शासन क्यों अपनाया गया है? चूंकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बहुलता पायी जाती है, इसलिए इनकी पहचान को बनाए रखने के लिए संघात्मक शासन की स्थापना को महत्व प्रदान किया गया। परन्तु संघात्मक शासन में पृथक पहचान, पृथकतावाद को बढ़ावा न दे, इसके लिए एकात्मक शासन के लक्षणों का भी समावेश किया गया है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा न उत्पन्न हो, क्योंकि आजादी के समय हमारा देश विभाजन के दु:खद अनुभव को झेल चुका था।

यहाँ हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अन्य देशों के संविधान की भांति हमारे देश के संविधान का प्रारम्भ भी प्रस्तावना से हुआ है। प्रस्तावना को प्रारम्भ में इसलिए रखा गया है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस संविधान के निर्माण का उद्देश्य क्या था? साथ ही वैधानिक रूप से संविधान के किसी भाग की वैधानिक व्याख्या को लेकर यदि स्पष्टता नहीं है, तो प्रस्तावना मार्गदर्शक का कार्य करती है। संविधान की प्रस्तावना के महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम प्रस्तावना का अध्ययन करना आवश्यक है-

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में 'समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता' शब्द नहीं था। इसका भारतीय संविधान में समावेश 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है।

अब हम प्रस्तावना में प्रयोग में लाये गये महत्वपूर्ण शब्दों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे-

1. **हम भारत के लोग-** इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय संविधान का निर्माण किसी विदेशी सत्ता के द्वारा नहीं किया गया है, बस भारतीयों ने किया है। प्रभुत्व शक्ति का स्रोत स्वंय जनता है और अन्तिम सत्ता का निवास जनता में है।
2. **सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न**- इसका तात्पर्य परम सत्ता या सर्वोच्च सत्ता से है, जो निश्चित भू-क्षेत्र अर्थात भारत पर लागू होती है। वह परम सत्ता किसी राजे-महाराजे या विदेशी के पास न होकर स्वंय भारतीय जनता के पास है और भारतीय शासन अपने आंतरिक प्रशासन के संचालन और परराष्ट्र संबंधों के संचालन में पूरी स्वतंत्रता का उपयोग करेगा। यद्यपि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, परन्तु इससे उसके सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. **पंथ निरपेक्ष-** यह शब्द मूल संविधान में नहीं था, वरन् इसका समावेश संविधान में 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इसका तात्पर्य है कि- राज्य किसी धर्म विशेष को 'राजधर्म' के रूप

में संरक्षण नहीं प्रदान करेगा, वरन् वह सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करेगा और उन्हें समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा।

4. **गणराज्य-** इसका तात्पर्य है कि भारतीय संघ का प्रधान, कोई वंशानुगत राजा या सम्राट ना होकर के निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। ब्रिटेन ने वंशानुगत राजा होता है, जबकि अमेरिका में निर्वाचित राष्ट्रपति है। इसलिए भारत, अमेरिका के समान गणराज्य है।
5. **न्याय-** हमारा संविधान नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की गारण्टी देता है। न्याय का तात्पर्य है कि राज्य का उद्देश्य सर्वजन का कल्याण और सशक्तिकरण है, न कि विशेष लोगों का। सामाजिक न्याय का तात्पर्य है कि अब तक हासिये पर रहे वंचित समुदायों को भी समाज की मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान किये जायें तथा उनका क्रियान्वयन भी सुनिश्चित किया जाए। आर्थिक न्याय का तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी न्यूनतम आवश्यकता को वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने का अवसर प्रदान किये जाए। राजनीतिक न्याय का तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान का भेदभाव किये बिना उसे अपना प्रतिनिधि चुनने और स्वंय को प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार होना चाहिए।
6. **एकता और अखण्डता-** मूल संविधान में एकता शब्द ही था। पर 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा अखण्डता शब्द का समावेश किया गया। जिसका तात्पर्य यह है कि धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रान्त, जाति आदि की विभिन्नता के साथ एकता के आदर्श को अपनाया गया है। इसके साथ अखण्डता शब्द को जोड़कर 'अखण्ड एकता' को साकार करने का प्रयास किया गया है। इसके समर्थन में भारतीय संविधान में 16वॉ संवैधानिक संशोधन भी किया गया है।

3.3 भारतीय संविधान की विशेषताऐं

भारतीय संविधान की विशेषताऐं निम्नलिखित हैं-

1. **लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान-** संविधान के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है, प्रभुसत्ता अर्थात सर्वोच्च सत्ता का स्रोत जनता है। प्रभुसत्ता का निवास जनता में है। इसको संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है कि 'हम भारत के लोग .....।'
2. **विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान-** हमारा संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। जिसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ हैं। जबकि अमेरिका के संविधान में 7 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद है। भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कई कारण है। जो निम्नलिखित हैं-
    - हमारे संविधान में संघ के प्रावधानों के साथ-साथ राज्य के शासन से सम्बन्धित प्रावधानों को भी शामिल किया है। राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं है केवल जम्मू-कश्मीर को छोड़कर। जबकि अमेरिका में संघ और राज्य का पृथक संविधान है।
    - जातीय, सांस्कृतिक, भौगोलिक व सामाजिक विविधता भी संविधान के विशाल आकार का कारण बना, क्योंकि इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, आग्ल भारतीय, अल्पसंख्यक आदि के लिए पृथक रूप से प्रावधान किये गये हैं।

- नागरिकों के मूल अधिकारों का विस्तृत उल्लेख करने के साथ ही साथ नीति-निदेशक तत्वों और बाद में मूल-कर्तव्यों का समावेश किया जाना भी संविधान के विस्तृत होने का आधार प्रदान किया है।
- नवजात लोकतन्त्र के सुचारू रूप से संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेन्सियों से सम्बन्धित प्रावधान भी किये गये हैं। जैसे- निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग, वित्त आयोग, भाषा आयोग, नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक, महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग आदि। संघात्मक शासन का प्रावधान करने के कारण केन्द्र राज्य सम्बन्धों का विस्तृत उपबन्ध संविधान में किया गया है।

3. **सम्पूर्ण प्रमुख सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य-** जैसा कि हम ऊपर प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके हैं कि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है। भारत अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने आन्तरिक और वाह्य मामले पूरी तरह से स्वतन्त्र है। संघ का प्रधान कोई वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति है, न कि ब्रिटेन की तरह सम्राट।
4. **पंथ निरपेक्ष-** भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ-निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। यद्यपि इस शब्द का समावेश संविधान में 42वें संविधान संशोधन 1976 के द्वारा किया है, किन्तु इससे सम्बन्धित प्रावधान संविधान के विभिन्न भागों में पहले से विद्यमान है। जैसे- मूल अधिकार में और इसी प्रकार कुछ अन्य भागों में भी। पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य है कि राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं है। सभी धर्मों के साथ वह समान व्यवहार करेगा और समान संरक्षण प्रदान करेगा।
5. **समाजवादी राज्य-** इस शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इसका तात्पर्य है कि राज्य विभिन्न समुदायों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।
6. **कठोरता और लचीलेपन का समन्वय-** संविधान में संशोधन प्रणाली के आधार पर दो प्रकार के संविधान होते हैं। पहला- कठोर संविधान, दूसरा- लचीला संविधान। कठोर संविधान वह संविधान होता है, जिसमें संशोधन कानून निर्माण की सामान्य प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है, जैसा कि अमेरिका के संविधान में है। अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी सम्भव है जब कांग्रेस के दोनों सदन(सीनेट, प्रतिनिध सभा) दो तिहाई बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पारित करें और उसे अमेरिकी संघ के 50 राज्यों में से कम से कम तीन चौथाई राज्य उसका समर्थन करें। अर्थात न्यूनतम राज्य।

   लचीला संविधान वह संविधान है, जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। जैसे ब्रिटेन का संविधान। क्योंकि ब्रिटिश संसद साधारण बहुमत से ही यातायात कर लगा सकती तो वह साधारण बहुमत से ही क्राउन की शक्तियों को कम कर सकती है।

   किन्तु भारतीय संविधान न तो अमेरिका के संविधान के समान कठोर है और न ही ब्रिटेन के संविधान के समान लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन तीन प्रकार से किया जा सकता है-

   - पहला- कुछ अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।

- दूसरा- संविधान के ज्यादातर अनुच्छेदों में संशोधन दोनों सदनों के अलग-अलग बहुमत से पारित करके साथ ही यह बहुमत उपस्थित सदस्यों का दो तिहाई है।
- तीसरा- भारतीय संविधान में कुछ अनुच्छेद, जो संघात्मक शासन प्रणाली से सम्बन्धित हैं, उपरोक्त क्रम दो के साथ (दूसरे तरीका) कम से कम आधे राज्यों के विधान मण्डलों के द्वारा स्वीकृति देना भी आवश्यक है।

  इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कठोरता और लचीलेपन का मिश्रिण होने का उदाहरण पेश करता है। भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने इसको स्पष्ट करते हुए कहा था कि- 'हम संविधान को इतना ठोस और स्थायी बनाना चाहते हैं, जितना हम बना सकें। परन्तु सच तो यह है कि संविधान तो स्थायी होते ही नहीं हैं। इनमें लचीलापन होना चाहिए। यदि आप सब कुछ कठोर और स्थायी बना दें तो आप राष्ट्र के विकास को तथा जीवित और चेतन लोगों के विकास को रोकते हैं। हम संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते कि वह बदलती हुई दशाओं के साथ न चल सके।

7. **संसदीय शासन प्रणाली-** हमारे संविधान के द्वारा ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह संसदीय प्रणाली को न केवल संघ में वरन राज्यों में भी अपनाया गया हैं।

   इस प्रणाली की कुछ विशेषताऐं हैं-

   - नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद- नाममात्र की कार्यपालिका, संघ में राष्ट्रप्रति और राज्य में राज्यपाल होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका, संघ और राज्य दोनों में मंत्री-परिषद होती है।
   - राष्ट्रपति (संघ में) राज्यपाल (राज्य में) केवल संवैधानिक प्रधान होते हैं।
   - मंत्री-परिषद (संघ में) लोक सभा के बहुमत के समर्थन पर ही अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करती है। राज्य में मंत्री-परिषद अपने अस्तित्व के लिए विधान सभा के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करती है। लोक सभा और विधान सभा दोनों निम्न सदन हैं, जनप्रतिनिधि सदन है। इनका निर्वाचन जनता प्रत्यक्षरूप से करती है।
   - कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, क्योंकि कार्यपालिका का गठन व्यवस्था के सदस्यों में से ही किया जाता है।

8. **एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन-** यद्यपि भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। किन्तु उसके साथ वहाँ के एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है। क्योंकि भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक बहुलता पायी जाती है। इस लिए इनकी अपनी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है। लेकिन संघात्मक शासन के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इस क्रम में हम पहले भारतीय संविधान में संघात्मक शासन के लक्षणों को जानने का प्रयास करेंगे। जो निम्नलिखित हैं-

- लिखित निर्मित और कठोर संविधान।
- केन्द(संघ) और राज्य की शक्तियों का विभाजन (संविधान द्वारा)।
- स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय जो संविधान के रक्षक के रुप में कार्य करेगी। संविधान के विधिक पक्ष में कही अस्पष्टता होगी तो उसकी व्याख्या करेगी। साथ ही साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी।

किन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय संघ हेतु, कनाडा के संघ का अनुसरण करते हुए संघीय सरकार (केन्द्र सरकार) को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यापि संघात्मक शासन तो अपनाया गया है, किन्तु उसके साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना हेतु, निम्नलिखित एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है-

- केन्द्र और राज्य में शक्ति विभाजन केन्द्र के पक्ष में हैं, क्योंकि तीन सूचियों (संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची) के माध्यम से शक्ति विभाजन किया गया है। संघ सूची में संघ सरकार को, राज्य सूची पर राज्य सरकार को और समवर्ती सूची पर संघ और राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है, किन्तु दोनों के कानूनों में विवाद होने पर संघीय संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इन तीनों सूचियों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट विषय हों, अर्थात जिनका उल्लेख इन सूचियों में न हो उन पर कानून बनाने का अधिकार भी केन्द्र सरकार का होता है।
- इसके अतिरिक्त राज्य सूची के विषयों पर भी संघीय संसद को कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जैसे- संकट की घोषणा होने पर दो या दो से अधिक राज्यों द्वारा प्रस्ताव द्वारा निवेदन करने पर, राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर।
- इकहरी नागरिकता- संघात्मक शासन में दोहरी नागरिकता होती है एक तो उस राज्य की जिसमें वह निवास करता है दूसरी संघ की। जैसा कि अमेरिका में है। जबकि भारत में इकहरी नागरिकता है, अर्थात कोई व्यक्ति केवल भारत का नागरिक होता है।
- एकीकृत न्यायपालिका- एक संविधान, अखिल भारतीय सेवाऐं, आपातकालीन उपबन्ध, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक शासन है, जिसमें संकटकालीन स्थितियों से निपटने हेतु कुछ एकात्मक लक्षण भी पाये जाते हैं।

3.4 विभिन्न स्रोतों से लिए गये उपबंध

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर चुके है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण की प्रक्रिया में दुनियॉ में तत्कालीन समय में प्रचलित कई संविधानों का अध्ययन किया और उसमें से महत्वपूर्ण पक्षों को जो हमारे देश में उपयोगी हो सकते थे, उन्हें अपने देश-काल की परिस्थितियों के अनुरुप ढालकर संविधान में उपबन्धित किया।

वे स्रोत निम्नलिखित हैं, जिनका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा-

स्रोत	विषय
भारतीय शासन अधिनियम 1935	तीनों सूचियां, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियाँ

ब्रिटिश संविधान	संसदीय शासन
अमरीकी संविधान	प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, उपराष्ट्रपति का पद, संविधान में संशोधन प्रक्रिया
आयरलैण्ड का संविधान	नीति-निदेशक तत्व, राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मण्डल
कनाडा का संविधान	संघात्मक शासन(अवशिष्ट शक्तियाँ, केन्द्र के पास हैं)
आस्ट्रेलिया का संविधान	समवर्ती सूची
दक्षिण अफ्रीका का संविधान	संविधान में संशोधन की प्रक्रिया
पूर्व सोवियत संघ	मूल कर्तव्य

3.5 लोक कल्याणकारी राज्य

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी। जिसमें संसदीय लोकतन्त्र को लागू किया गया है। संसदीय लोकतन्त्र में अन्तिम सत्ता जनता में निहित होती है। इसलिए भारतीय संविधान के द्वारा ही भारत को कल्याणकारी राज्य के रुप में स्थापित करने का प्रावधान भारतीय संविधान के विभिन्न भागों में किए गये, विशेष रुप से भाग- 4 के नीति निदेशक तत्व में, मौलिक अधिकारों में, अनुच्छेद- 17 के द्वारा अस्पृश्यता के समाप्ति की घोषणा के साथ इसे दण्डनीय अपराध माना गया है। प्रस्तावना में सामाजिक-आर्थिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया। मौलिक अधिकार के अध्याय में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया। साथ ही अब तक समाज की मुख्यधारा से कटे हुए वंचित समुदायों के लिए विशेष प्रावधान किए गये, जिससे वे भी समाज की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सत्य/असत्य
2. संसदीय शासन प्रणाली की विशेषता है, नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद। सत्य/असत्य
3. लचीला संविधान वह संविधान है, जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। सत्य/असत्य
4. भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गयाहै। सत्य/असत्य
5. पंथ निरपेक्ष शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है। सत्य/असत्य

3.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के के बाद आप को यह जानने में समर्थ हो पाये कि भारतीय संविधान की क्या विशेषताऐं हैं। जिसमें यह भी जानने का अवसर प्राप्त हुआ कि किन कारणों से यह संविधान इतना विस्तृत हुआ है, क्योंकि हमारा नवजात लोकतंत्र की रक्षा और इसके विकास के लिए यह नितान्त आवश्यक था कि संभावित सभी विषयों का स्पष्ट रूप से समावेश कर दिया जाए। जैसे मूल अधिकार और नीति-निदेशक तत्वों को मिलाकर संविधान एक

बड़ा भाग हो जाता है इसी प्रकार से अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बंधित उपबंध संघात्मक शासन अपनाने के कारण केन्द्र-राज्य सम्बन्ध और संविधान के संरक्षण, उसकी व्याख्या और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलाय की स्थापना का प्रावधान किया गया है। जिसकी वजह से संविधान विस्तृत हुआ है। इसके साथ-साथ विभिन्न संवैधानिक आयोगों की स्थापना जैसे निर्वाचन आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग, राजभाषा आयोग आदि कारणों से संविधान विस्तृत हुआ। इसके साथ ही साथ हमने इस तथ्य का भी अध्ययन किया की संविधान निर्माण में संविधान निर्माता किन देशों में प्रचलित किस पक्ष को अपने देश की आवश्कताओं के अनुरूप पाये, जिस कारण से उन्होंने भारतीय संविधान में शामिल किया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें संसदीय और अध्यक्षीय शासन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त हुई।

3.7 शब्दावली

लोक प्रभुसत्ता- जहाँ सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित हो, वहाँ लोक प्रभुसत्ता होती है।

धर्म निरपेक्षता- राज्य का कोई धर्म न होना और राज्य के द्वारा सभी धर्मों के प्रति समभाव का होना।

समाजवादी राज्य(भारतीय संन्दर्भ में)- जहाँ राज्य के द्वारा आर्थिक असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाये।

संघीय व्यवस्था- केन्द्र और राज्य दोनों संविधान के द्वारा शक्ति विभाजन अपने-अपने क्षेत्र में दोनों संविधान की सीमा में स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करें।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य, **3.** सत्य, **4.** सत्य, **5.** सत्य

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय शासन एवं राजनीति- डॉ0 रूपा मंगलानी।
2. भारतीय सरकार एवं राजनीति- त्रिवेदी एवं राय।
3. भारतीय शासन एवं राजनीत- महेन्द्र प्रताप सिंह।

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारतीय संविधान- ब्रज किशोर शर्मा।
2. भारतीय संविधान- दुर्गादास बसु।

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान की विशेषताओं की विवेचना कीजिये।
2. आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं कि भारतीय संविधान एकात्मक लक्षणों वाले संघात्मक शासन की स्थापना करता है?

इकाई- 4 राष्ट्रपति

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 राष्ट्रपति
4.3 राष्ट्रपति का निर्वाचन
    4.3.1 योग्यता
    4.3.2 निर्वाचन
    4.3.3 राष्ट्रपति द्वारा शपथ
    4.3.4 राष्ट्रपति की पदावधि
    4.3.5 उन्मुक्तियां
    4.3.6 वेतन
    4.3.7 महाभियोग की प्रक्रिया
4.4 राष्ट्रपति की शक्तियाँ
    4.4.1 कार्यपालिका शक्तियाँ
    4.4.2 विधायी शक्तियाँ
    4.4.3 राजनयिक शक्तियाँ
    4.4.4 सैनिक शक्तियाँ
    4.4.5 न्यायिक शक्तियाँ
    4.4.6 आपात कालीन शक्तियाँ
        4.4.6.1 राष्ट्रीय आपात
        4.4.6.2 राज्यों में संवैधानिक तंत्र की विफलता
        4.4.6.3 वित्तीय आपातकाल
4.5 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाइयों के अध्ययन से आप को भारतीय प्रशासन के विभिन्न पक्षों के बारे में जानने में सहायता मिली है। प्रस्तुत इकाई में हम भारत में संघ के कार्यपालिका के प्रमुख, राष्ट्रपति के बारे में जान सकेंगे। इसके

अध्ययन से हम राष्ट्रपति के निर्वाचन, उनकी शक्तियों और उनकी संवैधानिक स्थिति तथा वास्तविक स्थिति के बारे में भी जान सकेंगे।

इस इकाई के अध्ययन से हमें आगे की इकाइयों में प्रधानमन्त्री सहित मंत्री-परिषद के वास्तविक कार्यपालिका प्रधान के रुप में समझने में सहायता मिलेगी। साथ ही संसदीय शासन की परम्परा में राष्ट्रपति पद के महत्व को और भी स्पष्ट रुप से समझने में सहायता मिलेगी।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया के बारे में जान सकेंगे।
- राष्ट्रपति की शक्तियों को जान सकेंगे।
- यह जान सकेंगे कि वह कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान ही नहीं है।

4.2 राष्ट्रपति

शासन के तीन अंग होते हैं, जो क्रमशः व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका हैं। व्यवस्थापिका का सम्बन्ध कानून निर्माण से है, कार्यपालिका का सम्बन्ध व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों और नीतियों के क्रियान्वयन से है, जबकि न्यायपालिका का सम्बन्ध न्यायिक कार्यों से है।

संघ की कार्यपालिका के शीर्ष पर राष्ट्रपति होता है। चूँकि राष्ट्रपति संवैधानिक प्रधान है (नाममात्र की कार्यपालिका) फिर भी उनके पद को सत्ता और गरिमा से युक्त किया गया है। वह राज्य के शक्तिशाली शासक हाने की अपेक्षा, भारत की एकता के प्रतीक हैं। उनकी स्थिति वैधानिक अध्यक्ष की है, फिर भी शासन में उनका पद एक धुरी के समान है जो संकट के समय संवैधानिक तंत्र को संतुलित कर सकता है।

4.3 राष्ट्रपति का निर्वाचन

भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक गणतन्त्र है। गणतन्त्र में राष्ट्र का अध्यक्ष वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित होता है। राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति से होता है।

4.3.1 योग्यता

राष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए निम्नलिखित योग्यताऐं आवश्यक हैं -

1. वह भारत का नागरिक हो,
2. वह 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो,
3. वह लोक सभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो,
4. वह संघ सरकार और राज्य सरकारों या स्थानीय सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर न हो,
5. राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, राज्यपाल और मन्त्रियों के पद लाभ के पद नहीं माने जाते, इसलिए उन्हें त्याग-पत्र देने की आवश्यकता नहीं होती।

4.3.2 निर्वाचन

अनुच्छेद- 54 के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल के सदस्य करते है जिसमें-

1. संसद के दोनों सदनों (लोक सभा, राज्य सभा) के निर्वाचित सदस्य।
2. राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होंगे।

राष्ट्रपति के निर्वाचन में संघीय संसद के साथ-साथ राज्यों के विधान सभाओं के सदस्यों को शामिल कर इस बात का प्रयत्न किया गया है, कि राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय आधार पर न हो तथा संघ के इस सर्वोच्च पद को वास्तव में राष्ट्रीय पद का रूप प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान के 71वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी है कि पोण्डेचेरी और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधान सभाओं के सदस्य, राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल में शामिल किये जायेंगे।

1957 के राष्ट्रपति चुनाव में कुछ स्थान रिक्त होने पर राष्ट्रपति के चुनाव की वैधता को चुनौती दी गयी । न्यायालय ने अपने निर्णय में ऐसी स्थिति में भी चुनाव संभव बताया। इस समस्या के निराकरण हेतु 1961 में 11वें संवैधानिक संशोधन द्वारा अनुच्छेद- 71 में उपबन्ध किया गया है कि निर्वाचक मंडल का स्थान रिक्त होने पर भी चुनाव वैध हैं।

राष्ट्रपति का निर्वाचन ऊपर वर्णित निर्वाचन मण्डल द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है, अनुच्छेद 55(3)। मतदान गुप्त होता है। इस पद्धति में चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा प्राप्त करना होता है। न्यूनतम काटा निर्धारण का सूत्र इस प्रकार है-

$$\text{न्यूनतम कोटा} = \frac{\text{दिये गये मतों की संख्या}}{\text{निर्वाचित होने वाले प्रत्याशियों की संख्या}} + 1$$

राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचन मण्डल के सदस्यों के मतों का मूल्य समान नहीं होता है। कुछ राज्यों की विधान सभाओं के सदस्य अधिक जनसंख्या का और कुछ कम जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए विधान सभा सदस्य के मत का मूल्य उनकी जनसंख्या के अनुपात में होता है। साथ ही राष्ट्रपति के चुनाव में केन्द्र और राज्य को बराबर की हिस्सेदारी देने के लिए सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों की विधान सभाओं के समस्त सदस्यों के मत मूल्य और संसद के सभी निर्वाचित सदस्यों के मतों के मूल्य बराबर रखने पर जोर दिया जाता है। जिससे राष्ट्रपति का चुनाव दलगत राजनीति का शिकार न हो और वह राष्ट्र का सच्चा प्रतिनिधि हो सके।

मत मूल्य निकालने का तरीका-

$$\text{विधान सभा के एक सदस्य के मत का मूल्य} = \frac{\text{राज्य की जनसंख्या}}{\text{कुल विधायकों की संख्या x 100}}$$

$$\text{संसद सदस्य के एक मत का मूल्य} = \frac{\text{सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों विधान सभा सदस्यों के मतों का मूल्य}}{\text{संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}}$$

राष्ट्रपति के निर्वाचन में उस प्रत्याशी को निर्वाचित घोषित किया जाता है, जो न्यूनतम कोटा अर्थात आधे से अधिक मत प्राप्त करे। राष्ट्रपति के निर्वाचन में जितने प्रत्याशी होते हैं, मतदाता को उतने मत देने का अधिकार होता है। मतदाता अपना मत वरीयता क्रम के आधार पर देता है। जैसे-

	प्रत्याशी	A	B	C	D
मतदाता	P	1	3	2	4
	G	2	1	3	4
	R	4	1	2	3
	S	3	1	2	4
	T	2	3	1	4

इस आरेख में चार प्रत्याशी A, B, C, D, हैं, मतदाता P, G, R, S, T हैं, जिन्होंने अपने मत वरीयता के आधार पर राष्ट्रपति प्रत्याशी को दिये हैं। सर्वप्रथम, प्रथम वरीयता के मत की गणना की जाती है। यदि उसे न्यूनतम कोटा प्राप्त हो जाय तो वह विजयी घोषित होता है। यदि कोटा न प्राप्त हो सके तो द्वितीय वरीयता के मत की गणना होती है। इस द्वितीय दौर में जिस उम्मीदवार को प्रथम वरीयता का सबसे कम मत मिला हो उसे गणना से बाहर कर, उसके द्वितीय वरीयता के मतमूल्य को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यदि द्वितीय दौर की गणना में किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो तो तीसरे दौर की मतगणना होती है, जिसमें दूसरे दौर की मतगणना में सबसे कम मतमूल्य पाने वाले प्रत्याशी के तीसरे वरीयता के मतमूल्य को शेष उम्मीदवारों को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक अपनायी जाती है, जब तक किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो जाय।

4.3.3 राष्ट्रपति द्वारा शपथ

राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने से पूर्व अनुच्छेद- 60 के तहत भारत के मुख्य न्यायाधीश या उनकी अनुपस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश के समक्ष अपने पद की शपथ लेता है।

4.3.4 राष्ट्रपति की पदावधि

संविधान के अनुच्छेद- 56 के अनुसार राष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तिथि से, पांच वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बना रहता है। इस पॉच वर्ष की अवधि के पूर्व भी वह उपराष्ट्रपति को वह अपना त्यागपत्र दे सकता है या उसे पॉच वर्ष की अवधि से पूर्व संविधान के उल्लंघन के लिए संसद द्वारा महाभियोग से हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति अपने पॉच वर्ष के कार्यकाल पूर्ण होने के बाद तक अपने पद पर बना रहता है जब तक कि इसके उत्तराधिकारी द्वारा पद ग्रहण न कर लिया जाए।

4.3.5 उन्मुक्तियां

राष्ट्रपति अपने कार्यों के लिए व्यक्तिगत रुप से उत्तर दायी नहीं होता है। अपने पद के कर्तव्यों एवं शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उनके सम्बन्ध में उसके विरुद्ध न्यायालय में कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है।

4.3.6 वेतन

राष्ट्रपति का वेतन वर्ष 2018 में 1,50,000 से बढ़ाकर 5,00,000 रुपये प्रति माह किया गया है। उन्हें ट्रेन, आवास, हवाई और रेल यात्रा, टेलीफोन, सुरक्षा, चिकित्सा, भारतीय वायुसेना के पायलटों के साथ बोइंग 777-300ERs विमान, बीमा और 340 जैसी अन्य सुविधाएं भी मिलती हैं। अनुच्छेद 59(3) अनुसार कार्यकाल के दौरान उनके वेतन और उपलब्धियों में किसी प्रकार की कमी नहीं की जा सकती है।

4.3.7 महाभियोग प्रक्रिया

राष्ट्रपति को अनुच्छेद- 61 के अनुसार महाभियोग प्रक्रिया द्वारा, संविधान के अतिक्रमण के आधार पर हटाया जा सकता है। संसद के जिस सदन में महाभियोग का संकल्प प्रस्तुत किया गया हो, उसके एक-चौथाई सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर सहित आरोप-पत्र राष्ट्रपति को 14 दिन पूर्व दिया जाना आवश्यक है। इस सदन में संकल्प को दो तिहाई बहुमत से पारित करके दूसरे सदन को भेजा जाएगा, जो राष्ट्रपति पर लगे इन आरोपों की जाँच करेगा। इस दौरान राष्ट्रपति स्वयं या अपने प्रतिनिधि के द्वारा अपना पक्ष रख सकता है। यदि दूसरा सदन आरोपों को सही पाता है और उसे अपनी संख्या के बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई सदस्यों द्वारा पारित कर दिया जाता है तो राष्ट्रपति पद त्याग के लिए बाध्य होता है।

4.4 राष्ट्रपति की शक्तियाँ

हमारे संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी हैं,जो निम्नलिखित हैं-

4.4.1 कार्यपालिका शक्तियाँ

संविधान के अनुच्छेद- 53(1) के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इस शक्ति का प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा।

अनुच्छेद- 74 के अनुसार राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्री-परिषद होगी जिसका प्रधान, प्रधानमन्त्री होगा। राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का प्रयोग करने में मंत्रिमण्डल की सलाह के अनुसार कार्य करेगा। इसके आगे संविधान के 44वें संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा यह जोड़ा गया कि यदि मंत्री-परिषद की सलाह पर राष्ट्रपति पुनर्विचार करने को कह सकेगा, परन्तु राष्ट्रपति ऐसे पुनर्विचार के पश्चात दी गयी सलाह के अनुसार कार्य करेगा। राष्ट्रपति की कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों में मंत्री-परिषद का गठन महत्वपूर्ण है। संसदीय परम्परा के अनुरुप निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता को राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करता है तथा प्रधानमन्त्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। अब तक नियुक्त अधिकांश प्रधानमन्त्री लोक सभा के सदस्य रहे हैं। श्रीमती इन्दिरा गाँधी पहली ऐसी प्रधानमन्त्री थी जो राज्य सभा से मनोनीत सदस्य थी। पूर्व प्रधानमन्त्री डा0 मनमोहन सिंह भी राज्य सभा सदस्य थे। संविधान के 91वें संशोधन 2003 द्वारा अनुच्छेद-

75(1क) के अनुसार मन्त्री, राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करते हैं। अनुच्छेद- 75(3) के अनुसार, मंत्री-परिषद के सदस्य सामूहिक रुप से लोक सभा के प्रति उत्तर दायी होते हैं। अनुच्छेद- 75(5) के अनुसार, कोई भी मन्त्री, निरन्तर छः मास तक संसद के किसी सदन का सदस्य हुए बिना भी मन्त्री रह सकता है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण तथ्य को स्पष्ट करना आवश्यक है कि जब लोक सभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिले अथवा लोक सभा में अविश्वास मत के कारण मंत्री-परिषद को त्याग-पत्र देना पड़े, ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति किस व्यक्ति को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करे, इस सम्बन्ध में संविधान मौन है। इस सबन्ध में राष्ट्रपति को स्वविवेकाधिकार प्राप्त है। इस सम्बन्ध में संसदीय परम्परा के अनुरुप सर्वप्रथम सबसे बड़े दल के नेता तथा जो बहुमत सिद्ध कर सकता है, उसे प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते हैं।

इसके साथ-साथ राष्ट्रपति को संघ के महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति की शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति, नियन्त्रक-महालेखक की नियुक्ति, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति, राज्यपाल की नियुक्ति, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति, मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयोग के अन्य सदस्य की नियुक्ति, अनुसूचित जातियों जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति, भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति।

ये सभी नियुक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा मंत्री-परिषद की सलाह पर या संविधान द्वारा निश्चित व्यक्तियों से परामर्श के पश्चात की जाती है। राष्ट्रपति को उपर्युक्त अधिकारियों को हटाने की भी शक्ति प्राप्त है।

4.4.2 विधायी शक्तियाँ

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संविधान के अनुच्छेद- 79 के अनुसार राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है। संसद का गठन राष्ट्रपति, लोक सभा और राज्य सभा से मिलकर होता है। इस प्रकार संसद का महत्वपूर्ण अंग होने के नाते राष्ट्रपति को महत्वपूर्ण विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं। कोई भी विधेयक संसद के दोनों सदनों (लोक सभा और राज्य सभा) द्वारा पारित होने के बाद राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही अधिनियम का रुप लेता है।

संसद का अंग होने के नाते राष्ट्रपति को लोक सभा और राज्य सभा का सत्र आहूत करने और उसका सत्रावसान करने की शक्ति है। अनुच्छेद- 85 के अनुसार वह लोक सभा का विघटन कर सकता है। अनुच्छेद-108 के अनुसार वह साधारण विधेयक पर दोनों सदनों में विवाद होने पर संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है। अनुच्छेद- 87 के अनुसार राष्ट्रपति प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात प्रथम सत्र के प्रारम्भ पर और प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के प्रारम्भ पर एक साथ संसद के दोनों सदनों में अभिभाषण करता है। इसके अतिरिक्त किसी एक सदन या दोनों सदनों में एक साथ अभिभाषण करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति अनुच्छेद- 80 के अनुसार राज्य सभा में 12 सदस्यों को मनोनीत कर सकता है जो साहित्य, कला, विज्ञान या समाजसेवा के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त हों और अनुच्छेद- 331 के अनुसार लोक सभा में दो सदस्यों को आंग्ल भारतीय समुदाय से मनोनीत कर सकता है।

संविधान के उपबन्धों और कुछ अधिनियमों का अनुपालन करने के लिए राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि कुछ प्रतिवेदनों को संसद के समक्ष रखवायेगा। इसका उद्देश्य यह है कि संसद को उन प्रतिवेदनों और उस पर की गयी कार्यवाही पर विचार करने का अवसर प्राप्त हो जाएगा। राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि निम्नलिखित प्रतिवेदनों और दस्तावेजों को संसद के समक्ष रखवाऐं।

- अनुच्छेद- 112 के अनुसार- वार्षिक वित्तीय विवरण (बजट),
- अनुच्छेद- 151 के अनुसार- नियन्त्रक महालेखक का प्रतिवेदन,
- अनुच्छेद- 281 के अनुसार- वित्त आयोग की सिफारिशें,
- अनुच्छेद- 323 के अनुसार- संघ लोक सेवा आयोग का प्रतिवेदन,
- अनुच्छेद- 340 के अनुसार- पिछड़ा वर्ग आयोग का प्रतिवेदन,
- अनुच्छेद- 348 के अनुसार- राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग का प्रतिवेदन,
- अनुच्छेद- 94(क) के अनुसार- राष्ट्रपति अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए, भारतीय संविधान के अंग्रेजी भाषा में किए गये प्रत्येक संशोधन का हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रकाशित करायेगा। इसके अतिरिक्त कुछ विषयों पर कानून बनाने के लिए, उस पर राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है। जैसे-

अनुच्छेद- 3 के अनुसार नये राज्यों के निर्माण या विद्यमान राज्य की सीमा में परिवर्तन से संबंधित विधेयकों पर। अनुच्छेद- 117(1) धन विधेयकों के सम्बन्ध में। अनुच्छेद- 117(3) ऐसे व्यय से संबंधित विधेयक, जो भारत की संचित निधि से किया जाना हो। अनुच्छेद- 304 के अनुसार, राज्य सरकारों के ऐसे विधेयक जो व्यापार और वाणिज्य की स्वतन्त्रता पर प्रभाव डालते हों।

इस बात का हम उल्लेख कर चुके हैं कि संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कोई भी विधेयक कानून तब तक नहीं बन सकता जब तक कि उस पर राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति न प्रदान करें। राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति दे सकता है, विधेयक को रोक सकता है या दोनों सदनों द्वारा पुनर्विचार के लिए वापस कर सकता है। यदि संसद पुनर्विचार के पश्चात विधेयक को राष्ट्रपति को वापस करती है, तो वह अपनी स्वीकृति देने के लिए बाध्य है। यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि राष्ट्रपति धन विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस नहीं कर सकता है, क्योंकि धन विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही लोक सभा में रखा जाता है।

2006 में लाभ के पद से संबंधित संसद अयोग्यता निवारण संशोधन विधेयक लोक सभा और राज्य सभा द्वारा पारित होने के पश्चात राष्ट्रपति के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया गया, जिसे राष्ट्रपति ए0पी0जे0 कलाम ने पुनर्विचार के लिए, यह कहते हुए वापस कर दिया कि सांसदों और विधायकों को लाभ के पद के दायरे से बाहर रखने के व्यापक आधार बताए जाऐं। संसद के दोनों सदनों ने इसे पुनः मूल रुप में ही पारित कर दिया। यह पहला अवसर था कि राष्ट्रपति की आपत्तियों पर विचार किए बिना ही विधेयक को उसी रुप में पारित कर दिया गया। राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि के सम्बन्ध में भी राष्ट्रपति को विभिन्न शक्तियाँ प्राप्त हैं-

1. राज्य विधान-मण्डल द्वारा पारित ऐसा विधेयक जो उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित करता है तो राज्यपाल उस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित कर लेगा।
2. वित्तीय आपात काल लागू होने की स्थिति में, राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकता है कि राज्य विधान सभा में प्रस्तुत किये जाने से पूर्व सभी धन विधेयकों पर उसकी अनुमति ली जाय।
3. सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों पर राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है।
4. राज्य के अन्दर या अन्य राज्यों के साथ व्यापार पर प्रतिबंध लगानें वाले विधेयकों को विधान सभा में प्रस्तुत करनें से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक है।

5. **अध्यादेश जारी करने की शक्ति-** जब संसद सत्र में न हो और राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाय कि वर्तमान परिस्थिति में यथाशीघ्र कार्यवाही की आवश्यकता है, तो वे अनुच्छेद- 123 के अनुसार अध्यादेश जारी करते हैं। इस अध्यादेश का प्रभाव संसद द्वारा पारित और राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत अधिनियम के समान ही होता है। किन्तु अधिनियम स्थायी होता है और अध्यादेश का प्रभाव केवल छः माह तक ही रहता है। छः माह के अन्दर यदि अध्यादेश को संसद की स्वीकृति न प्राप्त हो तो वह स्वतः ही समाप्त हो जाएगा।
6. **वीटो (निषेधाधिकार) की शक्ति-** यह कार्यपालिका की शक्ति है, जिसके द्वारा वह किसी विधेयक को अनुमति देने से रोकता है। अनुमति देने से इन्कार करता है या अनुमति देने में विलम्ब करता है। वीटो के कई प्रकार हैं-
    - **आत्यंतिक वीटो या पूर्ण वीटो-** यह वह वीटो है, जिसमें राष्ट्रपति संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को अनुमति देने से इन्कार कर देता है। पूर्ण वीटो का प्रयोग धन विधेयक के सम्बन्ध में नहीं किया जा सकता, क्योंकि धन विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति से ही लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है।
    - **निलम्बनकारी वीटो-** जिस वीटो को सामान्य बहुमत से समाप्त किया जा सकता है, उसे निलम्बनकारी वीटो कहा जाता है। इस प्रकार के वीटो का प्रयोग हमारे राष्ट्रपति उस समय करते हैं जब अनुच्छेद- 111 के अनुसार वे किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस करते हैं।
    - **पाकेट वीटो या जेबी वीटो-** संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति न तो अनुमति देता है और न ही पुनर्विचार के लिए वापस करता है, तब वह जेबी वीटो का प्रयोग करता है। हमारे संविधान में यह स्पष्ट उपबन्ध नहीं है कि राष्ट्रपति कितने समय के भीतर विधेयक को अपनी अनुमति देगा। फलतः वह विधेयक को अपनी मेज पर अनिश्चित काल तक रख सकता है। जेबी वीटो का प्रयोग 1986 में संसद द्वारा पारित भारतीय डाक अधिनियम के सन्दर्भ में राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने किया था।

4.4.3 राजनयिक शक्तियाँ

यहाँ हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि 21वीं सदी में भू-मण्डलीकरण की प्रक्रिया चल रही है। इस प्रक्रिया ने एक राष्ट्र के हित को विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ जोड़ दिया है। राष्ट्रों के मध्य आपसी संबंधों का संचालन राजनयिकों के द्वारा होता है। हमारे देश में राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान है। इसलिए अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों के संचालन की शक्ति भी राष्ट्रपति को प्रदान की गयी है और अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों का संचालन भी राष्ट्रपति के नाम से किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय मामले में वे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत की ओर से भेजे जाने वाले राजदूत की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करते हैं। दूसरे देशों से भारत में नियुक्त होने वाले राजदूत और उच्चायुक्त अपना परिचयपत्र राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। परन्तु इन सभी विषयों में राष्ट्रपति मंत्री-परिषद की सलाह के अनुसार कार्य करता है।

4.4.4 सैनिक शक्तियाँ

जैसा कि हम इस इकाई में पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि संघ की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित हैं, इसी कारण से वह तीनों सेनाओं का प्रधान सेनापति है। किन्तु हमारे राष्ट्रपति की सैन्य शक्तियाँ अमेरिका के राष्ट्रपति के समान नहीं हैं, क्योंकि ये अपनी शक्तियों के प्रयोग संसद द्वारा निर्मित कानूनों के अनुसार करते हैं। जबकि अमेरिका के राष्ट्रपति पर इस प्रकार के कोई प्रतिबंध नहीं है।

4.4.5 न्यायिक शक्तियाँ

भारतीय संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक रुप से न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं, जो निम्नलिखित हैं-

1. **न्यायाधीशों की नियुक्ति-** अनुच्छेद- 217 के के अनुसार राष्ट्रपति उच्च न्यायालय और अनुच्छेद- 124 के तहत उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते हैं। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति करते समय वह उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश से परामर्श कर सकते हैं। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करते हैं।
2. **क्षमादान की शक्ति-** राष्ट्रपति को कार्यपालिका और विधायी शक्तियों के साथ-साथ न्यायिक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं, जिनमें क्षमादान की शक्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जो अनुच्छेद- 72 के अनुसार प्राप्त है। वे इस क्षमादान की शक्ति के तहत किसी दोषी ठहराये गये व्यक्ति के दण्ड को क्षमा तथा सिद्ध दोष के निलंबन, परिहार या लघुकरण की शक्ति प्राप्त है। राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग निम्नलिखित परिस्थितियों में करते हैं। सेना द्वारा दिये गये दण्ड के मामले में, जब दण्ड ऐसे विषयों के मामले में दिया गया हो जो संघ के कार्यपालिका क्षेत्र में आते हों, ऐसी परिस्थिति में जब किसी व्यक्ति को मृत्यु दण्ड दिया गया हो, क्षमादान की शक्ति का प्रयोग भी वह मंत्री-परिषद की सलाह के अनुसार करता है।
   क्षमादान की इस शक्ति को देने के पीछे सोच यह है कि न्यायाधीश भी मनुष्य होते हैं। इसलिए उनके द्वारा की गयी किसी भूल को सुधारने की गुंजाइस बनी रहे।
3. **उच्चतम न्यायालय से परामर्श लेने का अधिकार-** हमारे संविधान के अनुच्छेद- 143 के अनुसार, यदि राष्ट्रपति को ऐसा कभी प्रतीत होता है कि विधि या तथ्य का कोई ऐसा प्रश्न उत्पन्न हुआ है या उत्पन्न होने की संभावना है, जो ऐसी प्रकृति और व्यापक महत्व का है तो उस पर उच्चतम न्यायालय से राय माँग सकता है। इस प्रकार की राय राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नहीं होती है। इसके साथ-साथ उच्चतम न्यायालय को यदि वह आवश्यक समझे तो अपनी राय देने से इन्कार कर सकता है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति को अन्य अधिकार प्राप्त हैं। जैसे- संविधान के अनुच्छेद- 130 के अनुसार, यदि सर्वोच्च न्यायालय अपना स्थान दिल्ली के बजाय किसी अन्य स्थान पर स्थानान्तरित करना चाहे तो इसके लिए राष्ट्रपति से अनुमति लेना आवश्यक है।

4.4.6 आपात कालीन शक्तियाँ

हमारे संविधान निर्माता गुलामी की दु:खद घटना और आजादी की लम्बी लड़ाई के पश्चात आजाद हो रहे देश के दु:खद विभाजन से परिचित थे। इसलिए देश में भविष्य में उत्पन्न होने वाली संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को विस्तृत आपातकालीन शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। हमारे संविधान के भाग-18

के अनुच्छेद- 352 से अनुच्छेद- 360 तक राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों का उपबन्ध किया गया है। ये शक्तियाँ निम्नलिखित तीन प्रकार की हैं-

4.4.6.1 राष्ट्रीय आपात

संविधान के अनुच्छेद- 352 में यह उपबन्ध किया गया है कि, यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाय कि युद्ध, वाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में है या संकट में होने की आशंका है, तो उनके द्वारा आपात की उद्-घोषणा की जा सकती है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में सशस्त्र विद्रोह की जगह आन्तरिक अशान्ति शब्द था। 1975 में तत्कालीन प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाँधी के लोक सभा चुनाव को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा रद्द किये जाने के पश्चात आन्तरिक अशान्ति के नाम पर प्रधानमन्त्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने राष्ट्रीय आपात की घोषणा की।

1977 के लोक सभा के चुनाव में कांग्रेस को पराजय का मुंह देखना पड़ा। जनता पार्टी की सरकार बनी। इस सरकार नें 1979 के 44वें संविधानिक संशोधन के द्वारा आन्तरिक अशान्ति के स्थान पर सशस्त्र विद्रोह शब्द रखा गया। साथ ही यह भी उपबन्ध किया गया कि आपातकाल की घोषणा अब संघ के मंत्रिमण्डल (प्रधानमन्त्री और मंत्रिमण्डल स्तर के अन्य मंत्री) की सिफारिश से राष्ट्रपति द्वारा ही की जाएगी।

राष्ट्रपति द्वारा आपात की घोषणा के एक माह के अन्दर संसद के द्वारा विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। दूसरे शब्दों में इस घोषणा को लोक सभा और राज्य सभा द्वारा पृथक-पृथक कुल सदस्य संख्या के बहुमत और उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। आपात की घोषणा के समय यदि लोक सभा का विघटन हुआ है, तो एक माह के अन्दर राज्य सभा की विशेष स्वीकृति आवश्यक है। नवगठित लोकसभा के द्वारा उसकी प्रथम बैठक के तीस दिन के अन्दर विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। आपातकाल को यदि आगे भी लागू रखना है तो उसे प्रत्येक छः माह पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यदि आपातकाल की घोषणा एक सदन द्वारा की जाय और दूसरा सदन अस्वीकार कर दे, तो यह घोषणा एक माह के पश्चात समाप्त हो जाएगी। इस आपात काल को संसद साधरण बहुमत से समाप्त कर सकती है ।

संविधान के 38वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबंध किया गया कि आपात काल की उद्-घोषणा को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया। संविधान के प्रारम्भ में यह उपबन्ध था कि अनुच्छेद- 352 के अनुसार आपातकाल को पूरे देश में ही लागू किया जा सकता है, किसी एक भाग में नहीं। परन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि आपात काल की उद्-घोषणा देश के किसी एक भाग या कई भागों में की जा सकती है।

1. अभी तक कुल तीन बार राष्ट्रीय आपात की घोषणा की गयी है। पहली बार, 26 अक्टूबर 1962 से 10 जनवरी 1968 तक चीनी आक्रमण के कारण। दूसरी बार, पाकिस्तान के द्वारा आक्रमण के कारण 03 दिसम्बर 1971 को घोषणा की गयी तथा तीसरी बार, 25 जून 1975 को आन्तरिक अशान्ति के आधार पर आपातकाल की घोषणा की गयी, इनकी समाप्ति 21 मार्च 1977 को की गयी।
2. अनुच्छेद- 83(2) के अनुसार, जब आपात की उद्-घोषणा की गयी हो तब लोक सभा अपने कार्यकाल को एक साल के लिए बढा सकती है। किन्तु आपात की उद्-घोषणा के समाप्त होने पर, यह कार्यकाल वृद्धि अधिकतम छः मास तक ही चल सकती है। अनुच्छेद- 250 के अनुसार, आपातकाल की उद्-घोषणा के दौरान संबंधित राज्य में संसद को राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून बनाने की शक्ति

प्राप्त हो जाती है। यद्यपि राज्य की विधायी शक्तियाँ राज्य के पास बनी रहती है, किन्तु उन पर निर्णायक शक्ति संसद के पास रहती है।

3. हम उपर इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि अनुच्छेद- 73 के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति उन विषयों तक सीमित है, जिन पर संसद को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है, किन्तु आपातकाल की उद्-घोषणा के दौरान केन्द्र सरकार जहाँ आपातकाल लागू है, उस राज्य के साथ ही साथ देश के किसी भी राज्य को यह निर्देश दे सकता है कि वह अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग किस प्रकार करे।
4. संविधान के अनुच्छेद- 354 में यह स्पष्ट उल्लेख है कि राष्ट्रपति के आदेश से केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्ध को उस सीमा तक परिवर्तित किया जा सकता है, जिस सीमा तक की स्थिति का सामना करने के लिए आवश्यक हो। राष्ट्रपति के इस प्रकार के आदेश को यथाशीघ्र संसद के समक्ष रखना आवश्यक होता है।
5. वाह्य आक्रमण के कारण यदि राष्ट्रीय आपात की घोषणा की गयी है, तो अनुच्छेद- 358 के अनुसार, अनुच्छेद- 19 द्वारा प्रदत्त स्वतन्त्रता का अधिकार निलंबित हो जाता है। जबकि अनुच्छेद- 359 के तहत उन्हीं अधिकारों का निलंबन होता है, जो राष्ट्रपति के आदेश में स्पष्ट किया गया हो। इसके बावजूद भी अनुच्छेद- 20 और 21 के तहत प्रदत्त मूल अधिकारों का निलंबन किसी भी स्थिति में नहीं हो सकता है।

4.4.6.2 राज्यों में संवैधानिक तन्त्र की विफलता

अनुच्छेद- 355 में यह उपबन्ध है कि संघ सरकार का यह दायित्व है कि वह राज्यों की वाह्य आक्रमण और आन्तरिक अशान्ति से रक्षा करे। साथ ही यह भी देखे कि प्रत्येक राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार चल रहा हो। अनुच्छेद- 356(1) के अनुसार, यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाए कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार न चलने के कारण संवैधानिक तन्त्र विफल हो गया है तो वह राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है। राष्ट्रपति का यह समाधान राज्यपाल के प्रतिवेदन पर भी आधरित हो सकता है। अनुच्छेद- 365 के अनुसार राष्ट्रपति किसी राज्य की सरकार के विरुद्ध अनुच्छेद- 356 का प्रयोग उस समय भी कर सकता है, जब संबंधित राज्य की सरकार संघ सरकार के निर्देशों का पालन करने में असफल हो जाती है।

राज्यों में राष्ट्रपति शासन की घोषणा दो माह के लिए होती है, किन्तु यदि घोषणा के पश्चात लोक सभा का विघटन हो जाता है तो नवीन लोक सभा के गठन के बाद प्रथम बैठक के तीस दिन के बाद घोषणा तभी लागू रह सकती है जब कि नवीन लोक सभा उसका अनुमोदन कर दे। इस प्रकार की घोषणा एक बार में छः माह के लिए और अधिकतम तीन वर्ष(पंजाब में पांच वर्ष तक लागू थी) के लिए लागू की जा सकती है। 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह उपबन्ध किया गया कि एक वर्ष से अधिक समय तक राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए दो आवश्यक शर्तें हैं, पहली- जब सम्पूर्ण देश में या उसके किसी एक भाग में अनुच्छेद- 352 के तहत राष्ट्रीय आपात काल की घोषणा लागू हो और दूसरी- निर्वाचन आयोग इस बात को प्रमाणित करे कि संबंधित राज्य में वर्तमान परिस्थितियों में चुनाव कराना सम्भव नहीं है।

1. **राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने का प्रभाव-** राष्ट्रपति इस बात की घोषणा कर सकता है कि राज्य के कानून निर्माण की शक्ति का प्रयोग संसद करेगी। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अनुच्छेद- 356 की घोषणा के पश्चात यह आवश्यक नहीं है कि विधान सभा का विघटन कर दिया जाय। विधान सभा को केवल निलंबित भी किया जा सकता है। यदि संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति

राज्य की संचित निधि में से आवश्यक खर्च की अनुमति दे सकता है। राष्ट्रपति कार्यपालिका सम्बन्धी सभी या आंशिक कृत्यों को अपने हाथों में ले सकता है, उच्च न्यायालय के कार्यों को छोड़कर।

2. **अनुच्छेद- 352 और अनुच्छेद- 356 की तुलना-** जैसा कि ऊपर आप देख चुके हैं अनुच्छेद- 352 और 356 का प्रयोग राष्ट्रपति करते हैं, किन्तु दोनों के प्रभावों में अन्तर हैं। जब किसी राज्य में राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की जाती है तो संसद को समवर्ती-सूची के साथ-साथ राज्य-सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है, किन्तु राज्य विधान सभा और कार्यपालिका का अस्तित्व बना रहता है और वे अपना कार्य भी करती रहती हैं, परन्तु अनुच्छेद- 356 के तहत जब राष्ट्रपति किसी राज्य में संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोषणा करते हैं, तो संबंधित राज्य की विधान सभा निलंबित कर दी जाती है और कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ पूर्णतः या आंशिक रुप से राष्ट्रपति द्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं।

अनुच्छेद- 356 के तहत संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोषणा की अधिकतम अवधि तीन वर्ष हो सकती है, जबकि अनुच्छेद- 352 के तहत लागू किया जाने वाला राष्ट्रीय आपातकाल को प्रत्येक छः माह के पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यह प्रक्रिया तब तक चल सकती है जब तक कि संसद स्वयं के संकल्प से समाप्त न कर दे।

4.4.6.3 वित्तीय आपातकाल

अनुच्छेद- 360 में यह उपबंध किया गया है कि, यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि भारत में या उसके किसी राज्य क्षेत्र में वित्तीय साख को खतरा उत्पन्न हो गया है तो वह वित्तीय संकट की घोषणा कर सकते हैं। वित्तीय आपात की उद्-घोषणा को भी राष्ट्रीय आपात के समान ही दो माह के अन्दर संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यदि दो माह के पूर्व संसद के दोनों सदन अपनी स्वीकृति प्रदान कर दें तो, इसे अनिश्चित काल तक लागू किया जा सकता है, अन्यथा यह उद्-घोषणा दो माह की समाप्ति पर स्वतः ही समाप्त हो जाएगी। यदि इसी दौरान लोक सभा का विघटन हुआ है तो राज्य सभा की स्वीकृति आवश्यक है। परन्तु नवीन लोक सभा के प्रथम बैठक के तीस दिन के अन्दर लोक सभा की स्वीकृति आवश्यक है, अन्यथा घोषणा स्वतः ही निरस्त हो जाएगी। वित्तीय आपात की घोषणा का प्रभाव ये है कि संघ और राज्यों के किसी भी वर्ग के अधिकारियों के वेतन में कमी की जा सकती है। इस समय राष्ट्रपति न्यायाधीशों के वेतन में भी कटौती के आदेश दे सकता है। राज्य के समस्त वित्त विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए पेश किये जाने के निर्देश दिये जा सकते हैं। संघीय सरकार, राज्य की सरकार को शासन सम्बन्धी आवश्यक निर्देश दे सकती है। राष्ट्रपति द्वारा संघ और राज्यों के मध्य वित्तीय वितरण के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश दिये जा सकते हैं।

4.5 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को प्रदान की गयी व्यापक शक्तियों के आधार पर यह धारणा बनी कि राष्ट्रपति कुछ शक्तियों का प्रयोग मंत्री-परिषद के परामर्श के बिना भी कर सकते हैं, जो संसदात्मक व्यवस्था के परम्पराओं के विपरीत है। इसलिए इसके निवारण के लिए 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा अनुच्छेद- 74 के स्थान पर इस प्रकार के उपबन्ध किया गया।

राष्ट्रपति को सहायता और परामर्श देने के लिए प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में एक मंत्री-परिषद होगी और राष्ट्रपति अपने कार्यों के संपादन में मंत्री-परिषद के परामर्श के आधार पर कार्य करेगा। इस उपबन्ध से राष्ट्रपति के पद की गरिमा को आघात पहुँचा। इसलिए 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा निम्न उपबन्ध किये गये-

राष्ट्रपति को मंत्री-परिषद से जो परामर्श प्राप्त होगा उसके सम्बन्ध में राष्ट्रपति को यह अधिकार होगा कि वह मंत्री-परिषद को इस परामर्श पर पुनर्विचार करने के लिए कहे, लेकिन पुनर्विचार के बाद मंत्री-परिषद जो परामर्श देगी, राष्ट्रपति उसी परामर्श के अनुसार कार्य करेगा।

इस प्रकार राष्ट्रपति के सम्बन्ध में संवैधानिक स्थिति यह नियत करती है कि संसदीय शासन की भावना के अनुरुप राष्ट्रपति, राष्ट्र का संवैधानिक प्रधान है। किन्तु भारतीय राजनीति में उभरती हुई अनिश्चितता के दौर में राष्ट्रपति की भूमिका सक्रिय और अति महत्वपूर्ण होती जा रही है। राष्ट्रपति की इस सक्रियता और महत्ता का कारण, गठबन्धन की राजनीति और प्रधानमन्त्री पद की गरिमा में तेज गिरावट प्रमुख कारण है।

अभ्यास प्रश्न-

1. राष्ट्रपति के चुनाव में कौन-कौन भाग लेता है?
2. राष्ट्रपति का कार्य काल कितने वर्ष का होता है?
3. राष्ट्रपति पर महाभियोग किस अनुच्छेद के तहत लगाया जाता है?
4. उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?
5. उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?
6. राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस अनुच्छेद के अनुसार करता है?
7. 1975 में राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस आधार पर की गयी थी?
8. राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रत्यक्ष चुनाव के द्वारा होता है। सत्य/असत्य
9. राष्ट्रपति के निर्वाचन में केवल लोक सभा और राज्य सभा के सदस्य भाग लेते हैं। सत्य/असत्य
10. राष्ट्रपति पर महाभियोग अनुच्छेद- 63 के तहत लगाया जाता है। सत्य/असत्य
11. राष्ट्रपति को शपथ राज्यपाल दिलाते हैं। सत्य/असत्य
12. राष्ट्रपति, राज्यपाल की सिफारिश से अनुच्छेद- 356 के तहत राष्ट्रीय आपात की घोषणा करते हैं। सत्य/असत्य

4.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट से यह स्पष्ट हो गया है कि राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के साथ ही साथ व्यवस्थापिका का अंग भी है, क्योंकि संसद के द्वारा पारित कोई भी विधेयक तभी कानून बनता है जब राष्ट्रपति उसे अपनी स्वीकृति देते हैं। इस प्रकार संसदीय शासन की जो प्रमुख विशेषता है, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरुप, वह राष्ट्रपति के पद में स्पष्ट रुप से दिखाई देती है। भारत में संसदीय प्रणाली में राष्ट्रपति कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान है, किन्तु ब्रिटेन के सम्राट के समान वह रबर मुहर नहीं है। राष्ट्रपति को कुछ विवेकी शक्तियाँ प्राप्त हैं और कुछ स्थितियों में भारत के राष्ट्रपति ने बड़ी ही समझदारी से कार्य किया है। जब किसी दल को लोक सभा में बहुमत नहीं मिलता है तो राष्ट्रपति स्वविवेक से उसे सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करता है, जिसे वह समझे कि वह सदन में अपना बहुमत सिद्ध कर सकता है। इसके साथ यह स्पष्ट करना

आवश्यक है कि 1984 में इन्दिरा गाँधी की हत्या के उपरान्त प्रधानमन्त्री का पद रिक्त न हो, राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने राजीव गाँधी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए राष्ट्रपति के द्वारा लौटाया जाना भी अपने आप में गम्भीर विषय माना जाता है। इस प्रकार जैसा उपर उल्लेख किया गया है, राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के नाते व्यापक रुप से नियुक्तियाँ करने और पदच्युत करने का भी अधिकार है, साथ ही क्षमादान की महत्वपूर्ण शक्ति भी प्राप्त है। विधायन के क्षेत्र में जब संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति की अध्यादेश निकालने की शक्ति भी महत्वपूर्ण है । इस प्रकार से यह पद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

4.7 शब्दावली

संसद- राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोक सभा

औपचारिक प्रधान- जिसके नाम से समस्त कार्य किये जाते है, परन्तु वह स्वयं उन शक्तियों का प्रयोग न करता हो।

गणतन्त्र- राज्य का प्रधान निर्वाचित हों, वंशानुगत राजा नहीं।

कोटा- जीत के लिए आवश्यक न्यूनतम मत (समस्त का 51 प्रतिशत)

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लोक सभा, राज्य सभा और सभी राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य, **2.** 5 वर्ष, **3.** अनुच्छेद 61, **4.** अनुच्छेद 124, **5.** अनुच्छेद 217, **6.** अनुच्छेद 352, **7.** आन्तरिक अशान्ति, **8.** असत्य, **9.** असत्य, **10.** असत्य, **11.** असत्य, **12.** असत्य

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 रूपा मंगलानी- भारतीय शासन एवं राजनीति (2009), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
2. त्रिवेदी एवं राय- भारतीय सरकार एवं राजनीति।
3. महेन्द्र प्रताप सिंह- भारतीय शासन एवं राजनीति(2011), ओरियन्टल ब्लैक स्वान, नई दिल्ली।
4. भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी(2011), लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत का संविधान- ब्रज किशोर शर्मा (2008), प्रेन्टिस हाल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।
2. भारत में लोक प्रशासन- बी0एल0 फड़िया(2010), साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. The Constitution of India- J.C. Johari(2004) Sterling Publishers Private Limited, New Delhi

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रपति कार्यपालिका के औपचारिक प्रधान से अधिक है, स्पष्ट कीजिये।
2. राष्ट्रपति के चुनाव प्रक्रिया की विवेचना कीजिये।
3. राष्ट्रपति के आपातकालीन शक्तियों की समीक्षा कीजिये।

इकाई- 5 प्रधानमन्त्री और मंत्री-परिषद

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 प्रधानमन्त्री
    5.2.1 प्रधानमन्त्री की नियुक्ति
    5.2.2 प्रधानमन्त्री और मंत्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध
    5.2.3 प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध
    5.2.4 प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध
5.3 सारांश
5.4 शब्दावली
5.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.8 निबंधात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

पिछली इकाई में भारतीय प्रशासन में राष्ट्रपति की स्थिति के बारे में अध्ययन किया है और पाया कि भारत का राष्ट्रपति ब्रिटेन के सम्राट से अधिक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण स्थिति में है, क्योंकि एक तरफ वह राष्ट्र की एकता और गरिमा का प्रतीक है तो उसे कुछ स्वविवेकि शाक्तियाँ प्रदान कर राजव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान की गयी है।

इस इकाई में हम देखेंगे कि राष्ट्रपति के नाम से जिन शक्तियों का प्रयोग मंत्री-परिषद करती है, उसका प्रधान, प्रधानमन्त्री होता है। प्रधानमन्त्री का पद हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के नाते बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि लोक सभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के नाते इस कारण से सदन का नेता होने के कारण और अन्ततः दलीय अनुशासन के कारण से शासन व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। किन्तु यही शक्तिशाली प्रधानमंन्त्री की स्थिति, गठबंधन सरकार होने पर अत्यन्त कमजोर हो जाती है, फिर भी वह केन्द्रीय सत्ता की धुरी होता है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- जान सकेंगे कि संसदीय शासन में प्रधानमन्त्री कितना महत्वपूर्ण है।
- सरकार के गठन में प्रधानमन्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- प्रधानमन्त्री निम्न सदन (लोक सभा) का नेता भी होता है, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।

- प्रधानमन्त्री अपने दल का अत्यधिक प्रभावशाली होता है, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- मंत्री-परिषद के विघटन की भी प्रधानमन्त्री की महत्व पूर्ण शक्ति होती है, इस सम्बन्ध में जान सकेंगे।

5.2 प्रधानमन्त्री

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। इस शासन में प्रधानमन्त्री का पद, शासन व्यवस्था का केन्द्र-बिन्दु होता है। इसमें नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद पाया जाता है। नाममात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति होता है और वास्तविक कार्यपालिका मंत्री-परिषद होती है, जिसका नेतृत्व प्रधानमन्त्री करता है। राष्ट्रपति के नाम से समस्त कार्यपालिका शक्तियों प्रयोग, प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में मंत्री-परिषद करती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 74(1) के अनुसार राष्ट्रपति को अपने कार्यों में सहायता तथा मन्त्रणा के लिए एक मंत्रिमण्डल होगा, जिसका प्रधान, प्रधानमन्त्री होगा। इसके आगे अनुच्छेद- 75(1) में कहा गया है कि, प्रधानमन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री के परामर्श पर करेगा। संसदीय लोकतन्त्र की परम्परा के अनुसार राष्ट्रपति लोक सभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हमारे संविधान में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है कि राष्ट्रपति बहुमत दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करने को बाध्य हो।

अनुच्छेद- 75(5) के अनुसार के कोई भी व्यक्ति संसद का सदस्य हुए बिना छः माह तक मन्त्री पद पर रह सकता है। साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रधानमन्त्री का नियुक्ति निम्न सदन (लोक सभा) से ही हो। उदाहरण स्वरुप- इन्दिरा गान्धी को जब पहली बार 1966 प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया तो उस समय वे उच्च सदन (राज्य सभा) की सदस्य थीं। ब्रिटेन की संसदीय परम्पराओं के अनुसार प्रधानमन्त्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति ने कभी अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया बल्कि बहुमत प्राप्त दल के नेता, किसी दल को बहुमत न मिलने की स्थिति में सबसे बड़े दल के नेता को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

संविधान के उपबन्धों और गत 64 वर्ष के व्यावहारिक अनुभवों से प्रधानमन्त्री के पद और स्थिति की जानकारी के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर विस्तृत विचार करना आवश्यक है -

5.2.1 प्रधानमन्त्री की नियुक्ति

इस बात का उल्लेख ऊपर कर चुके हैं कि संसदीय परम्परा के अनुरुप राष्ट्रपति लोक सभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को, प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है। 1946 की अन्तरिम सरकार में जवाहर लाल नेहरु को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया। 1952, 1957 और 1962 के लोक सभा के आम चुनाव में कांग्रेस को सफलता मिली और नेहरु जी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया जाता रहा। 1964 में इनकी मृत्यु के उपरान्त कांग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य गुलजारी लाल नन्दा को अस्थायी रुप से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया। इसके पश्चात कांग्रेस अध्यक्ष कामराज की कुशलता से लाल बहादुर शास्त्री को स्थायी प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया।

1966 में शास्त्री जी की आकस्मिक मृत्यु के उपरान्त एक बार पुनः नेता के चुनाव के प्रश्न पर मतभेद उभरा, क्योंकि काग्रेस अध्यक्ष कामराज इन्दिरा गाँधी को चाहते थे, जबकि कांग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य मोरारजी देसाई भी दावेदारी कर रहे थे। फलस्वरुप दल के चुनाव में श्रीमती गाँधी 169 के मुकाबले 355 मतों से विजयी रहीं। दल में इस विभाजन के कारण 1967 के चुनाव में कुछ राज्यों में भारी पराजय का सामना करना पड़ा। कांग्रेस, लोक सभा

के 1962 के चुनाव में 361 स्थानों पर विजयी हुई थी, जबकि 1967 में यह संख्या घटकर 283 हो गयी। 1967 के चुनाव के उपरान्त इन्दिरा गाँधी सर्वसम्मति से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त की गयी। दूसरे गुट के सदस्य मोरारजी देसाई को उप-प्रधानमन्त्री और गृहमन्त्री के पद पर नियुक्त किया गया। फिर भी मोरारजी देसाई को असन्तोष था और उन्होंनें इन्दिरा गाँधी के प्रगतिशील आर्थिक नीतियों का, जैसे- बैंकों के राष्ट्रीयकरण का विरोध किया। 1969 के राष्ट्रपति के चुनाव में तो यह विरोध और भी मुखर होकर सामने आ गया। कांग्रेस के अधिकृत उम्मीदवार नीलम संजीव रेड्डी के खिलाफ श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने निर्दलीय प्रत्याशी वी0वी0 गिरी को राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित करवाया, फलस्वरुप कांग्रेस का विभाजन हो गया। इन्दिरा गुट अल्पमत में आ गयी। प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने लोक सभा का विघटन कर दिया। 1971 के पूर्वार्द्ध में लोक सभा के प्रथम मध्यावधि चुनाव हुए। इन्दिरा गुट को भारी सफलता प्राप्त हुई और राष्ट्रपति ने इन्दिरा गाँधी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। इस सफलता ने श्रीमती गाँधी को एक शक्तिशाली नेता के रुप में राजनीतिक मंच पर स्थापित कर दिया।

इन्दिरा गाँधी की चुनावी सफलता और समाजवाद के चमत्कारिक नारे ने उनके प्रभाव में ऐसी बृद्धि की कि कांग्रेस के सर्वमान्य नेता के रुप में स्थापित हुई। 1977 के लोक सभा चुनाव में कांग्रेस की पराजय हुई और जनता पार्टी को सफलता मिली। मोरारजी देसाई को, राष्ट्रपति ने, प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

जनता पार्टी के सरकार बनाने के समय से ही उसके विभिन्न घटक दलों में मतभेद थे, जो 1977 तक बहुत बढ गये। इस स्थिति को देखते हुए जुलाई 1977 में विपक्ष अविश्वास प्रस्ताव ले आया और मोरारजी देसाई ने बिना सामना किये ही प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया। इसके पश्चात सरकार बनाने की विभिन्न संभावनाओं पर विचार करते हुए. चौधरी चरण सिंह को तीन महीने में बहुमत सिद्ध करने की शर्त के साथ सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया। परन्तु कांग्रेस पार्टी ने चरण सिंह से अपना समर्थन वापस ले लिया। यह समर्थन चरण सिंह द्वारा लोक सभा में बहुमत सिद्ध करने की तिथि के पहले ही ले लिया गया, परिणामस्वरुप चौधरी चरण सिंह ने लोक सभा का सामना किये बिना ही त्यागपत्र देते हुए राष्ट्रपति से लोक सभा विघटित करने की सिफारिश की। तत्कालीन राष्ट्रपति ने लोक सभा का विघटन करते हुए. चौधरी चरण सिंह को कार्यवाहक प्रधानमन्त्री के रुप में रहने दिया।

1980 के लोक सभा चुनाव में कांग्रेस पार्टी को एक बार पुनः आश्चर्यजनक सफलता मिली और श्रीमती गाँधी एक बार पुनः प्रभावशाली प्रधानमन्त्री के रुप में स्थापित हुई। किन्तु श्रीमती गाँधी की दुर्भाग्यपूर्ण हत्या(31 अक्टूबर 1984) हो गयी। तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने कांग्रेस संसदीय बोर्ड की सिफारिश पर राजीव गाँधी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। चूँकि श्रीमती गाँधी की हत्या के कारण राजीव गाँधी के साथ जनता की बहुत सहानुभूति थी, इसलिए 1984 के लोक सभा चुनाव में कांग्रेस को अब तक सर्वाधिक सीटें प्राप्त हुई। इस सफलता के केन्द्र में राजीव गाँधी थे, इसलिए राजीव गाँधी का प्रधानमन्त्री बनना तय था। भारतीय राजव्यवस्था और प्रधानमन्त्री पद के लिए 1989 का लोक सभा चुनाव एक विभाजक चुनाव था। इस चुनाव ने एकदलीय प्रभुत्व का अन्त किया क्योंकि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। जनता दल के वी0पी0 सिंह भाजपा सहित अन्य दलों के समर्थन से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किये गये, किन्तु नवम्बर 1990 में भाजपा के समर्थन वापस लेने की वजह से वी0पी0 सिंह सरकार का पतन हो गया। वी0पी0 सिंह सरकार के पतन के साथ ही जनता दल का विभाजन हो गया। चन्द्रशेखर सिंह ने कांग्रेस के समर्थन से प्रधानमन्त्री पद प्राप्त किया। कांग्रेस के समर्थन वापस लेने

कारण चन्द्रशेखर सरकार का भी अल्पायु में ही, जून1991 में पतन हो गया। 1991 के लोक सभा चुनाव में कांग्रेस सबसे बड़े दल के रुप में उभरी। मई 1991 राजीव गाँधी की हत्या हो गयी। इस राजनीतिक वातावरण में पी0वी0 नरसिंहराव को राष्ट्रपति ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

1996 के लोक सभा चुनाव में भी किसी दल को बहुमत नहीं मिला। 13 दलों का सहयोग प्राप्त कर भाजपा के अटलबिहारी वाजपेयी को राष्ट्रपति ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया, किन्तु इस सरकार का कार्यकाल मात्र तेरह दिन ही रहा। इसके पश्चात एच0डी0 देवगौड़ा और इन्द्र कुमार गुजराल की कांग्रेस समर्थित सरकारें बनीं जो, अल्पकालिक ही रहीं। 1998 के लोक सभा चुनाव में के पश्चात भाजपा और उसके सहयोगी दलों के नेता अटल विहारी वाजपेयी पुनः प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त हुए। किन्तु यह सरकार भी स्थायी नहीं रही और पुनः 1999 में लोक सभा के चुनाव में किसी भी दल को बहुमत नहीं प्राप्त हुआ। अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा सहित पन्द्रह दलों की गठबंधन सरकार का गठन किया गया। इस गठबंधन सरकार में मंत्री- मण्डल के सदस्यों का चयन प्रधानमन्त्री की इच्छा पर निर्भर न होकर, घटक दलों की इच्छा और उनकी सौदेबाजी की स्थिति पर आधारित था।

इसी प्रकार 2004 के लोक सभा चुनाव में कांग्रेस के नेतृत्व में ग्यारह दलों के औपचारिक समर्थन और आठ दलों के बाहर से समर्थन से गठबंधन सरकार का गठन हुआ। इस सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया। 2009 के 15वीं लोक सभा चुनाव में पुनः कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार का गठन हुआ। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि गठबंधन सरकार में मंत्री-परिषद के गठन में प्रधानमन्त्री पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं होते हैं, क्योंकि क्षेत्रीय दल, सरकार को समर्थन अपने हितों की सिद्धि के लिए करते हैं। ऐसे सौदेबाजी के वातावरण में प्रधानमन्त्री की स्थिति बहुत मजबूत एवं निर्णायक नहीं हो सकती।

5.2.2 प्रधानमन्त्री और मंत्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध

भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 75(1) के अनुसार राष्ट्रपति मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमन्त्री की मंत्रणा से करता है। भारत में भी इग्लैण्ड के समान संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संसदीय परम्परा का अनुसरण करते हुए भारत में भी मंत्री पद का चयन प्रधानमन्त्री करते हैं, राष्ट्रपति की स्वीकृति एक औपचारिकता होती है। प्रधानमन्त्री मंत्रियों के चयन में उस समय शक्तिशाली होता था और उसके निर्णय निर्णायक भी होते थे, जब एक दल बहुमत के आधार पर सरकार का गठन करता था। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में स्थिति काफी हद तक बदल गयी है, क्योंकि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पा रहा है। सरकार के गठन और उसकी स्थिरता के लिए, विभिन्न क्षेत्रीय दलों के सहयोग की आवश्यकता होती है। ये क्षेत्रीय दल सहयेाग के बदले में मंत्री पद प्राप्त करने की सौदेबाजी करते हैं। मंत्रियों को विभागों का बंटवारा भी प्रधानमन्त्री का विवेकाधिकार होता है, परन्तु मंत्री-परिषद का गठन करते समय उन्हें जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र तथा सहयोगी क्षेत्रीय दलों की निम्न सदन (लोक सभा) में सफल सदस्यों की सख्या को महत्व देना पड़ता है ।

5.2.3 प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध

भारतीय प्रशासन में प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच का सम्बन्ध अति महत्वपूर्ण है, क्योंकि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संसदीय शासन प्रणाली में राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका होता हैं, जिनके नाम से सभी कार्य किये जाते हैं। जबकि मंत्री-परिषद वास्तविक कार्यपालिका होती है। प्रधानमन्त्री, मंत्री-परिषद

को नेतृत्व प्रदान करते हैं। मूल संविधान में यह उपबन्ध था कि राष्ट्रपति, मंत्री-परिषद के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं थे, किन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबन्ध किया गया कि राष्ट्रपति, मंत्री-परिषद की सिफारिस मानने के लिए बाध्य है। 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा पुनः पूर्व स्थिति को बहाल कर दिया गया।

राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री के बीच सम्बन्ध मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करता है, पहला- राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री के बीच का दलीय सम्बन्ध, यदि दोनों एक ही दल के हैं तो दलीय अनुशासन के कारण, सम्बन्ध सामान्य बने रहेंगे। जैसा कि1977 तक स्पष्ट रुप से दिखाई देता है। दूसरा- राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री का व्यक्तित्व और उनके राजनीतिक प्रभाव भी दोनों के बीच के सम्बन्ध को प्रभावित करते हैं। यदि राष्ट्रपति के चुनाव में प्रधानमन्त्री की भूमिका है तो दोनों के बीच के सम्बन्ध काफी हद तक सामान्य रहे हैं। जैसा कि जाकिर हुसैन, वी0वी0 गिरि, फखरुद्दीन अली अहमद और ज्ञानी जैल सिंह के मामले में हुआ है। किन्तु 31अक्टूबर 1984 को श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या हो गयी। इसके पश्चात राजीव गाँधी को राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। 1986 तक तो सम्बन्ध अच्छे रहे, किन्तु 1987 के प्रारम्भ से दोनों के बीच के संबंधों में कड़वाहट शुरु हुई और ऐसा लगने लगा कि राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह, प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी को पद से हटाकर लोक सभा का विघटन कर देंगे। संविधान लागू होने के पश्चात ऐसा सर्वप्रथम हुआ कि एक ही दल का होने के बावजूद राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री में गम्भीर मतभेद उभर कर सामने आये।

5.2.4 प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। भारत में प्रधानमन्त्री की नियुक्ति निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल की जाती है। यद्यपि उच्च सदन से प्रधानमन्त्री की नियुक्ति को लेकर कोई कानूनी बन्धन नहीं हैं। हमारे देश में सर्वप्रथम 1966 में श्रीमती इन्दिरा गाँधी को राज्य सभा के सदस्य के रुप में प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया गया। इसके पश्चात प्रधानमन्त्री डॉ0 मनमोहन सिंह भी राज्य सभा सदस्य रहे।

प्रधानमन्त्री लोक सभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है, इसलिए सदन का भी नेता होता है। सदन का नेता होने के नाते विपक्ष के अधिकारों के रक्षा की और सदन की कार्यवाही में उनकी भागीदारी हेतु अवसर प्रदान करेंगे। इस हेतु वे विपक्ष से परामर्श करते हैं और उनकी शिकायतों का निराकरण करने का प्रयत्न भी करते हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 75(3) के अनुसार मंत्रिमण्डल सामूहिक रुप से लोक सभा के प्रति उत्तर दायी होता है। इसका तात्पर्य यह है कि मंत्रिमण्डल का अस्तित्व तभी तक है जब तक कि उसे लोक सभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त है। किन्तु व्यावहारिक स्थिति कुछ और ही है, क्योंकि दलीय अनुशासन के कारण, लोक सभा में बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल, मंत्रिमण्डल के विरुद्ध नहीं जा पाता है। संसदीय परम्परा के अनुसार प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति से सिफारिश करके लोक सभा का विघटन करवा सकता है। इस अधिकार के कारण प्रधानमन्त्री लोक सभा को नियंत्रित करने में काफी हद तक सफल रहता है। प्रथम लोक सभा के गठन से आज तक 59 वर्षों में कई बार लोक सभा का विघटन समय से पूर्व करते हुए मध्यावधि चुनाव कराये गये।

किस प्रधानमन्त्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने विघटन किया-

श्रीमती इन्दिरा गाँधी	1970
श्रीमती इन्दिरा गाँधी	1977
चौधरी चरण सिंह	1979

राजीव गाँधी	1984
चन्द्रशेखर सिंह	1991
अटल बिहारी वाजपेयी	1998
अटल बिहारी वाजपेयी	1999

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जब किसी एक दल को निरपेक्ष बहुमत रहा है तो लोक सभा पर प्रधानमन्त्री का नियंत्रण बहुत ही प्रभावशाली रहा है। परन्तु जब गठबंधन सरकारें रहीं हैं(जैसे 1977,1989,1991, 1996, 1998, 1999, 2004 और 2009 में) तब लोक सभा पर नियंत्रण की बात तो दूर की रही, वे स्वयं ही अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देते रहे थे।

अभ्यास प्रश्न-

1. प्रधानमन्त्री की नियुक्ति की जाती है या निर्वाचित होता है?
2. निम्न सदन का नेता कौन होता है?
3. प्रधानमन्त्री की नियुक्ति कौन करता है?
4. भारत की प्रथम प्रधानमन्त्री जो राज्य सभा सदस्य थीं?
5. कोई मंत्री बिना संसद सदस्य रहे कितने माह मंत्री रह सकता है?

5.3 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम संसदीय शासन में प्रधानमन्त्री की नियुक्ति हेतु अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई। साथ ही यह भी देखा की किस प्रकार से प्रधानमन्त्री इस शासन व्यवस्था में बहुत ही शक्तिशाली होकर उभरता है। यहाँ यह भी देखने को मिला कि प्रधानमन्त्री मंत्री-परिषद और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य करता है और समय- समय पर मंत्री-परिषद द्वारा लिए गये निर्णयों की जानकारी भी राष्ट्रपति को देता है।

उपरोक्त अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो गया कि किस प्रकार से इस शासन व्यस्था में सम्पूर्ण शासन व्यस्था के केन्द्र में प्रधानमन्त्री होता है।

5.4 शब्दावली

मंत्री-परिषद - मंत्रीमण्डल, राज्यमंत्री, उप-मंत्री

निम्न सदन- लोक सभा को कहते हैं।

उच्च सदन- राज्य सभा को कहते हैं।

5.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नियुक्ति, **2.** प्रधानमन्त्री **3.** राष्ट्रपति **4.** श्रीमती इन्दिरा गाँधी **5.** छः माह

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय शासन एवं राजनीति- डॉ रूपा मंगलानी।

2. भारतीय सरकार एवं राजनीति- त्रिवेदी एवं राय।
3. भारतीय शासन एवं राजनीति- महेन्द्र प्रताप सिंह।

5.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा।
2. भारतीय लोक प्रशासन- बी0एल0 फाड़िया।

5.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत के प्रधानमन्त्री की पद एवं स्थिति की विवेचना कीजिये।
2. प्रधानमन्त्री की सदन के नेता और सरकार के मुखिया के रूप में महत्व की व्याख्या कीजिये।
3. गठबन्धन सरकारों के युग में प्रधानमन्त्री कमजोर हुआ है या मजबूत, समीक्षा कीजिये।

इकाई- 6 केन्द्रीय सचिवालय, मंत्रिमंडलीय सचिवालय, प्रधानमन्त्री सचिवालय

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 केन्द्रीय सचिवालय
    6.2.1 केन्द्रीय सचिवालय की अवधारणा
    6.2.2 केन्द्रीय सचिवालय का संगठन
    6.2.3 केन्द्रीय सचिवालय के कार्य
    6.2.4 केन्द्रीय सचिवालय की कार्य-प्रणाली की आलोचना
    6.2.5 केन्द्रीय सचिवालय में सुधार के लिए सुझाव
6.3 अवधि प्रणाली
    6.3.1 अवधि प्रणाली के पक्ष में तर्क
    6.3.2 अवधि प्रणाली के विपक्ष में तर्क
6.4 मंत्रिमंडलीय सचिवालय (कैबिनेट) सचिवालय
    6.4.1 मंत्रिमंडलीय सचिवालय के कार्य
    6.4.2 मंत्रिमंडलीय सचिव
        6.4.2.1 मंत्रिमंडलीय सचिवालय एवं मंत्रिमण्डल सचिव की स्थिति पर प्रतिकुल प्रभाव डालने वाले कारण
        6.4.2.2 मंत्रिमंडलीय सचिवालय के पुनर्गठन और क्षमता विकास के लिए सुझाव
6.5 प्रधानमन्त्री कार्यालय
    6.5.1 प्रधानमन्त्री कार्यालय के कार्य
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

भारतीय प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने हेतु कई मंत्रालयों एवं विभागों का गठन किया गया है, जिनसे मिलकर केन्द्रीय सचिवालय का निर्माण होता है। मंत्रियों द्वारा सचिवालय से विचार-विमर्श करके नीतियों का निर्माण किया जाता है।

मंत्रिमण्डल सचिवालय की स्थापना एक ऐसे प्रशासनिक संस्थान के रूप में की गयी है, जो मंत्रिमण्डल के कार्यों में सहयोग देने के लिए है। मंत्रिमंडलीय सचिवालय देश के एक नीति-निर्माण अभिकरण के रूप में स्थापित किया गया है।

भारत में संसदीय प्रणाली होने के कारण व्यावहारिक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमन्त्री करता है। सरकार के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमन्त्री को शासन कार्यो में कार्यालयीन सहायता करने के लिए 15 अगस्त 1947 को प्रधानमन्त्री कार्यालय की स्थापना की गयी। इस कार्यालय का निर्माण उन कार्यों का सम्पादन करने के उद्देश्य से किया गया है, जिन्हें 15 अगस्त 1947 से पूर्व गवर्नर जनरल के व्यक्तिगत सचिव द्वारा किया जाता था।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- केन्द्रीय सचिवालय के संगठन और कार्यों को जान सकेंगे।
- मंत्रिमंडलीय सचिवालय के संगठन और कार्यों को जान सकेंगे।
- प्रधानमन्त्री कार्यालय के संगठन और कार्यों को जान सकेंगे।

6.2 केन्द्रीय सचिवालय

भारतीय प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने हेतु कई मंत्रालयों एवं विभागों में विभाजित किया गया है, जिनसे मिलकर केन्द्रीय सचिवालय का निर्माण होता है। मंत्रियों द्वारा सचिवालय से विचार-विमर्श करके नितियों का निर्माण किया जाता है। नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए संलग्न, अधीनस्थ तथा क्षेत्रीय कार्यालय होते हैं। इस प्रकार सचिवालय एक अवधारणा है, जिसका अभिप्राय केन्द्र सरकार के स्तर पर गठित मंत्रालयों एवं विभागों के समुच्चय से है, जिनका राजनीतिक अध्यक्ष मंत्री होता है एवं प्रशासनिक अध्यक्ष सचिव होता है।

6.2.1 केन्द्रीय सचिवालय की अवधारणा

केन्द्रीय सचिवालय की अवधारणा दो विचारधाराओं पर आधारित है-

1. **राजनीतिक-प्रशासन द्वैतभाव की विचारधारा-** जिसके अन्तर्गत नीति-निर्माण को नीति क्रियान्वयन से पृथक किया गया है। इसके अन्तर्गत सचिवालय की भूमिका को नीति निर्धारण से जोड़ा गया है एवं क्रियान्वयन हेतु क्षेत्रीय संस्थान का निर्माण किया गया है।
2. **अवधि प्रणाली की विचारधारा-** केन्द्रीय सचिवालय केन्द्र सरकार के मुख्यालय की हैसियत से नीति-निर्माण के लिए उत्तर दायी है, परन्तु नीति के क्रियान्वयन के लिए केन्द्रीय सचिवालय के अन्तर्गत क्षेत्रीय संस्थान का निर्माण किया गया है। केन्द्र सरकार के स्तर पर क्षेत्रीय संस्थान मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं-
    - **संबंधित कार्यालय या संलग्न कार्यालय-** इसके दो मौलिक कार्य हैं। पहला, नीति-निर्माण की प्रक्रिया में तकनीकी परामर्श प्रस्तुत करना एवं दूसरा, नीति के क्रियान्वयन का परिवीक्षण करना।

- **अधीनस्थ कार्यालय-** यह केन्द्र सरकार की नीति के वास्तविक एवं क्रियान्वयन के लिए उत्तर दायी माना गया है।

इन दोनों के अतिरिक्त क्षेत्रीय संस्थान निम्नांकित प्रकार के भी हो सकते हैं, जैसे - विभागीय उपक्रम, लोक निगम, सरकारी कम्पनी आदि। ये तीनों मौलिक स्वरूप हैं, जिनके माध्यम से सरकार वाणिज्यिक एवं व्यावसायिक कार्यों का संचालन करती है।

6.2.2 केन्द्रीय सचिवालय का संगठन

केन्द्रीय सचिवालय में अनेक मंत्रालय और विभाग हैं, जिनकी संख्या घटती-बढ़ती रहती है। इसके संगठन को निम्नांकित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

पदाधिकारी	**स्तर**
मंत्री	मंत्रालय का राजनीतिक अध्यक्ष
सचिव	मंत्रालय का प्रशासनिक अध्यक्ष
विशेष या अतिरिक्त सचिव	----------
अधिकारी वर्ग संयुक्त सचिव	उपविभाग का अध्यक्ष
उपसचिव/निदेशक	प्रभाग का अध्यक्ष
अवर सचिव	शाखा
अनुभाग अधिकारी	अनुभाग
सहायक	अनुभाग अधिकारी का सहायक
कार्यालय	ग्रुप- 'ब' कर्मचारी,

इस प्रकार निदेशक तथा उपसचिव के पदों को समान स्तर का मानते हुए केन्द्रीय सचिवालय के ढ़ाँचे को सचिव से लेकर निम्न श्रेणी तक 09 ग्रेडों में रखा गया है। सचिवालय में अधिकारियों की ये श्रेणियाँ 'अधिकाधिक सिद्धान्त' पर आधारित हैं, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक श्रेणी के अधिकारी का यह कर्त्तव्य है कि वह जितना अधिक कार्य कर सके, उतना करे और केवल महत्वपूर्ण मामले ही उच्च स्तर पर पहुँचे।

अधिकारी वर्ग प्रायः भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य होते हैं। इन अधिकारियों की भर्ती केन्द्रीय सरकार के द्वारा विभिन्न राज्यों की भारतीय प्रशासनिक सेवा श्रेणियों में से कार्यकाल पद्धति के अन्तर्गत की जाती है। यह पद्धति 1905 से लार्ड कर्जन के समय शुरू हुई। इस वर्ग में भर्ती के दूसरे स्रोत, केन्द्रीय सचिवालय सेवा का गठन 1951 में किया गया। केन्द्रीय सचिवालय सेवा के अधिकारियों को मंत्रालयों एवं विभागों से इसलिए सम्बद्ध किया जाता है, ताकि सचिवालय के कार्यों में निरन्तरता बनी रहे। सन् 1957 से केन्द्रीय सचिवालय के उच्चस्थ अधिकारियों की नियुक्ति हेतु केन्द्रीय स्टाफिंग योजना प्रारम्भ की गयी है।

6.2.3 केन्द्रीय सचिवालय के कार्य

सरकारी हैण्डबुक के अनुसार सचिवालय के प्रमुख कार्य निम्नांकित हैं-

1. नीति का निर्धारण तथा समय-समय पर आवश्यकतानुसार नीति के संशोधन में मंत्री की सहायता करना।
2. नियम, विधान तथा विनिमय बनाना।

3. क्षेत्रीय कार्यक्रम और योजना तैयार करना।
4. मंत्रालय या विभाग के कार्यों के सन्दर्भ में बजट तैयार करना और व्यय पर नियन्त्रण करना।
5. प्रारम्भ होने वाले कार्यक्रमों और योजनाओं की वित्तीय तथा प्रशासनिक अनुमति देना और उनमें आवश्यक संशोधन करना।
6. कार्यपालिका विभागों एवं अर्द्ध स्वायत्त क्षेत्रीय अभिकरणों द्वारा निर्मित नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का पर्यवेक्षण करना।
7. नीतियों की व्याख्या करना एवं उनमें समन्वय लाना।
8. मंत्रालय या विभाग में कार्यरत कर्मचारियों एवं संगठन की क्षमता बढ़ाने के लिए कदम उठाना।
9. मंत्री को उसके संसदीय उत्तर दायित्व को पूरा करने में सहायता देना।

इस प्रकार सचिवालय एक प्रशासनिक परामर्शदात्री निकाय है। वह एक ओर तो नीति-निर्धारक, समन्वयकर्ता और नियंत्रक निकाय है, तो दूसरी ओर सरकार का प्रमुख कार्यपालिका निकाय ही है।

6.2.4 केन्द्रीय सचिवालय की कार्य-प्रणाली की आलोचना

भारत में सचिवालय प्रशासन की रीढ़ है। फिर भी सचिवालय की कार्यप्रणाली की निम्नांकित आधारों पर आलोचना की जाती है-

1. अनावश्यक रूप से बढ़ता हुआ आकार।
2. सचिवालय के कर्मियों की संख्या में इतनी अधिक वृद्धि कि वह एक भीड़ भरा संगठन बन गया है।
3. अत्यन्त खर्चिला।
4. विलम्बकारी प्रकिया।
5. विलम्ब की समस्या से प्रजातंत्र के स्वरुप में भ्रष्टाचार का उदय।
6. सचिवालय यद्यपि नीति-निर्माण करने वाली संस्था है, तथापि आज-कल यह कार्यकारी विभागों के कार्यों का संचालन अधिकाधिक मात्रा में करने लगा है। परिणामस्वरूप एक ओर तो सचिवालय अपना ध्यान नीति-निर्माण के कार्य पर केन्द्रित नहीं कर पाता और दूसरी ओर कार्यकारी इकाईयों की शक्ति में ह्रास होता जा रहा है।
7. वर्तमान समय में सचिवालय अपना क्षेत्राधिकार बढ़ाने की मनोवृत्ति से पीड़ित।
8. सचिवालय के कार्यकारी अपने आपको इकाईयों के कार्मिकों से अधिक योग्य मानने की प्रवृति से पीड़ित दिखाई देते हैं।

6.2.5 केन्द्रीय सचिवालय में सुधार के लिए सुझाव

भारत सरकार सचिवालय के दोषों को दूर करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रही है। प्रशासनिक सुधार आयोग के सुझावों पर आवश्यकतानुसार अमल किया गया है, जैसे-

1. निर्णय प्रक्रिया में पदसोपानों की संख्या में कमी करने की दिशा में कदम उठाए गये हैं।
2. निम्न स्तर पर प्रशासनिक कुशलता लाने के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती है।
3. सचिवालय में अनावश्यक नियुक्तियों को तथा अनावश्यक व्ययों को हतोत्साहित किया जा रहा है।

4. कर्मचारियों की पदोन्नति के नये नियम लागू हो रहे हैं और यह समझा जाने लगा है कि वरिष्ठ पदों को भरने के लिए आयु को अनावश्यक महत्व न दिया जाए।
5. यह भी सुझाव दिया गया है कि एक मंत्रालय के साथ संलग्न सचिव को दो वर्ष के स्थान पर लगातार पांच वर्ष के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए।

इस के अतिरिक्त सचिवालय की कार्य-पद्धति को सरल एवं गतिमान बनाया गया है और लालफीताशाही को समाप्त करने पर जोर दिया जा रहा है। सचिवालय सुधार के लिए कुछ सुझाव निम्नांकित है-

- सचिवालय की कार्य प्रणली को अधिक गति दने के लिए यह आवश्यक है कि सचिवालय केवल नीति-निर्माण का ही कार्य करे।
- सचिवालय के कार्यों में कुशलता लाने के लिए विभागाध्यक्ष, सचिव तथा मंत्री तीनों के मध्य की दूरीयाँ कम की जाए।
- प्रशासनिक विभागों की अध्यक्षता हेतु विशेषज्ञ अधिकारियों को प्राथमिकता दी जाए।

6.3 अवधि प्रणाली

'अवधि प्रणाली' का प्रारम्भ लार्ड कर्जन के द्वारा 1905 में की गया। इसके अर्न्तगत क्षेत्रीय संस्थान के स्तर पर कार्य करने वाले अधिकारियों को एक निर्धारित अवधि के लिए मुख्यालय के स्तर पर पद स्थापित किया जाता था। आजादी के उपरान्त 'अवधि प्रणाली' से राज्य सरकार के स्तर पर कार्य कर रहे अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों को एक निश्चित समय तक कन्द्रीय सचिवालय में पद स्थापित किया जाता है। अपने इस कार्यकाल को पूरा करने के उपरान्त उन्हें पुनः संबधित राज्य सरकार की सेवा में वापिस भेज दिया जाता है।

6.3.1 अवधि प्रणाली के पक्ष में तर्क

अवधि प्रणाली के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं-

1. अवधि प्रणाली से केन्द्र एवं राज्य के बीच अधिक प्रभावी प्रशासनिक समन्वय प्राप्त किया जा सकता है।
2. अवधि प्रणाली केन्द्र एवं राज्य सरकार दोनों के लिए लाभकारी है। केन्द्र सरकार अधिक वास्तविक तरीके से स्थानीय अनुभव के आधार पर नीति का निर्माण कर सकती है, क्योंकि राज्य सरकार के स्तर पर कार्य करने वाले अधिकारियों के पास जिला प्रशासन का वास्तविक अनुभव होता है। राज्य सरकार इन अधिकारियों के माध्यम से अपनी प्रशासनिक गतिविधियों में व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिकोण को प्राप्त कर सकती है।
3. भारतीय प्रशासन में समरूपता प्राप्त करने के दृष्टिकोण से अवधि प्रणाली का विशेष योगदान है।
4. अवधि प्रणाली देश की एकता एवं अखण्डता बनाये रखने में सहयोगी है।
5. अवधि प्रणाली की विचारधारा भारतीय संघवाद की विचारधारा से मेल रखती है।
6. अवधि प्रणाली अधिकारियों के बीच समानता के अवसर उपलब्ध कराती है।
7. राज्य सरकार के स्तर पर कार्य करने वाले अधिकारी अधिक राजनीतिक निष्पक्षता के साथ अपने कार्यों का संचालन कर सकते हैं। अर्थात् लोक सेवा के स्वतंत्र एवं निष्पक्ष कार्यों के सन्दर्भ में अवधि प्रणाली की भूमिका महत्वपूर्ण है।

8. अवधि प्रणाली के माध्यम से केन्द्र सरकार अपनी नीतियों पर जनता की सामान्य प्रतिक्रिया को प्राप्त कर सकती है।

6.3.2 अवधि प्रणाली के विपक्ष में तर्क

अवधि प्रणाली के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं-

1. जब राज्य प्रशासन के अधिकारी केन्द्रीय सचिवालय के अन्तर्गत किसी पद को ग्रहण करते हैं, तो ऐसी परिस्थिति में संबंधित मंत्रालय की कार्य-पद्धति से परिचत न होने के कारण उस अधिकारी की निर्भरता कार्यालय पर बनी रहती है। अतः जिस अवधि प्रणाली के माध्यम से अधिकारियों की कार्यकुशलता को अधिक करने का प्रयास किया गया है, उससे वैसा हो पाना सम्भव नहीं हो रहा है।
2. केन्द्र सरकार के स्तर पर कुछ एसी गतिविधियाँ संचालित की जाती हैं, जिनमें जिला प्रशासन का स्थानीय अनुभव अनिर्वाय नहीं है। अतः ऐसे क्षेत्रों में अवधि प्रणाली की उपयोगिता काफी सीमित हो जाती है।
3. कई परिस्थितियों में ऐसा भी देखने को मिलता है कि राज्य प्रशासन के अधिकारी जब अवधि प्रणाली के अर्न्तगत केन्द्र सरकार के स्तर पर सेवा प्रदान करने जाते हैं, तो इसके उपरान्त पुनः राज्य प्रशासन की सेवा में वापस जाने में दिलचस्पी नहीं रखते। अतः अवधि प्रणाली के माध्यम से जो लाभ राज्य प्रशासन को होना चाहिए, वह सम्भव नहीं हो पाता।
4. केन्द्रीय सचिवालय सेवा को स्थापित करने के उपरान्त अनुभाग अधिकारी पदोन्नति के माध्यम से उच्चतर अधिकारी वर्ग में शामिल किये जाते हैं। ऐसा होने के कारण अवधि प्रणाली के अन्तर्गत राज्य प्रशासन के अधिकारियों को सीमित अवसर प्राप्त होते हैं।
5. अवधि प्रणाली के अर्न्तगत केन्द्रीय सचिवालय के स्तर पर आने वाले अधिकारियों की संख्या में अनिश्चितता बनी रहती है।
6. सचिवालय सेवा के अधिकारियों के पदोन्नति के अवसर कम होते हैं। मनोबल प्रभावित होता है और समन्वय की समस्या होती है।

6.4 मंत्रिमंडलीय सचिवालय (कैबिनेट) सचिवालय

मंत्रिमंडलीय सचिवालय की स्थापना एक ऐसे प्रशासनिक संस्थान के रूप में की गयी है, जो मंत्रिमण्डल के कार्यों में सहयोग देने के लिए है। मंत्रिमंडलीय सचिवालय को देश के एक नीति-निर्माण अभिकरण के रूप में स्थापित किया गया है। भारतीय शासन-प्रणाली के अन्तर्गत मंत्रिमण्डल प्रमुख नीति निर्माण कर्ता अभिकरण है। अतः मंत्रिमण्डल सचिवालय के द्वारा सरकार की नीतियों का अंतिम निर्धारण किया जाता है।

मंत्रिमण्डल प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में अपने कार्यों को सम्पन्न करता है। प्रधानमन्त्री मंत्रिमण्डल के अध्यक्ष के रूप में मंत्रिमंडलीय सचिवालय से परामर्श एवं सहयोग प्राप्त करता है, जिसकी अध्यक्षता मंत्रिमंडलीय सचिव के द्वारा की जाती है। मंत्रिमंडलीय सचिव पूरे देश का सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी है। विभिन्न मंत्रालयों के बीच समन्वय को प्राप्त करने के लिए मंत्रिमंडलीय सचिवालय को उत्तर दायी माना गया है।

जब प्रधानमन्त्री सरकार के अध्यक्ष के रूप में अपने कार्यों का निष्पादन करते हैं, तो दैनिक प्रशासनिक सहयोग प्रधानमन्त्री कार्यालय के द्वारा प्रदान किया जाता है। ऐसी स्थिति में मंत्रिमंडलीय सचिवालय एवं प्रधानमन्त्री कार्यालय के बीच आजादी के उपरान्त ही समय-समय पर विवादास्पद मुद्दे उठते रहे हैं। संसदीय प्रणाली की

विचारधारा के अनुसार भारतीय शासन में मंत्रिमंडलीय सचिवालय की भूमिका निर्णायक होनी चाहिए। परन्तु प्रधानमन्त्री के बदलते हुए व्यक्तित्व के सन्दर्भ में मंत्रिमंडलीय सचिवालय की निर्णायक भूमिका प्रधानमन्त्री कार्यालय में देखने को मिलती है।

मंत्रिमंडलीय सचिवालय सीधे प्रधानमन्त्री के अधीन कार्य करता है। इसका सचिव, कैबिनेट सचिव होता है जो कि प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ अधिकारी होता है। उसकी सहायता के लिए अन्य अधिकारी एवं कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं।

6.4.1 मंत्रिमंडलीय सचिवालय के कार्य

कैबिनेट या मंत्रिमंडलीय सचिवालय केन्द्रीय प्रशासन का केन्द्र-बिन्दु है। भारत में कैबिनेट की कार्यकुशलता तथा प्रशासन की सुव्यवस्था बहुत हद तक मंत्रिमंडलीय सचिवालय की क्षमता पर निर्भर करती है। मंत्रिमंडलीय सचिवालय के कार्यों का विवरण निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत दिया जा सकता है-

1. **मंत्रिमंडलीय सचिवालय के रूप में-** केन्द्रीय मंत्रिमण्डल तथा उसकी समितियों को दैनिक कार्य से संबंधित सचिवालय सहायता प्रदान कराना। कैबिनेट की बैठकों की कार्यसूची तैयार करना, वाद-विवाद तथा निर्णयों का अभिलेख रखना। केन्द्रीय मंत्रिमंण्डल, उसकी समितियों, राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति को विभिन्न सरकारी संस्थाओं से संबंधित आवश्यक सूचनाऐं उपलब्ध कराना। मंत्रिमण्डल की बैठकों के निर्णयों की सूचना संबंधित विभागों को पहुँचाना।
2. **प्रारम्भकर्ता के रूप में-** इस रूप में कैबिनेट सचिवालय तीन प्रकार के प्रारम्भिक कार्य करता है। पहला- मंत्री-परिषद के मंत्रियों की नियुक्तियाँ, उनके बीच विभागों के वितरण, शपथ ग्रहण, त्याग-पत्र आदि से संबंधित समस्त कार्य। दूसरा- ऐसे कानूनों का निर्माण करना जो सरकार के कार्यों को सुविधापूर्वक सम्पन्न करने में सहायता करते हों। तीसरा- सरकार की नीतियों को लागू करने तथा उनमें समन्वय लाने से सम्बन्धित विभागों की देखरेख रखना।
3. **समन्वयकर्ता विभाग के रूप में-** केन्द्रीय प्रशासनिक स्तर पर कैबिनेट सचिवालय एक प्रमुख समन्वय संस्था है। इस रूप में यह निम्नांकित कार्य करता है- भारत सरकार में कार्यरत विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, समितियों आदि के बीच समन्वय स्थापित करना। सरकार की प्रमुख नीतियों और गतिविधियों में समन्वय। केन्द्र सरकार एवं विभिन्न राज्य सरकारों के बीच समन्वय। कैबिनेट सचिव विभिन्न समितियों का अध्यक्ष होने के नाते विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
4. **मंत्रिमण्डल के निर्णयों को क्रियान्वित करने के रूप में-** प्रधानमन्त्री तथा मंत्रियों को समय-समय पर महत्वपूर्ण विषयों से संबंधित नीतियों के निरूपण एवं निष्पादन के विषय में परामर्श देना। मंत्रिमण्डल के समक्ष प्रस्तुत सभी विषयों के सम्बन्ध में मंत्रिमण्डल की सहायता और कार्यवाही करना। जैसे- संसद में व्यवस्थापन के लिए प्रस्तुत किये जाने वाले प्रस्ताव तैयार करना, सार्वजनिक जाँच समितियों की नियुक्ति, संसद के अधिवेशन प्रारम्भ करने और समाप्त करने आदि पर विचार, विदेशों के साथ सन्धियां एवं समझौते इत्यादि।

   कैबिनेट सचिवालय का एक महत्वपूर्ण कार्य यह देखना भी है कि मंत्रिमण्डल या उसकी समितियों द्वारा लिये गये निर्णय लागू हो रहे हैं या नहीं। इस कार्य हेतु यह सचिवालय मासिक प्रतिवेदन तैयार करता है।

इस प्रकार प्रशासनिक व्यवस्था में मंत्रिमंडलीय सचिवालय का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि प्रधानमन्त्री कार्यालय की स्थापना के बाद इसके महत्व में धीरे-धीरे कुछ कमी अवश्य देखी जा सकती है। फिर भी मंत्रिमण्डल सचिवालय, मंत्रिमण्डल के सचिवालय सम्बन्धी कार्यों के लिए स्टाफ, भुजा के समान है। अतः उसे सरकारी कार्यों का सम्पादन करने हेतु एक सरकारी विभाग मात्र नहीं मान लेना चाहिए।

6.4.2 मंत्रिमंडलीय सचिव

मंत्रिमंडलीय सचिवालय का मंत्रिमंडलीय (कैबिनेट) सचिव होता है, जो प्रधानमन्त्री के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में रहता है। कैबिनेट सचिव द्वारा मंत्रिमंडलीय सचिवालय की एवं सचिवों के सम्मलेन की अध्यक्षता की जाती है। कैबिनेट सचिव भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठतम सदस्य होता है। इसे भारतीय प्रशासन का सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न एवं प्रतिष्ठित पद माना जाता है।

प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार, योग्यतम एवं वरिष्ठतम अधिकारियों को ही कैबिनेट सचिव बनाया जाता है। इस पद को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है कि इसकी अवधि तीन या चार वर्ष की हो। कैबिनेट सचिव को अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा के वेतन का अधिकतम वेतनमान दिया जाये। आयोग के अनुसार महत्वपूर्ण नीति निर्धारक विषयों में उसे अधिक महत्व दिया जाना चाहिए, क्योंकि वह प्रधानमन्त्री, मंत्रिमण्डल तथा मंत्रिमंडलीय समितियों का प्रमुख सलाहकार होता है।

देशमुख टीम के अनुसार इस पद को अन्य सचिवों की तुलना में अधिक वेतनमान दिया जाए। यह टीम इस पद के क्रियान्वयन के तरीके से संतुष्ट नहीं थी और उसने इस पद की गरिमा एवं भूमिका में सुधार के लिए अनेक सिफारिशें की। जैसे -

1. दो या अधिक मंत्रालयों के बीच मतभेद की स्थिति में उन मामलों को कैबिनेट सचिव के पास भेजा जाना चाहिए।
2. कौन सा मामला किस मंत्रालय से संबंधित है, इसका निराकरण कैबिनेट सचिव पर छोड़ देना चाहिए। साथ ही कैबिनेट सचिव को समय-समय पर अन्य सचिवों से सम्पर्क स्थापित करते रहना चाहिए।

6.4.2.1 मंत्रिमंडलीय सचिवालय एवं मंत्रिमंडलीय सचिव की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कारण

1. मंत्रिमंडलीय सचिव को प्रधानमन्त्री का अपेक्षित संरक्षण न मिलना।
2. मंत्रियों और सचिवालय के उच्चस्थ अधिकारियों में पारस्परिक हितों के लिए गठजोड़, जिसका प्रभाव मंत्रिमंडलीय सचिव के समन्वय सम्बन्धी कार्यों पर पड़ता है।
3. कार्मिक प्रशासन मंत्रालय का प्रधानमन्त्री के नियंत्रण में रखा जाना और कई महत्वपूर्ण विषयों के सन्दर्भ में इस मंत्रालय का हस्तक्षेप में मंत्रिमण्डल सचिव की उपेक्षा।
4. प्रधानमन्त्री कार्यालय की स्थापना के पश्चात कई बार प्रधानमन्त्री की मंत्रिमंडलीय सचिवालय के बजाय प्रधानमन्त्री कार्यालय पर अधिक निर्भरता।
5. कई अवसरों पर मंत्रिमंडलीय सचिवों की नियुक्ति, सेवा विस्तार कार्य आदि के सम्बन्ध में राजनीतिक हस्तक्षेप।

6.4.2.2 मंत्रिमंडलीय सचिवालय के पुनर्गठन और क्षमता के विकास के लिए सुझाव

मंत्रिमंडलीय सचिवालय एक प्रभावकारी समन्वयकर्ता निकाय है। किन्तु यह प्रभावशाली समन्वय में उतना सक्षम नहीं हो पाता है। इसके पुनर्गठन और क्षमता के विकास के लिए निम्नांकित सुझाव दिये जा सकते हैं-

1. प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार सांख्यिकी विभाग को वित्तीय विभाग में मिला देना चहिए तथा सैन्य शाखा को रक्षा मंत्रालय को सौंप देना चाहिए। ऐसा करने से इस सचिवालय के पास अधिकांशतः मंत्रिमण्डल मामलों से सम्बंधित विभाग ही बचे रहेंगे।
2. कैबिनेट सचिव के पद का कार्यकाल तीन या चार साल किया जाना चाहिए।
3. मंत्रिमंडलीय सचिव की नियुक्ति के पहले विभिन्न पदों पर प्राप्त प्रशासनिक अनुभव, जैसे किसी राज्य में मुख्य सचिव की भूमिका आदि पर ध्यान देना चाहिए।
4. मंत्रिमंडलीय सचिव की नियुक्ति के लिए वरिष्ठता के साथ-साथ योग्यता, प्रभावशीलता, कर्त्तव्य-निष्ठा इत्यादि को ध्यान में रखा जाना चहिए।
5. मंत्रिमंडलीय सचिव की नियुक्ति, सेवा-विस्तार आदि के सन्दर्भ में राजनैतिक कारकों को कम से कम किया जाना चाहिए।
6. प्रधानमन्त्री कार्यालय और मंत्रिमंडलीय सचिवालय के कार्य-क्षेत्र को और अधिक स्पष्ट किया जाना चाहिए।
7. मंत्रिमंडलीय सचिवालय एवं सचिव को प्रधानमन्त्री का उपयुक्त संरक्षण प्राप्त होना चाहिए।

6.5 प्रधानमन्त्री कार्यालय

भारत में संसदीय प्रणाली होने के कारण व्यावहारिक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमन्त्री करता है। सरकार के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमन्त्री को शासन कार्यों में कार्यालयीय सहायता करने के लिए 15 अगस्त, 1947 को प्रधानमन्त्री कार्यालय की स्थापना की गयी। इस कार्यालय का निर्माण उन कार्यों का सम्पादन करने के उद्देश्य से किया गया है, जिन्हें 15 अगस्त 1947 से पूर्व गवर्नर जनरल के व्यक्तिगत सचिव द्वारा किया जाता था। ज्ञातव्य है कि प्रधानमन्त्री ने इसी तिथि से वह सभी कार्य अपने हाथों में लिए, जो इसके पहले गवर्नर जनरल, सरकार की कार्यपालिका के प्रमुख के रूप में किया करता था।

आजादी के उपरान्त पंडित नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री बने। नेहरू संसदीय प्रजातान्त्रिक विचारधारा का आदर करते थे एवं मंत्रिमण्डल के सामूहिक निर्णय पर विश्वास करते थे। अतः प्रधानमन्त्री कार्यालय का सम्बन्ध सीमित दैनिक प्रशासनिक कार्यों से था, जो कि प्रधानमन्त्री को सरकार के अध्यक्ष के रूप में चाहिए था। अतः इस समय महत्व की दृष्टि से प्रधानमन्त्री कार्यालय, कैबिनेट सचिवालय के बाद आता था और प्रधानमन्त्री कार्यालय को निर्णयकारी भूमिका प्राप्त नहीं थी।

जब लालबहादुर शास्त्री प्रधानमन्त्री बने, तब उनके पास प्रशासनिक दक्षता नहीं थी। अतः शास्त्री जी ने कार्यालय की भूमिका को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस समय प्रधानमन्त्री कार्यालय की भूमिका देश के उच्चतर नीति निर्णयक अभिकरण के रूप में स्थापित हुई और शास्त्री जी के कार्यालय में एलके झा जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले प्रशासनिक अधिकारी को प्रधानमन्त्री कार्यालय का सचिव नियुक्त किया। झा काफी

प्रभावशाली हो गये और उन्हें 'सुपर सचिव' की संज्ञा दी जाने लगी। शास्त्री जी के समय यह अत्यन्त शक्तिशाली होकर उभरा और प्रधानमन्त्री कार्यालय का नामकरण प्रधानमन्त्री सचिवालय कर दिया गया।

इन्दिरा गाँधी द्वारा प्रधानमन्त्री का पद ग्रहण करते समय उनके पास भी प्रशासनिक अनुभव तथा ज्ञान नहीं था, अतः स्वाभाविक रूप से उनकी निर्भरता प्रधानमन्त्री सचिवालय पर अधिक थी। देश की आर्थिक नीति एवं विदेश नीति जैसी जटिल विषय वस्तु पर इन्दिरा गाँधी काफी हद तक प्रधानमन्त्री सचिवालय पर निर्भर करती थी। ऐसी दशा में इन्दिरा गाँधी के प्रधानमंत्री काल में शास्त्री जी द्वारा शुरू की गयी परम्परा को और अधिक प्रोत्साहन मिला और इस समय प्रधानमन्त्री सचिवालय के आकार एवं भूमिका दोनों में वृद्धि हुई, विशेष कर राष्ट्रीय आपातकाल के समय प्रधानमन्त्री सचिवालय एक वास्तविक प्रशासनिक सत्ता के एक अतिरिक्त संवैधानिक केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। प्रधानमन्त्री सचिवालय एक निर्णायक अभिकरण के रूप में स्थापित हुआ एवं मंत्रिमण्डल सचिवालय एक ऐसा अभिकरण बन गया, जिसका कार्य प्रधानमन्त्री सचिवालय के निर्णयों को लागू करना था।

'जनता सरकार' के समय प्रधानमन्त्री सचिवालय का नामकरण पुनः प्रधानमन्त्री कार्यालय के रूप में किया गया। इसकी भूमिका सत्ता एवं आकार दोनों की दृष्टि से सीमित करते हुए मंत्रिमंडलीय सचिवालय को एक उचित नीति निर्णायक अभिकरण माना गया तथा प्रधानमन्त्री कार्यालय की राष्ट्रीय मामलों में नीति निर्धारण की कोई भूमिका नहीं रही। यहाँ तक 'रॉ' संगठन को भी इससे हटा दिया गया। कैबिनेट सचिवालय का कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग जो लोक सेवाओं पर नियंत्रण रखता है, पहले के समान गृह मंत्रालय को और राजस्व जाँच विभाग, वित्त मंत्रालय को लौटा दिया गया।

1980 में इन्दिरा गाँधी पुनः प्रधानमन्त्री बनी और उनके द्वारा जनता सरकार के समय किये गये अनेक कार्यों में परिर्वतन किये गये। साथ ही प्रधानमन्त्री कार्यालय की भूमिका में बढ़ोत्तरी भी हुई, लेकिन प्रधानमन्त्री कार्यालय वह स्थान प्राप्त न कर सका जो उसे पहले प्राप्त था।

1984 में राजीव गाँधी के प्रधानमन्त्री बनने के उपरान्त प्रधानमन्त्री कार्यालय के प्रमुख प्रशासनिक विषय वस्तुओं पर परामर्शदाताओं की नियुक्ति की गयी, जिससे भारतीय प्रशासनिक तंत्र में प्रधानमन्त्री कार्यालय का प्रभाव अधिक हुआ। राजीव गाँधी के पास भी प्रशासनिक दक्षता की कमी होने के कारण प्रधानमन्त्री कार्यालय पर उनकी निर्भरता बनी रही। अतः इस समय मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों दृष्टियों से विस्तार हुआ और वह अपनी खोई शक्ति एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त करने में सफल हुआ।

नरसिम्हा राव के प्रधानमंत्रित्व काल में विशेषकर अंतिम वर्षों में प्रधानमन्त्री कार्यालय की भूमिका पुनः अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी। नरसिम्हा राव के द्वारा एक अल्पमत सरकार का नेतृत्व किया गया। अतः प्रधानमन्त्री कार्यालय पर उनकी निर्भरता का अत्यधिक होना स्वाभाविक था।

इण्डिया टुडे के अनुसार वाजपेयी जी के नेतृत्व में प्रधानमन्त्री कार्यालय केवल सजावटी चीज बन कर रह गया है। वैसे सर्वशक्तिमान प्रधानमन्त्री कार्यालय को निष्प्रभाव करने का फैसला खुद वाजपेयी ने किया था। वाजपेयी के मित्रों का मानना है कि प्रधानमन्त्री ने निगरानी और सुधार-तंत्र को प्रभावी तरीके से विकसित किए बगैर अपने मंत्रियों को आजादी देकर गलती की। इससे जहाँ नियमों की चकाचौंध और उनका असर खत्म हो गया, वहीं वाजपेयी जी की निजी छवि को चोट पहुँची। इसकी वजह आर्थिक मामले हैं, जहाँ वाजपेयी जी कमजोर पड़ जाते हैं, लेकिन धीरे-धीरे प्रधानमन्त्री की सरकार पर पकड़ मजबूत होने के साथ ही प्रधानमन्त्री कार्यालय की एवं

प्रधानमन्त्री के प्रधान सचिव ब्रजेश मिश्र की भूमिका क्रमशः बढ़ती जा रही है। वर्तमान समय में रक्षा, विदेश के अतिरिक्त अन्य कई मामलों में प्रधानमन्त्री का हस्तक्षेप देखा जा सकता है एवं प्रधानमन्त्री कार्यालय तथा प्रधान सचिव गतिविधियों में प्रत्यक्ष रूप से भूमिका निभाते नजर आ रहे हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि वाजपेयी का जी प्रधानमन्त्री कार्यालय विकास की प्रक्रिया से गुजर रहा था।

वर्तमान समय में संयुक्त सरकार की विचारधारा के अन्तर्गत प्रधानमन्त्री एक राजनैतिक असुरक्षा की भावना में कार्य करते हैं। ऐसी स्थिति में प्रधानमन्त्री कार्यालय पर उनकी निर्भरता आंकना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त संयुक्त सरकार में कई अन्य राजनैतिक दलों के सदस्यों को मिलाकर मंत्री-परिषद का निर्माण किया जाता है। अतः प्रधानमन्त्री विश्वसनीय परामर्शों के लिए प्रधानमन्त्री कार्यालय पर ज्यादा निर्भर होते हैं। लेकिन संयुक्त सरकार में प्रधानमन्त्री सन्तुलन एवं अवरोध के नियम के अन्तर्गत अपने कार्यों का संचालन करते हैं। ऐसी अवस्था में प्रधानमन्त्री की तुलना में मंत्रिमण्डल का विशेष महत्व होता है। अतः मंत्रिमंडलीय सचिवालय की भूमिका का विशेष महत्व होना स्वभाविक है।

संयुक्त सरकार के सन्दर्भ में प्रधानमन्त्री कार्यालय गोपनीय विचार हेतु प्रधानमन्त्री के लिए एक आरक्षित एवं सुरक्षित स्थान नहीं माना जाता है। अतः सत्ता का हस्तांतरण प्रधानमन्त्री कार्यालय के निवास (PMR) की ओर देखने को मिल रहा है।

आज भारतीय प्रशासन में प्रधानमन्त्री कार्यालय का न केवल महत्व बढ़ा है, बल्कि उसकी अहम भूमिका है। आज यह असाधारण रूप से शक्तिशाली संगठन है, जिससे अनेक विशेषज्ञ सम्बद्ध हैं। प्रधानमन्त्री कार्यालय जो केन्द्रीय सचिवालय संगठनों में सबसे छोटा है, मंत्रिमण्डल सचिवालय से भी बड़ा हो गया है। वस्तुतः प्रधानमन्त्री कार्यालय के सचिव की भूमिका मित्र, मार्गदर्शक और परामर्शदाता जैसी हो तो वह अधिक उपयोगी होगा। लेकिन यदि प्रधानमन्त्री कार्यालय समान्तर सरकार का प्रतिरूप ग्रहण करने का प्रयास करता है, तो उसके प्रशासनिक दृष्टि से लाभकारी परिणाम नहीं होंगे।

प्रधानमन्त्री अपनी पसन्द के किसी भी व्यक्ति को इस पद पर नियुक्त कर सकते हैं और यह पद कार्याकाल पद्धति से मुक्त है। उपसचिव और उसे उपर के पदों पर नियुक्ति मंत्रिमण्डल की नियुक्ति समिति की स्वीकृति से होती है। अवर सचिव और नीचे के पद गृह मंत्रालय द्वारा भरे जाते हैं। पांचवे वेतन आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार प्रधानमन्त्री कार्यालय में वर्तमान समय कुल मिलाकर 483 स्वीकृत पद हैं। साधारणतः प्रधानमन्त्री के पदाधिकारियों का वही स्तर होता है, जो शासन के मंत्रालयों में तदनुरूप श्रेणी के पदाधिकारियों का होता है।

6.5.1 प्रधानमन्त्री कार्यालय के कार्य

साधारणतः प्रधानमन्त्री कार्यालय के क्षेत्राधिकार में वे सभी विषय आते हैं, जो कि व्यक्तिगत विभाग या मंत्रालय को नहीं सौंपे गये हैं। प्रधानमन्त्री कार्यालय की निम्नांकित भूमिकाऐं हैं-

1. प्रधानमन्त्री को सरकार के अध्यक्ष के रूप में या मुख्य कार्यापालिका के रूप में कार्य करते समय प्रधानमन्त्री कार्यालय, प्रधानमन्त्री को सहयोग देता है।
2. यदि कोई प्रशासनिक विषय वस्तु किसी मंत्री को न सौंपी गयी हो, तो उस विषय-वस्तु का कार्यभार प्रधानमन्त्री पर होता है एवं उन विषय वस्तुओं पर प्रधानमन्त्री कार्यालय, प्रधानमन्त्री को सहयोग देता है।

3. प्रधानमन्त्री को योजना आयोग के अध्यक्ष के रूप में उत्तर दायित्व निभाने में सहायता करना।
4. इस कार्यालय के माध्यम से प्रधानमन्त्री अन्य केन्द्रीय मंत्रियों, राष्ट्रपति, राज्यपालों, मुख्यमंत्रियों, राजदूतों आदि से सम्पर्क स्थापित करता है।
5. यदि जनता की कोई शिकायत प्रधानमन्त्री के पास भेजी जाए, तो प्रधानमन्त्री कार्यालय उन शिकायतों का निराकरण सुनिश्चित करता है।
6. प्रधानमन्त्री कार्यालय में संसद में सामान्य विषयों पर पूछे गये प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है, जिन्हें किसी मंत्रालय को नहीं सौपा गया है।
7. प्रधानमन्त्री के आवश्यक रिकार्ड रखना, उनके अतिथियों के स्वागत-सत्कार की व्यवस्था करना तथा प्रधानमन्त्री द्वारा मांगी गयी सूचना प्रदान करना प्रधानमन्त्री कार्यालय के उत्तर दायित्व हैं।
8. प्रधानमन्त्री के आदेश एवं संदेश को मंत्रिमण्डलीय सचिवालय को सूचित करना भी प्रधानमन्त्री कार्यालय का कार्य है। आजकल यह प्रधानमन्त्री के महत्वपूर्ण भाषण तैयार करने, राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था की देख-रेख करने तथा प्रधानमन्त्री के विदेश यात्रा के कार्यक्रम बनाने का भी कार्य करने लगा है।

इसके अतिरिक्त भूकम्प, बाढ़, सूखा आदि के समय या अन्य अवसरों पर प्रधानमन्त्री कोष से राज्यों या व्यक्तियों को जो आर्थिक सहायता पहुँचायी जाती है, उसका लेखा-जोखा भी प्रधानमन्त्री कार्यालय रखता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. केन्द्रीय सचिवालय सेवा का गठन 1951 में किया गया। सत्य/असत्य
2. भारतीय प्रशासनिक सेवा में अवधि प्रणाली 1905 से लार्ड कर्जन के समय शुरू हुई। सत्य/असत्य
3. राजीव गाँधी 1984 में प्रधानमन्त्री नियुक्त किये गये थे। सत्य/असत्य

6.6 सारांश

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि, सचिवालय एक प्रशासनिक परामर्शदात्री निकाय है। वह एक ओर तो नीति निर्धारक, समन्वयकर्ता और नियंत्रक निकाय है, तो दूसरी ओर सरकार का प्रमुख कार्यपालिका निकाय भी है।

इसके साथ ही प्रशासनिक व्यवस्था में मंत्रिमंडलीय सचिवालय का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि प्रधानमन्त्री कार्यालय की स्थापना के बाद इसके महत्व में धीरे-धीरे कुछ कमी अवश्य देखी जा सकती है, फिर भी मंत्रिमंडलीय सचिवालय, सम्बन्धी कार्यों के लिए स्टाफ भुजा के समान है। अतः उसे सरकारी कार्यों का सम्पादन करने हेतु एक सरकारी विभाग मात्र नहीं मान लेना चाहिए।

आज भारतीय प्रशासन में प्रधानमन्त्री कार्यालय का न केवल महत्व बढ़ा है, बल्कि उसकी अहम भूमिका है। आज यह असाधारण रूप से शक्तिशाली संगठन है, जिससे अनेक विशेषज्ञ सम्बद्ध हैं। प्रधानमन्त्री कार्यालय जो केन्द्रीय सचिवालय संगठनों में सबसे छोटा था, अब मंत्रिमंडलीय सचिवालय से भी बड़ा हो गया है। वस्तुतः प्रधानमन्त्री कार्यालय के सचिव की भूमिका मित्र, मार्गदर्शक और परामर्शदाता जैसी हो, तो वह अधिक उपयोगी होगा। लेकिन यदि प्रधानमन्त्री कार्यालय समान्तर सरकार का प्रतिरूप ग्रहण करने का प्रयास करता है, तो उसके प्रशासनिक दृष्टि से लाभकारी परिणाम नहीं होंगे।

6.7 शव्दावली

सचिवालय- सरकार को नीति-निर्माण में सहयोग करने वाला निकाय है। नीति-निर्माण के उपरान्त उसके क्रियान्वयन के सम्बन्ध में प्रमुख कार्यपालिका निकाय है।

प्रधानमन्त्री कार्यालय- प्रधानमन्त्री को उनके कार्यों के सम्पादन में (कार्यपालिका प्रमुख के रूप में) सहयोग करने वाला निकाय है।

मंत्री-मण्डलीय सचिवालय- भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, समितियों के बीच समन्वय स्थापित करने वाला निकाय है।

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य **2.** सत्य **3.** सत्य

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय शासन एवं राजनीति- डॉ0 रूपा मंगलानी।
2. भारतीय सरकार एवं राजनीति- त्रिवेदी एवं राय।
3. भारतीय शासन एवं राजनीति- महेन्द्र प्रताप सिंह।

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा।
2. भारतीय लोक प्रशासन- बी0एल0 फड़िया।

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. केन्द्रीय सचिवालय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।
2. मंत्रिमंडलीय सचिवालय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।
3. प्रधानमन्त्री कार्यालय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिए।

इकाई- 7 राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मंत्री-परिषद

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 राज्यपाल
- 7.2.1 राज्यपाल की नियुक्ति
- 7.2.2 नियुक्ति के लिए अर्हताऐं
- 7.2.3 कार्यकाल एवं पदमुक्ति
- 7.2.4 वेतन एवं भत्ते
- 7.2.5 शक्तियाँ और कार्य
  - 7.2.5.1 प्रशासन सम्बन्धी शक्तियाँ और कार्य
  - 7.2.5.2 विधायन सम्बन्धी शक्तियाँ और कार्य
  - 7.2.5.3 वित्त सम्बन्धी शक्तियाँ और कार्य
  - 7.2.5.4 न्याय सम्बन्धी शक्तियाँ और कार्य
  - 7.2.5.5 विवेक सम्बन्धी शक्तियाँ और कार्य
- 7.2.6 राज्यपाल की स्थिति

7.3 मुख्यमंत्री
- 7.3.1 मुख्यमंत्री की नियुक्ति
- 7.3.2 मुख्यमंत्री के कार्य एवं शक्तियाँ
- 7.3.3 मुख्यमंत्री और मंत्री-परिषद
- 7.3.4 मुख्यमंत्री और विधानमण्डल
- 7.3.5 मुख्यमंत्री और राज्यपाल
- 7.3.6 मुख्यमंत्री की वास्तविक स्थिति

7.4 मंत्री-परिषद
- 7.4.1 संगठन
- 7.4.2 शक्तियाँ, कार्य और उत्तर दायित्व

7.5 सारांश
7.6 शब्दावली
7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.10 निबंधात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

भारत के संविधान द्वारा अपनायी गयी संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत प्रशासन के तीन स्तर हैं- केन्द्रीय प्रशासन, राज्य प्रशासन एवं संघीय प्रशासन। प्रशासन के इन तीनों स्तरों में राज्य वह महत्वपूर्ण कड़ी है, जो स्थानीय शासन को केन्द्रीय प्रशासन से जोड़ने का कार्य करते हैं। भारत के राज्यों में भी संघ की व्यवस्था का ही एक लघु रूप देखने को मिलता है। जिस प्रकार केन्द्र में ससंद होती है, ठीक उसी प्रकार राज्य में विधानमण्डल होता है।

विधानमण्डल में दो सदन होते हैं, पहला- उच्च सदन जो विधान परिषद कहलाता है और दूसरा- निम्न सदन जो विधान सभा कहलाता है। अधिकतर भारतीय राज्यों में निम्न सदन विधान सभा है। विधान सभा का नेता मुख्यमंत्री कहलाता है और वह राज्य का वास्तविक प्रधान होता है। मुख्यमंत्री, मंत्री-परिषद के सहयोग से राज्य का प्रशासन चलाते हैं। अर्थात् राज्य की कार्यकारी निकाय मंत्री-परिषद होती है। मंत्री-परिषद में विधान सभा तथा विधान परिषद के सदस्य ही हो सकते हैं। राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रधान राज्यपाल होता है। राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में ही निहित होती है और राज्य के सभी कार्य राज्यपाल के नाम से किये गये जाते हैं। इस प्रकार एक राज्य के मुख्य स्तम्भों में राज्यपाल, मुख्यमंत्री एवं मंत्री-परिषद होते हैं।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राज्यपाल के कार्यों एवं उसकी स्थिति की विवेचना कर सकेंगे।
- मुख्यमंत्री की नियुक्ति एवं वास्तविक कार्यपालक के रूप में उसके कार्यों की व्याख्या कर सकेंगे।
- मंत्री-परिषद के गठन एवं कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।

7.2 राज्यपाल

हमारे संविधान में परिसंघीय शासन व्यवस्था है, जिसमें कि केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्तियों का बंटवारा किया गया है, अर्थात भारत के राज्यों का प्रशासन केन्द्रीय प्रशासन का प्रतिरूप है। जिस प्रकार से केन्द्र में समस्त कार्य राष्ट्रपति के नाम से किये जाते हैं, उसी प्रकार से राज्यों में कार्यपालिका के समस्त कार्य राज्यपाल के नाम से किये जाते हैं। वस्तुतः राज्यपाल इन कार्यों को मंत्री-परिषद के परामर्श से करता है तथा मंत्री-परिषद का मुखिया राज्य का मुख्यमंत्री होता है। अतः राज्यपाल राज्य की कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान होता है, जबकि मंत्री-परिषद राज्य की कार्यपालिका की वास्तविक प्रधान होती है।

भारत में राज्यपाल का चयन अमेरिका की भॉंति जनता द्वारा निर्वाचन पद्धति से नहीं होता है, बल्कि हमारे यहाँ राज्यपाल, राष्ट्रपति द्वारा नामजद व्यक्ति होता है। ब्रिटिश शासनकाल में प्रान्तीय सरकार चलाने का कार्य गवर्नर करता था। अतः राज्यपाल के लिए गवर्नर शब्द प्रयुक्त होता है। वर्तमान में राज्यपाल के पास ब्रिटिश शासनकाल की भॉंति असीमित शक्तियाँ नहीं हैं, बल्कि अब राज्यपाल का पद राष्ट्रपति की भॉंति केवल नाम मात्र के संवैधानिक प्रमुख का है।

7.2.1 राज्यपाल की नियुक्ति

राज्यपाल पद के सम्बन्ध में संविधान सभा के समक्ष चार विकल्पों पर चर्चा हुई थी-

1. राज्यपाल का सर्वसाधारण जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव किया जाना चाहिये,
2. राज्य विधानमण्डल के निम्न सदन या दोनों सदनों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर राज्यपाल का निर्वाचन किया जाय।
3. निम्न सदन; राज्य की विधान सभा द्वारा चार नामों का सुझाव दिया जाय, जिनमें से किसी एक को राष्ट्रपति के द्वारा राज्यपाल के पद पर नियुक्त किया जाय।
4. राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति की जाय।

इन चारों विकल्पों पर संविधान सभा में बहस के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला गया कि चौथा विकल्प, अर्थात राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर व मुहर सहित आदेशानुसार राज्यपाल को पॉच वर्षों के लिए नियुक्त कर सकता है।

7.2.2 नियुक्ति के लिए अर्हताऐं

संविधान के अनुच्छेद- 157 के अनुसार, किसी भी व्यक्ति को राज्यपाल के रूप में नियुक्ति होने से पूर्व निम्न अर्हताऐं रखनी चाहिये-

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. 35 वर्ष की आयु पूरी का चुका हो
3. संसद या राज्य विधान मण्डलों के किसी सदन का सदस्य न हो।
4. वह किसी लाभ देने वाले सरकारी पद पर कार्यरत न हो।

यदि कोई व्यक्ति राज्यपाल पद पर नियुक्त किया जाता है तथा वह किसी विधानमण्डल का सदस्य है या लोक सेवा में अन्यत्र कार्यरत है तो उसकी राज्यपाल पद पर नियुक्ति होने से पूर्व पद या सदस्यता समाप्त मानी जाती है। संविधान में राज्यपाल हेतु किसी प्रकार की शैक्षणिक या व्यावसायिक योग्यताऐं निर्धारित नहीं की गयी है, किन्तु इस पद की नियुक्ति का निर्णय केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की इच्छा पर निर्भर करता है। सामान्यतः राजनीतिक दलों के नेताओं, मंत्रियों, सांसदों, विधायकों, विशिष्ट योग्यता प्राप्त गैर-राजनीतिक व्यक्तियों तथा शिक्षाविद् इत्यादि को इस पद पर नियुक्त किया जाता रहा है। संविधान के लागू होने के पश्चात राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में एक परम्परा का पालन अवश्य किया जाता रहा है, वह यह है कि भारत में किसी भी राज्य में ऐसे व्यक्ति को राज्यपाल नहीं बनाया जाता है जो उसी राज्य का रहने वाला हो, कुछ एक अपवादों को छोड़कर।

7.2.3 कार्यकाल एवं पदमुक्ति

संविधान के अनुच्छेद-156 के अनुसार राज्यपाल, राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त अपना पद धारण करेगा। सामान्यतया यह कार्यकाल पॉच वर्ष का होता है। वह अपने पद ग्रहण की तारीख से पॉच वर्ष बीत जाने के बाद भी तब तक पद धारण किए रह सकता है, जब तक कि उसका उत्तराधिकारी पद ग्रहण न कर ले। राष्ट्रपति कभी भी राज्यपाल को पदमुक्त कर सकता है। लेकिन राज्यपाल को हटाने के आधार तथा प्रक्रिया का संविधान में कहीं कोई उल्लेख नहीं

है। व्यावहारिक स्थिति यह है कि केन्द्र एवं राज्य में विपरीत राजनीतिक दलों की सरकारें गठित होने पर राज्यपाल हटाये जाते रहे हैं

7.2.4 वेतन एवं भत्ते

राज्यपाल को संसद द्वारा निर्मित विधि द्वारा निर्धारित उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का अधिकार होता है। राज्य; उपलब्धियां, भत्ते और विशेषाधिकार अधिनियम-1982 द्वारा राज्यपाल की उपलब्धियां 5500 रू0 प्रतिमाह निर्धारित की गयी थी। वर्तमान में यह 01 लाख 10 हजार रूपये प्रतिमाह है। इसके अतिरिक्त वह किराया रहित आवास का भी हकदार होता है। राज्यपाल की उपलब्धियां और भत्ते उसके पद की अवधि में नहीं घटाये जा सकते हैं।

7.2.5 शक्तियाँ और कार्य

सुगमता से अध्ययन करने के लिए राज्यपाल की शक्तियों और कार्यों को निम्न शीर्षकों के अधीन रखा जा सकता है-

7.2.5.1 प्रशासन सम्बन्धी शक्तियाँ और कार्य

सबसे पहले हम राज्यपाल की प्रशासकीय शक्तियों का अध्ययन करेंगे जो इस प्रकार हैं-

1. वह राज्य सरकार का प्रशासकीय अध्यक्ष है। राज्य की सारी कार्यपालिका सत्ता उसी के पास है, जिसका प्रयोग वह स्वयं या अपने अधीन अधिकारियों द्वारा करता है। राज्य के समस्त प्रशासकीय कार्य उसी के नाम से किए जाते हैं। वह सरकार की कार्यवाही चलाने तथा अपने मंत्रियों के बीच काम बांटने के बारे में नियम बनाता है।
2. वह मुख्यमंत्री को नियुक्ति करता है तथा उसकी राज्य से अन्य मंत्रियों को नियुक्त करके मंत्री-परिषद बनाता है। वही उनको पद व गोपनीयता की शपथ दिलाता है तथा उनके त्यागपत्र स्वीकार करता है। वह अपनी मंत्री-परिषद भंग कर सकता है।
3. वह उच्च अधिकारियों को नियुक्त करता है। जैसे- राज्य का महाधिवक्ता, लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष व सदस्यगण आदि तथा अपने राज्य के उच्च न्यायालय के जजों की नियुक्ति में राष्ट्रपति को परामर्श देता है।
4. उसे सूचित रहने का अधिकार है, इसलिए मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि राज्य के प्रशासन के बारे में उसे आवश्यक सूचना देता रहे। राज्यपाल इस बारे में मुख्यमंत्री से कोई भी आवश्यक सूचना माँग सकता है। वह मुख्यमंत्री से यह कह सकता है कि अमुक मंत्री का निर्णय मंत्री-परिषद् के विचार के लिए रखा जाय यदि उस पर मंत्री-परिषद ने कोई फैसला नहीं दिया है।
5. वह राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेज सकता है कि राज्य में संवैधानिक तंत्र विफल हो चुका है। इसलिए वह संविधान के अनुच्छेद- 356 के अन्तर्गत राज्य में पूर्ण या अर्द्ध-संकटकाल घोषित करने की सिफारिश कर सकता है। यदि राष्ट्रपति राज्य में संकटकाल की घोषणा कर दे, तब राज्यपाल राष्ट्रपति के दूत के रूप में कार्य करता है और वहाँ का प्रशासन चलाता है।
6. वह राज्य के विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति के रूप में कार्य करता है।

इस तरह संविधान के अनुच्छेद- 154 के अनुसार, राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल के हाथ में होती है। अनुच्छेद- 166 के अनुसार, राज्य प्रशासन को सुविधाजनक ढंग से चलाने के लिए आवश्यक नियमावली राज्यपाल बनाता है। भारत के गवर्नर को उसके कार्य के अनुरूप विभिन्न मॉडलों में प्रस्तुत किया जा सकता है। एक तरफ जहाँ राज्यपाल राज्य प्रमुख के रूप में कार्य करता है, वहीं दूसरी और राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में भी उसे देखा जा सकता है। राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में वह कुछ विशिष्ट संवैधानिक कर्तत्यों का निर्वाह करता है, जिसमें राज्य विधायिका द्वारा पारित विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ स्वीकार करना और राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने से सम्बन्धित प्रतिवेदन राष्ट्रपति को सौंपना।

राज्य के प्रशासनिक प्रमुख के रूप में राज्यपाल को प्रमुख विविध रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है।

औपचारिक या नाममात्र का राज्य प्रमुख, भारतीय संसदात्मक शासन व्यवस्था में जनता के चुने गये प्रतिनिधियों को वास्तविक कार्यपालिका शक्तियाँ दी गयी हैं। संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार राज्यपाल मुख्यमंत्री और उसके मंत्री-परिषद की सलाह से ही अपने कर्तव्यों का निर्वाह करता है और इस प्रकार उसे लगभग पूरी तरह मुख्यमंत्री और उसके दल पर निर्भर रहता है।

विशिष्ट दायित्वों का निर्वाह करने वाले राज्य, प्रमुख के रूप में असम का राज्यपाल, खनन रायल्टी में साझेदारी से सम्बन्धित विवादों पर अपने विवेक का इस्तेमाल करता है तथा इसी प्रकार नागालैंड के राज्यपाल को राज्य में शांति-व्यवस्था कायम करने की विशेष जिम्मेदारी का पालन करना होता है और इन सभी कर्तव्यों को निभाने के लिए मंत्री-परिषद की सलाह लेना उसके लिए अनिवार्य नहीं होता।

एक प्रशासक के रूप में राज्यपाल, राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू होने के बाद राष्ट्रपति की ओर से एक प्रशासक के तौर पर अपना कर्तव्य निभाता है। पूरा मंत्री-परिषद राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल में समाहित हो जाती है। सामान्य परिस्थितियों में भी जब किसी दल को सदन में स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता तब राज्यपाल को मुख्यमंत्री की सलाह स्वीकार करना अनिवार्य नहीं होता। सदन के पटल पर हारे हुए मंख्यमंत्री की बात पर अमल करने या न करने पर निर्णय लेना और राजनीतिक अनिश्चितता के दौर में अनैतिक दबावों से बचते हुए निष्पक्ष निर्णय लेना राज्यपाल का विशेष कर्तत्य होता है। इस तरह वह परिस्थितिवश विवेकाधिकार प्राप्त कर लेता है।

प्रशासक के रूप में अनेक राज्यपालों ने अपना उल्लेखनीय योगदान दिया है। गुजरात के राज्यपाल ने अनूसूचित जनजातियों के आर्थिक अधिकारों को सुनिश्चित करने का अथक प्रयास किया। राज्य के डांग जिले में जनजातियों के अधिकारों को बहाल कराने और वन नीति में आवश्यक सुधार कराने का सफल प्रयास राज्यपाल ने किया। 1985 में आंध्रप्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल के रूप में डॉ0 शंकर दयाल शर्मा ने राज्यपालों के राष्ट्रीय सम्मेलन में केन्द्र सरकार से राज्य के विभिन्न प्रोजेक्टों को स्वीकृत करने की विनती की। जबकि केरल के तत्कालीन राज्यपाल के रूप में बी0 बी0 गिरी ने केरल के वाजिब अधिकारों के लिए योजना आयोग से जबरदस्त विरोध जताया। श्री गिरी ने जबरदस्त विरोध के कारण योजना आयोग को अपने पूर्व निर्धारित निर्णयों को बदलना पड़ा और केरल को अधिक सहायता राशि आवंटित किया गया। इस तरह अनेक ऐसे उदाहरण भारतीय राजनीति के 50 वर्षों के इतिहास में देखे जा सकते हैं, जिसके माध्यम से राज्यपाल की एक ऐसी तस्वीर उभरती है, जिसे देखकर यह कहा जा सकता है कि राज्यपाल के लिए संवैधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत सामान्य परिस्थिति में भी महत्वपूर्ण सकारात्मक भूमिका निभा सकता है। अनुच्छेद- 167 के अन्तर्गत राज्यपाल, प्राप्त अधिकारों का इस्तेमाल करके भी वह अपना प्रभाव प्रशासन पर डाल सकता है। परन्तु कभी-कभी राज्यपाल प्रशासनिक कार्यों में अपनी भूमिका

प्रत्यक्षतः निभाने लगे, तब वह विवाद का विषय बन जाता है। उदाहरणस्वरूप जून, 1967 में धर्मवीर ने पश्चिम बंगाल के राज्यपाल के रूप में राजभवन में जिलाधीशों और पुलिस अधीक्षकों को बुलाकर निर्देश दिया कि इन अधिकारियों को आई0पी0सी0 के प्रावधानों से मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि वे अखिल भारतीय सेवा के पदाधिकारी होते हैं और इन्हें देश के प्रति समर्पण दिखाना है, न कि राज्य के प्रति। राज्यपाल का यह कदम खासा विवाद को जन्म दे गया। 1973 में बिहार के तत्कालीन गर्वनर आर0डी0 भण्डारे द्वारा राज्यमंत्रियों की खुलेआम आलोचना विवाद का कारण बना। इसी तरह उड़ीसा के गवर्नर के रूप में बी0एन0 पाण्डे की भूमिका और आंध्र प्रदेश के तत्कालीन गवर्नर के रूप में कुमूदबेन जोशी की भूमिका खासा विवाद का कारण बनी।

अन्ततः यह समझा जा सकता है कि गवर्नर प्रशासनिक प्रमुख के रूप में जहां जनदबाव मापने का बैरोमीटर हो सकता है, वहीं दूसरी ओर अपने अतार्किक और असंतुलित व्यवहार से तनाव और दबाव का जन्मदाता भी हो सकता है।

7.2.5.2 विधायन सम्बन्धी शक्तियाँ और कार्य

राज्यपाल को विधायन सम्बन्धी शक्तियाँ भी प्राप्त हैं, यद्यपि वह राज्य विधान-मण्डल का सदस्य नहीं है। जिस प्रकार केन्द्र में राष्ट्रपति और संसद है, उसी तरह राज्य में राज्यपाल और विधान-मण्डल है। यद्यपि राज्यपाल विधान-मण्डल का सदस्य नहीं हो सकता, फिर भी वह उसका अभिन्न अंग है। राज्यपाल को विधायन सम्बन्धी अनेक शक्तियाँ प्राप्त हैं-

1. वह विधान-मण्डल का अधिवेशन बुलाता है, उसे स्थगित करता है तथा विधान सभा को भंग कर सकता है।
2. वह विधान सभा में एंग्लो-भारतीय जाति के एक या दो सदस्य मनोनीत कर सकता है, यदि वह यह समझे कि राज्य के लोकप्रिय सदन में इस जाति को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। वह विधान परिषद में विधान सभा की सदस्य संख्या के लगभग 1/6 भाग के बराबर सदस्यों को मनोनीत कर सकता है, जिन्हें विज्ञान, साहित्य, कला कौशल, समाज सेवा या सहकारी आंदोलन में विशेष अनुभव प्राप्त हो।
3. यदि किसी चुनाव-क्षेत्र के मतदाता उसके पास शिकायत भेजें कि विधान-मण्डल के अमुक सदस्य में अमुक अयोग्यता है तो वह चुनाव आयोग की रिपोर्ट मगा कर उस मामले पर अपना निर्णय दे सकता है।
4. वह विधान-मण्डल के एक या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक को सम्बोधित कर सकता है या उनके विचार के लिए संदेश भेज सकता है। आम चुनाव के बाद विधान-मण्डल की पहली बैठक और हर वर्ष की पहली बैठक उसके उद्-घाटन भाषण के बाद अपना काम शुरू करती है।
5. उसे वीटो शक्ति प्राप्त है। राज्य विधान-मण्डल द्वारा पास किए गये बिलों पर वह अपनी अनुमति दे भी सकता है, नहीं भी। यदि धन बिल नहीं है तो उसे पुनः विचार करने के लिए विधान-मण्डल को वापस भेज सकता है। स्पष्ट है कि राज्यपाल धन-विधेयक को नहीं रोक सकता। यदि उसके द्वारा वापस किए गये गैर-धन सम्बन्धी बिल को दूसरी बार विधान-मण्डल ने पास कर दिया, चाहे उसकी सिफारिश मानी गयी या नहीं, तो राज्यपाल उन्हें राष्ट्रपति के विचार के लिए सुरक्षित रखेगा।
6. यदि विधान-मण्डल की बैठक न हो रही हो, तो परिस्थिति की आवश्यकता समझते हुए वह आध्यादेश जारी कर सकता है। अध्यादेश कानून की शक्ति रखेगा। यह राज्य विधान-मण्डल की बैठक शुरू होने से

अधिक 06 सप्ताह तक चल सकेगा, या उसे कानून के रूप में बदला जा सकता है। राज्यपाल अपने अध्यादेश को किसी भी समय वापस ले सकता है।

7. राज्यपाल विभिन्न संस्थाओं, जैसे लोक सेवा आयोग, नियंत्रक व लेखा-जोखा परीक्षक आदि की वार्षिक रिपोर्ट पर विचार करने के लिए उसे विधान-मण्डल में पेश करवाता है।

7.2.5.3 वित्त सम्बन्धी शक्तियाँ और कार्य

वित्त सम्बन्धी राज्यपाल की शक्तियाँ इस प्रकार हैं-

1. राज्यपाल की पूर्व सिफारिश के बिना धन बिल विधान सभा में पेश नहीं किया जा सकता।
2. राज्य का आपातकालीन कोश उनके अधिकाराधीन है और वह आकस्मिक खर्चों को करने के लिए उसमें से अग्रिम भुगतान कर सकता है, जिस पर विधान-मण्डल की स्वीकृति बाद में ली जाएगी।
3. प्रत्येक वित्तीय वर्ष होने से पूर्व वह विधान-मण्डल में सरकारी आय-व्यय का विस्तृत ब्यौरा यानि बजट पेश करवाता है। किसी प्रकार के अनुदान या कर सम्बन्धी प्रस्ताव की माँग सिवाय मंत्रियों के और कोई भी सदस्य नहीं कर सकता जो राज्यपाल के नाम से कार्य करते हैं।

7.2.5.4 न्याय सम्बन्धी शक्तियाँ और कार्य

इस सम्बन्ध में राज्यपाल की शक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

1. वह जिला जजों व अन्य न्यायिक अधिकारियों की नियुक्तियों और पदोन्नति के बारे में मामलों को तय करता है।
2. वह अदालतों द्वारा दण्ड दिए गये अपराधियों को क्षमा कर सकता है, वह उनके दण्ड को घटा भी सकता है, किन्तु यह आवश्यक है कि उस व्यक्ति का अपराध उस कानून के अन्तर्गत आना चाहिए, जो राज्य सरकार की प्रशासकीय क्षमता के भीतर हो।
3. अपने कार्यकाल में उसे अपने विरूद्ध समस्त दीवानी और फौजदारी कानून से सम्बन्धी कार्यवाहियों से वैयक्तिक मुक्ति प्राप्त है।

7.2.5.5 विवेक सम्बन्धी शक्तियाँ और कार्य

राज्यपाल को कुछ विशेष शक्तियाँ भी प्राप्त हैं, जिनके प्रयोग के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह अपने मंत्री-परिषद के परामर्श से काम करे, जैसे-

1. असम के राज्यपाल को आदिम जातियों वाले क्षेत्रों के प्रशासन के सम्बन्ध में विवेक की शक्तियाँ प्राप्त हैं।
2. यदि राष्ट्रपति किसी राज्यपाल को पड़ोसी केन्द्र द्वारा शासित केन्द्र का प्रशासक नियुक्त कर दे, तो वहाँ वह अपनी सत्ता का प्रयोग स्वतंत्र रूप से करेगा।
3. नागालैंड के राज्यपाल को विरोधी नागाओं की हिंसात्मक क्रियाओं से निपटने के लिए विशेष उत्तर दायित्व सौंपे गये हैं। इसी प्रकार, राज्य में शांति व सभी क्षेत्रों के लोगों के सामाजिक व आर्थिक कल्याण के लिए सिक्किम के राज्यपाल को विशेष उत्तरादयित्व दिए गये हैं।
4. वह राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता के बारे में विचार कर सकता है और अपने सुझावों के साथ राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेज सकता है, चाहे उसका मत मुख्यमंत्री के दृष्टिकोण के अनुकूल हो या नहीं।

5. राज्य के विधान-मण्डल के पास होने के बाद वह किसी बिल को राष्ट्रपति के विचारार्थ इस आधार पर सुरक्षित सकता है कि यह केन्द्र के किसी कानून या नीति से टकरा सकता है।
6. यदि केन्द्र व राज्य की सरकारों के बीच अपनी-अपनी प्रशासकीय सत्ता के अधिकार क्षेत्र पर किसी प्रकार का संघर्ष हो तो राज्यपाल अपने विवेकानुसार काम कर सकता है।
7. किसी महत्वपूर्ण विषय पर अध्यादेश जारी करने से पूर्व वह राष्ट्रपति से निर्देश प्राप्त कर सकता है।
8. वह पराजित या अपराजित मुख्यमंत्री की राय पर विधान सभा भंग कर सकता है।

7.2.6 राज्यपाल की स्थिति

राज्यपाल की स्थिति या भूमिका के सम्बन्ध में सामान्य तौर पर परस्पर दो विरोधी दृष्टिकोण प्रचलित रहे हैं। इनमें से प्रथम में राज्यपाल को राज्य का केवल संवैधानिक अध्यक्ष माना गया है और द्वितीय में इस बात पर बल दिया गया है कि राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष की अपेक्षा राज्यपाल बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। राज्यपाल की सही स्थिति जानने के लिए इन दोनों बिन्दुओं को जान लें-

1. **राज्यपाल संविधानिक प्रधान के रूप में-** संविधान द्वारा शासन की शक्तियाँ ऐसी मंत्री-परिषद में निहित होती हैं, जो विधायिका के निम्न सदन के प्रति उत्तर दायी हों। अतः मंत्री-परिषद ही राज्य की प्रधान है और राज्यपाल केवल संवैधानिक प्रधान। संविधान निर्माताओं ने जिस प्रकार से राज्यपाल पद के सम्बन्ध में निर्वाचन के सिद्धान्त को अस्वीकार करके मनोयन के सिद्धान्त को अपनाया गया है, इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे राज्यपाल को एक संवैधानिक अध्यक्ष ही बनाना चाहते थे, वास्तविक नहीं।
2. **संवैधानिक अध्यक्ष से अधिक-** प्रथम दृष्टिकोण में राज्यपाल को एक संवैधानिक प्रधान बताया गया है। लेकिन यदि राज्यपाल की स्थिति का विस्तृत अध्ययन किया जाए, तो यह धारणा खत्म हो जाती है। संविधान सभा के वाद-विवादों के अध्ययन के स्पष्ट होता है कि संविधान निर्माताओं की धारणाओं के अनुसार सामान्य परिस्थितियों में राज्यपाल एक संविधानिक अध्यक्ष के रूप में कार्य करेगा, लेकिन विशेष परिस्थितियों में उसकी भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो सकती है। एम0 वी0 पायली के अनुसार, राज्यपाल मंत्रिमण्डल का सूझबूझ वाला परामर्शदाता है जो राज्य की अशांत राजनीति में शांत वातावरण तैयार कर सकता है। डी0डी0 बसु और एम0सी0 शीतल बार्ड ने अपनी रचनाओं में राज्यपाल की स्वविवेक शक्ति का वर्णन किया है।
3. **मुख्यमंत्री की नियुक्ति-** राज्यपाल राज्य की विधान सभा में किसी एक राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त होने वाले और उसके नेता को ही मुख्यमंत्री नियुक्त करता है। लेकिन यदि राज्य की विधान सभा में दलीय स्थिति स्पष्ट नहीं है या बहुतम वाले दल में नेता पद के लिए एक से अधिक दावेदार हैं, तो इस सम्बन्ध में राज्यपाल स्वविवेक का प्रयोग कर सकता है। ऐसी स्थिति में स्वयं राज्यपाल के द्वारा ही निर्णय किया जायेगा कि किस व्यक्ति को राज्य की मुख्यमंत्री बनाया जाये। भारतीय राजनीति में ऐसे अनेक उदाहरण आये हैं, जब राज्यपाल स्वविवेक से राज्यों में मुख्यमंत्री नियुक्त किये हैं।
4. **मंत्रिमण्डल को भंग करना-** राज्यपाल को यह भी शक्ति प्राप्त है कि वह मंत्री-परिषद को अपदस्थ कर राष्ट्रपति से यह सिफारिश करे कि संबंधित राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाये। इस प्रकार का उदाहरण भारतीय राजनीति में अनेकों बार आया है, जबकि राज्यपाल ने राष्ट्रपति शासन की अनुशंसा

की। 1995 में बहुजन समाज पार्टी द्वारा मुलायम सिंह यादव सरकार से समर्थन ले लेने के बाद मुलायम सिंह समर्थक गुंडागर्दी पर उतर आये। इसके पश्चात राज्य में अराजक स्थिति फैल गयी। राज्यपाल मोतीलाल वोहरा ने मुलायम सिंह यादव को बर्खास्त कर मायावती को मुख्यमंत्री बनाया।

5. **विधान सभा का अधिवेशन बुलाना और भंग करना-** सामान्य रूप से राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श पर विधान सभा का अधिवेशन बुलाता है। किन्तु असाधारण परिस्थितियों में राज्यपाल स्वविवेक से भी अधिवेशन बुला सकता है। राज्यपाल की शक्तियाँ व कार्यों का व्यापक निरूपण यह दिखाता है कि वह राष्ट्रपति की तरह नाममात्र का अध्यक्ष है। इसका कारण इस तथ्य में देखा जाना चाहिए कि दोनों अपने-अपने प्रशासनिक संरचनाओं में नामधारी अध्यक्ष हैं। अतः यह कहा जाता है कि केन्द्र पर संसदीय शासन व्यवस्था में राष्ट्रपति को जो स्थिति प्राप्त है, वही राज्य के शासन में राज्यपाल की है, क्योंकि प्रान्तीय स्तर पर भी संसदीय शासन प्रणाली स्थापित की गयी है।

7.3 मुख्यमंत्री

संविधान के अनुसार भारत में राज्यों के शासन के लिए संसदीय ढाँचे की व्यवस्था की गयी है, यह ढाँचा केन्द्रीय सरकार के समान ही है। जिस प्रकार से केन्द्र में राष्ट्रपति की औपचारिक प्रधान और प्रधानमन्त्री को वास्तविक प्रधान बनाया गया है उसी प्रकार राज्य प्रशासन में राज्यपाल औपचारिक प्रधान एवं मुख्यमंत्री वास्तविक प्रधान होता है। राज्य में मुख्यमंत्री की स्थिति उस राज्य की राजनीतिक स्थिति पर निर्भर करती है। मुख्यमंत्री के व्यक्तित्व एवं उसकी सुदृढ़ राजनीतिक स्थिति पर ही राज्य विशेष का आर्थिक विकास, सामाजिक उन्नति और व्यवस्था निर्भर है। यह सिद्ध हो चुका है कि शक्तिशाली मुख्यमंत्री स्थायी नीतियों का निर्माण करके राज्य के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

7.3.1 मुख्यमंत्री की नियुक्ति

संवैधानिक दृष्टि से मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्य के राज्यपाल करते हैं। मुख्यमंत्री की नियुक्ति करते समय राज्यपाल यह सुनिश्चित करते हैं कि उसे राज्य विधान सभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त होगा अथवा नहीं। जहाँ पर मुख्यमंत्री को पूर्ण बहुमत मिलता है, वहाँ पर राज्यपाल को किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं होती है, परन्तु जब राज्य विधान सभा के चुनावों में किसी भी दल को स्पष्ट बहुतम नहीं मिलता है तो उस समय राज्यपाल स्वविवेक के द्वारा सबसे बड़े दल के मुखिया को सरकार बनाने के लिये आमंत्रित करता है। इस स्थिति में राज्यपाल का स्वविवेक ही मुख्य होता है, क्योंकि चुनाव के पश्चात तमाम दल सत्ता के लालच में गठबन्धन बना लेते हैं। अतः यहाँ पर राज्यपाल, चुनाव पूर्व हुए गठबन्धन के नेता अथवा चुनाव के पश्चात हुए गठबन्धन के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करना है। यदि केन्द्र में और राज्य में एक ही दल होते हैं, तो इस प्रकार की कोई समस्या नहीं होती है क्योंकि, मुख्यमंत्री कौन बनेगा इसका निर्णय सामान्यतया केन्द्र सरकार के लोग ही करते हैं।

7.3.2 मुख्यमंत्री के कार्य एवं शक्तियाँ

मुख्यमंत्री राज्य मंत्री-परिषद का गठन करता है। वह अपने मंत्रिमण्डल के सदस्यों के बीच विभागों का वितरण करता है। मंत्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है। वह मंत्रियों के आपसी विवादों तथा मतभेदों को सुलझाता है। वह विधान सभा का नेता होता है। वह विधान सभा के अध्यक्ष से परामर्श करके विधायी कार्यक्रम

तैयार करता है। उसे यह भी अधिकार है कि राज्यपाल को परामर्श देकर विधान सभा को विघटित करा दे। वह सरकार का प्रमुख प्रवक्ता होता है और राज्य की नीतियों के निर्धारण में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राज्य प्रशासन के महत्वपूर्ण पदों पर जिन व्यक्तियों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा होती है, वस्तुतः उसका चयन मुख्यमंत्री ही करता है। संक्षेप में, मुख्यमंत्री पांच प्रकार के प्रमुख कार्य करता है-

1. मंत्रिमण्डल का अध्यक्ष होने के कारण वह मंत्रिमण्डल का गठन करता है।
2. मंत्रिमण्डल का अध्यक्ष होने के नाते वह मंत्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
3. राज्यपाल को राज्य शासन या व्यवस्थापन सम्बन्धी मंत्रिमण्डल के निर्णयों से अवगत कराता है।
4. कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान होने के कारण उसे समस्त प्रशासन के निरीक्षण का अधिकार प्राप्त है।
5. विधान सभा में शासकीय नीतियों तथा कार्यों की घोषणा और स्पष्टीकरण करने का उत्तर दायित्व मुख्यमंत्री पर ही है। राज्य का पूरा शासनतंत्र उसी के संकेतों पर संचालित होता है। वह राज्य शासन का कप्तान है और राज्य मंत्रिमण्डल में उसकी विशेष स्थिति होती है। उसके कार्यों एवं दायित्यों की दृष्टि से उसे प्रधानमन्त्री का लघु रूप कहा जा सकता है।

7.3.3 मुख्यमंत्री और मंत्री-परिषद

मुख्यमंत्री के परामर्श से ही राज्यपाल द्वारा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति की जाती है। मंत्री-परिषद में विभागों का वितरण करना, मंत्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करना, किसी भी मन्त्री से उसके विभाग की सूचना प्रेषित करने को कहना, मन्त्रियों के आपसी मतभेदों तथा विवादों को सुलझाना, इत्यादि सभी कार्य मुख्यमंत्री के ही हैं। मुख्यमंत्री मंत्री-परिषद का नेता होता है। यदि किसी मन्त्री से उसका मतभेद हो जाता है, तो उस मन्त्री को त्यागपत्र देना पड़ता है। मुख्यमंत्री के त्यागपत्र देने पर पूरी मंत्री-परिषद ही भंग हो जाती है।

भारत में राजनीतिक आचरण में यह सिद्ध हो चुका है कि मत्री-परिषद के निर्माण में मुख्यमंत्री को अनेक तरह के दबावों में निर्णय करना होता है और संविद मंत्रिमण्डल के समय में मुख्यमंत्री को संविद के निर्माणकारी दलों के दबाव में सन्तुलित कार्य करते हुए मंत्रिमण्डल का निर्माण करना पड़ता था। कांग्रेस दल के मुख्यमंत्री को प्रधानमन्त्री और हाईकमान के मार्ग-निर्देशन में ही कार्य करना पड़ता है। सन् 1971 के पश्चात अधिकांश मुख्यमंत्रियों ने हाईकमान की मन्त्रणा से ही राज्य मंत्रिमण्डल का गठन किया है। राज्य मंत्रिमण्डल लघु बनाये जायें या बड़े, उसका कब विस्तार किया जाये, आदि निर्णय भी हाईकमान के हाथों में ही केन्द्रित हो गये हैं।

7.3.4 मुख्यमंत्री और विधान-मण्डल

मुख्यमन्त्री बहुमत दल के नेता के रूप में राज्य विधान सभा का भी नेतृत्व करता है। वह विधान सभा के प्रति उत्तर दायी है और विधान सभा अविश्वास प्रस्ताव के द्वारा उसे अपदस्थ कर सकती है। विधान सभा में सरकार की नीति से सम्बन्धित अधिकृत भाषण मुख्यमंत्री का ही होता है। राज्य विधान सभा में विधि-निर्माण की कार्यवाही के संचालन में भी मुख्यमंत्री की प्रभावशाली भूमिका रहती है। उसे यह भी अधिकार है कि राज्यपाल को सलाह देकर विधान सभा को भंग करा दे। मार्च 1971 में तमिलनाडु के मुख्यमन्त्री ने राज्यपाल से अनुरोध कर विधान सभा को भंग करवाया। 21 जनवरी, 1972 को हरियाणा के मुख्यमंत्री बंशीलाल ने राज्यपाल से निवेदन कर विधान सभा भंग करवायी। सन् 1972 में श्रीमती नन्दिनी सत्पथी के परामर्श से ही राज्यपाल ने उड़ीसा विधान सभा को भंग किया। सन् 1984 में मुख्यमन्त्री रामकृष्ण हेगड़े के परामर्श से ही राज्यपाल ने कर्नाटक विधान सभा को भंग किया

था। मार्च 1992 में मुख्यमंत्री वामूजो के परामर्श से ही राज्यपाल एम0एम0 थामस ने नागालैण्ड विधान सभा को भंग किया। अनेक मुख्यमन्त्रियों ने अपने इस अधिकार का प्रयोग समय-समय पर किया है।

7.3.5 मुख्यमंत्री और राज्यपाल

मुख्यमंत्री, मंत्री-परिषद और राज्यपाल के बीच की कड़ी है। संविधान के अनुच्छेद-167 के अनुसार राज्य के मुख्यमंत्री का कर्तव्य है कि राज्य के प्रशासन से सम्बन्धित मंत्री-परिषद के सभी निर्णयों और व्यवस्थापन के प्रस्तावों की सूचना राज्यपाल को दे। मंत्री-परिषद द्वारा एक बार निर्णय लेने पर सामान्यतया राज्यपाल उसे स्वीकार करने के लिए बाध्य होता है, किन्तु कतिपय परिस्थितियों में राज्यपाल मंत्री-परिषद के बिना ही कार्य कर सकता है। उदाहरण के लिए, राज्य में संवैधानिक व्यवस्था की विफलता की स्थिति में राज्यपाल संकटकाल की घोषणा किये जाने पर विवेक का आधार पर कार्य कर सकता है।

यह भी परम्परा स्थापित हो गयी है कि राज्यपालों की नियुक्ति करते समय सम्बन्धित राज्य के मुख्यमंत्री से परामर्श किया जाये। चतुर्थ जन निर्वाचन से पूर्व इस परम्परा का पालन हुआ था, किन्तु संविद सरकारों के मुख्यमंत्रियों ने यह आरोप लगाया था कि उनके राज्य में राज्यपाल की नियुक्ति करते समय उनसे परामर्श नहीं किया गया। बिहार में श्री नित्यानन्द कानूनगो की नियुक्ति के समय मुख्यमन्त्री श्री महामाया प्रसाद से एवं उत्तर प्रदेश में डॉ0 बी0 गोपाल रेड्डी की राज्यपाल पद पर नियुक्ति के समय मुख्यमन्त्री श्री चरणसिंह से परामर्श नहीं लिया गया।

अक्टूबर 1983 में पं0 बंगाल के राज्यपाल बी0डी0 पाण्डे का पंजाब में स्थानान्तरण कर दिया गया। पं0 बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु श्रीनगर में थे और केन्द्रीय गृहमंत्री प्रकाश चन्द्र सेठी ने टेलीफोन से बसु को इस निर्णय की सूचना दी। मुख्यमंत्री बसु ने उनके राज्य के राज्यपाल को स्थानान्तरित एवं नये राज्यपाल की नियुक्ति के पूर्व उनसे परामर्श न किये जाने के सामान्य शिष्टाचार का पालन न करने की शिकायत की थी।

7.3.6 मुख्यमंत्री की वास्तविक स्थिति

यदि स्वाधीन भारत के मुख्यमंत्रियों की भूमिका का वर्गीकरण किया जाये तो उनकी पॉच श्रेणियॉ बनायी जा सकती हैं-

1. **शक्तिशाली मुख्यमंत्री-** प्रथम श्रेणी में उन मुख्यमंत्रियों को रखा जा सकता है, जो शक्तिशाली एवं प्रभावशाली राज्य नेता थे। ऐसे मुख्यमंत्रियों का केन्द्रीय सरकार व हाईकमान पर पर्याप्त प्रभाव था। वे विधान मण्डल के नेता और राज्य की जनता में लोकप्रिय रहे हैं। उन्हें 'किंग मेकर्स' कहा जा सकता है। श्री नेहरू और श्री शास्त्री जी के देहान्त के उपरानत उनके उत्तराधिकारी के चयन के मामले पर जो तोड़-मोड़ हुई, उनमें शक्तिशाली मुख्यमंत्रियों की उपक्रमिक भूमिका रही। इस श्रेणी में डॉ0 बी0सी0 राय, श्री गोविन्द बल्लभ पन्त, श्री रविशंकर शुक्ल, श्री कृष्ण सिन्हा, श्री मोरारजी देसाई, श्री कामराज, श्री चन्द्रभानु गुप्त, श्री मोहनलाल सुखाड़िया तथा श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र, सुश्री मायावती आदि, जैसे मुख्यमंत्री को रखा जा सकता है।
2. **विवादास्पद मुख्यमंत्री-** द्वितीय श्रेणी में वे सभी मुख्यमंत्री आते हैं, जिनका व्यक्तिव विवादास्पद कहा जा सकता है, जिस पर भ्रष्टाचार के अनेक आरोप लगाये गये। श्री प्रताप सिंह कैरो, श्री बीजू पटनायक, श्री करूणानिधि, श्री कृष्ण वल्लभ पन्त सहाय, श्री बंसीलाल, श्री मुलायम सिंह यादव, श्री लालू प्रसाद यादव, सुश्री जयललिता, आदि ऐसे ही मुख्यमंत्री कहे जा सकते हैं। श्री अब्दुल रहमान अन्तुले, श्री

जगन्नाथ मिश्र, श्री भजनलाल, आदि को भी विवादास्पद मुख्यमंत्री कहा जाता है। इनमें से अधिकांश के विरूद्ध जाँच आयोग भी बैठाये गये, ताकि उनके आरोपों की जाँच की जा सके।

3. **घटकों की शक्ति पर टिके मुख्यमंत्री-** जनता पार्टी की शक्ति का आधार उनके घटक दलों की संख्या बल था। भैरोसिंह शेखावत और वीरेन्द्र कुमार सकलेवा टिके रहे, क्योंकि इनके राज्यों में जनसंघ घटक का स्पष्ट बहुमत था। रामनरेश यादव, कर्पूरी ठाकुर और देवीलाल को हटना पड़ा, क्योंकि इनके घटकों को राज्य विधान सभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं था।
4. **केन्द्रीय सरकार के दूत की भमिका वाले मुख्यमंत्री-** कतिपय ऐसे व्यक्ति भी मुख्यमंत्री रहे हैं, जिनकी जड़ें राज्य की राजनीति में न होकर हाईकमान के विश्वास और सहानुभूति पर टिकी रहती हैं। इस श्रेणी में श्री प्रकाश चन्द्र सेठी, श्री अब्दुल गफूर, श्री घनश्याम ओझा, श्री जगन्नाथ पहाड़िया, श्री अर्जुन सिंह आदि को लिया जा सकता है।
5. **दुर्बल मुख्यमंत्री-** संविद सरकारों के युग में कार्य करने वाले मुख्यमंत्री को अत्यन्त निर्बल मुख्यमंत्री कहा जा सकता है। उत्तर प्रदेश में श्री चरण सिंह, मध्य प्रदेश में श्री गोविन्द नारायण सिंह, बंगाल के श्री अजय मुखर्जी, आदि ऐसे ही कठपुतली मुख्यमंत्री कहे जा सकते हैं। ऐसे मुख्यमंत्री की परवाह न तो मन्त्रीगण करते हैं, न विधान सभा और न राज्यपाल ही। ऐसे मुख्यमंत्री का कार्य एक 'पोस्टमैन' से अधिक नहीं हो सकता। यह बात सर्वविदित है कि संविद मुख्यमंत्री के काल में नौकरशाही के प्रभाव तथा दबाव में भी बेजोड़ रूप में वृद्धि हुई।

सत्ता की राजनीति में मुख्यमंत्री की स्थिति राजनीतिक उतार-चढ़ाव के साथ बदलती रही है। एक समय था जब मुख्यमंत्री शक्ति के पुंज थे, किन्तु कुछ समय से मुख्यमंत्री के पद का लगातार अवमूल्यन हो रहा है। संविद सरकारों के काल में तो मुख्यमंत्री एकदम अशक्त ही बन गये। संविद सरकारें अधिक टिकाऊ नहीं थी। और मुख्यमंत्री का अधिकांश समय अपने अस्तित्व की सुरक्षा में ही व्यतीत हो जाता था। इससे राज्यों में प्रशासनिक शून्यता का वातावरण फैला। सन् 1971 के पश्चात अधिकांश मुख्यमंत्री, हाईकमान के संरक्षण में ही पल्लवित एवं पोषित हुए हैं। अतः इस पद की संस्थागत स्वायत्तताः समाप्त हो गयी है।

मुख्यमंत्री की स्थिति तीन बातों पर निर्भर करती है, प्रथम- उसे किस सीमा तक केन्द्रीय नेताओं का संरक्षण एवं सहयोग प्राप्त है? द्वितीय- राज्य की गुटबाजी की राजनीति में उसका गुट कितना सशक्त है? तृतीय- राज्य विधान सभा में उसकी क्या स्थिति है और राज्य के विकासात्मक कार्यों को क्रियान्वित करने में उसकी कितनी अभिरूचि है?

मुख्यमंत्री का पद बहुत कुछ उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। यदि राज्यपाल दुर्बल व्यक्तित्व वाला है और विधान सभा में मुख्यमंत्री के दल को पर्याप्त बहुमत प्राप्त है और दल में उसकी स्थिति सुदृढ़ है तो मुख्यमंत्री की शक्तियों में स्वतः वृद्धि हो जाती है। वर्तमान में राज्यों में एकदलीय प्रभुत्व के बावजूद भी गुटीय राजनीति की जो प्रवृत्तियां उभरी हैं, उसमें कोई भी मुख्यमंत्री अपनी स्थिति के प्रति आस्वस्त नहीं रह सकता।

7.4 मंत्री-परिषद

हमारे संविधान के अनुसार, मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक मंत्री-परिषद होगी, जो राज्यपाल को सहायता व परामर्श देगी। राज्यपाल द्वारा स्वविवेक से किये गयें कार्यों के अतिरिक्त अन्य शासन सम्बन्धी कार्यों में मंत्री-परिषद उसे मन्त्रणा देती है।

7.4.1 संगठन

राज्य मंत्री-परिषद का मुखिया मुख्यमंत्री होता है। मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करता है, जबकि मंत्रिमण्डल के अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राज्यपाल, मुख्यमंत्री के सलाह के पश्चात करता है। वास्तव में मुख्यमंत्री अपने सहयोगियों की सूची तैयार करता है और उसको राज्यपाल को देता है, इसके पश्चात राज्यपाल सारे मंत्रियों को पद व गोपनीयता की शपथ दिलाता है। संवैधानिक शब्दों में मुख्यमंत्री और मंत्री-परिषद के सदस्य राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त ही अपने पद पर पदासीन रहते हैं। मंत्री-परिषद में मुख्यतः तीन प्रकार के मंत्री होते हैं। कैबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री, उपमंत्री। यह मुख्यमंत्री का विवेक होता है कि किस व्यक्ति को किस प्रकार के मंत्री पद का दायित्व सौंपना है। सामान्यतः यह राजनीतिक परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है। यदि सरकार साझा सरकार होती है, तो सहयोगी दलों का हस्तक्षेप मंत्री-परिषद बनाने में रहता है और यदि मुख्यमंत्री पूर्ण बहुमत से सरकार में होता है, तो वह अपनी मर्जी से मंत्री-परिषद के सदस्यों का चुनाव करता है। मंत्री-परिषद में किसी ऐसे व्यक्ति को भी मंत्री बनाया जा सकता है, जो राज्य विधान-मण्डल के किसी भी सदन का सदस्य न हो। नियमानुसार मन्त्रियों को 06 मास की अवधि के भीतर ही उसे विधान-मण्डल के किसी भी सदन का सदस्य बन जाना आवश्यक है, अन्यथा उन्हें अपना पद छोड़ना पड़ेगा।

7.4.2 शक्तियाँ, कार्य और उत्तर दायित्व

मुख्यमंत्री या उसकी मंत्री-परिषद ही राज्य प्रशासन में वास्तविक कार्यपालिका है। मंत्री-परिषद के कार्यों की गणना इस प्रकार की जा सकती है-

1. यह राज्य प्रशासन के लिए नीति का निर्माण करता है, जिसके अनुसार राज्य के कानून तथा राष्ट्रपति द्वारा प्रेषित निर्देश लागू किये जाते हैं।
2. यह लोक सेवकों की भर्ती सम्बन्धी नीति के बारे में प्रस्तावों पर विचार करता है और उसकी सलाह के अनुसार उनकी नियुक्ति के लिए नियम जारी करता है। यह राज्यपाल को महत्वपूर्ण नियुक्तियों; जैसे राज्य के लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यगण, राज्य का महान्यायवादी आदि के बारे में परामर्श देता है।
3. यह विधायन के प्रस्तावों पर विचार करता है तथा उन्हें बिल का रूप देकर विधान-मण्डल में पेश करता है, अन्यथा यह सरकार की पराजय समझी जाएगी। यदि असाधारण परिस्थिति उत्पन्न हो जाए तथा विधान-मण्डल का अधिवेशन न हो रहा हो तो यह राज्यपाल को परामर्श देकर अध्यादेश जारी करा सकता है, जिसमें कानून का बल होता है।
4. यह राज्य सरकार की वार्षिक आय-व्यय का ब्यौरा अर्थात बजट तैयार करता है और फिर राज्यपाल की सिफारिश के साथ उसे विधान सभा में पेश करता है। बजट को विधान-मण्डल का समर्थन प्राप्त होना चाहिए अन्यथा इसे सरकार के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव माना जाएगा।

5. यह तय करता है कि, विधान-मण्डल का अधिवेशन बुलाने व स्थगित करने या विधान सभा को भंग करने के बारे में राज्यपाल को क्या परामर्श दिया जाऐ। यह राज्यपाल द्वारा विधान-मण्डल में दिये जाने वाले उद्-घाटन भाषण का मसविदा तैयार करती है।
6. यह अनेकों मामलों पर विचार करता है व निर्णय लेता है। जैसे- लोक-सेवकों की सेवा सम्बन्ध नियम, अनुसूचित जातियों व वर्गों के लिए स्थानों का आरक्षण, लोक-सेवा आयोग की रिपोर्ट, राज्य के आकार बदलने से सम्बन्धी केन्द्र का प्रस्ताव पर विचार, कुछ व्यक्तियों के खिलाफ चलते हुए मुकदमे वापस लेना, जाँच, किसी आयोग की नियुक्ति व उसकी रिपोर्ट पर कार्यवाही करना, इत्यादि।
7. चूंकि राज्यों के स्तर पर भी संसदीय शासन-प्रणाली अपनायी गयी है, मुख्यमंत्री के अधीन मंत्री-परिषद, विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से और व्यक्तिगत तौर पर राज्यपाल के प्रति उत्तर दायी है, क्योंकि मंत्रीगण राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष की प्रसन्नताकाल में ही पदासीन रह सकते हैं। विधान सभा के सदस्य मंत्री-परिषद से प्रश्न पूछ सके हैं, जिनका संतोषजनक उत्तर मिलना चाहिए। यदि सरकारी बिल गिर जाए, या बजट में कटौती कर दी जाए, या सरकारी नीति को सदन का समर्थन प्राप्त न हो सके या विधान सभा अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे तो मंत्री-परिषद को त्यागपत्र देना पड़ेगा। राज्यपाल नई सरकार बनाने का प्रयास करेगा या भारत सरकार को सुझाव देगा कि संविधान के अनुच्छेद- 356 के अनुसार आपातकाल की घोषणा लागू कर दे, जिससे राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सके।

जो बात हमारा ध्यान विशेषरूप से आकृष्ट करती है वह यह है कि राज्य की सरकार केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तर दायी है। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि राज्य की सरकारें केन्द्र की कानून तथा राष्ट्रपति द्वारा प्रेषित निर्देषों को निष्ठा के साथ लागू करने पर बाध्य हैं। यदि केन्द्र सरकार किसी राज्य के आचरण से संतुष्ट न हो, तो वह अपनी ओर से या राज्य के राज्यपाल की रिपोर्ट पर अनुच्छेद- 356 का प्रयोग करके वहाँ की सरकार को अपदस्थ कर सकता है। इसके अलावा, यह केन्द्र की इच्छा पर निर्भर है कि वह पूरी तरह राज्य की सरकार को भंग कर दे या उसे स्थगित संप्राणता की स्थिति में रखे। क्योंकि अनुच्छेद-356 का प्रयोग दलगत राजनीति के दाव-पेंच को देखते हुए किया जाता है। इसीलिए एक उचित ढंग से निर्मित राज्य को केन्द्रीय सरकार अपने शत्रुतापूर्ण भाव से किसी भी समय समाप्त कर सकती है या अपने मित्रतापूर्ण व्यवहार को देखते हुए किसी विफल राज्य सरकार को क्षमा-दान भी कर सकती है। इससे विदित होता है कि राज्य का मंत्री-परिषद अन्तिम रूप से केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तर दायी है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद का दुरूपयोग बहुत हुआ है ?
2. मन्त्रियों को 06 मास की अवधि के भीतर ही उसे विधामण्डल के किसी भी सदन का सदस्य बन जाना आवश्यक है, अन्यथा उन्हें अपना पद छोड़ना पड़ेगा। सत्य/असत्य
3. संवैधानिक दृष्टि से मुख्यमंत्री की नियुक्ति उस राज्य के राज्यपाल करते हैं। सत्य/असत्य
4. राज्यपाल राज्य का संवैधानिक प्रधान होता है। सत्य/असत्य

7.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें यह जानने को मिला कि, जिस प्रकार से एक पहिये पर गाड़ी नहीं चल सकती, उसी प्रकार से राज्य प्रशासन बगैर राज्यपाल एवं मंत्री-परिषद के नहीं चल सकता है। भले ही राज्यपाल नाममात्र का प्रधान हो, किन्तु राज्य प्रशासन में मुख्यमंत्री एवं मंत्री-परिषद की गतिविधियों को नियंत्रित करना भी अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि मुख्यमंत्री एवं मंत्री-परिषद किसी पार्टी विशेष के एजेन्डे के तहत राज्य प्रशासन को अपने हित में चला सकते हैं। राज्यपाल का यह कर्तव्य है कि वह राज्य प्रशासन संविधान की आशा के अनूरूप चलाये। अतः राज्य के प्रशासन के लिए दोनों ही आवश्यक अंग हैं।

7.6 शब्दावली

मंत्री-मण्डल- कैबिनेट स्तर के मंत्रियों का समूह।
मंत्री-परिषद - समस्त प्रकार के मंत्रियों का समूह।
कैबिनेट मंत्री- शासन में सर्वोच्च स्तर के मत्री।

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अनुच्छेद 356, **2.** सत्य, **3.** सत्य, **4.** सत्य

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत का संविधान, ब्रज किशोर शर्मा, 2008, प्रेटिंस हाल आफ इंडिया प्राइवेट लि0, नई दिल्ली।
2. भारत में लोक प्रशासन, डॉ0 बी0एल0 फाड़िया, 2002, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
3. भारतीय प्रशासन, प्रो0 मधू सूदन त्रिपाठी, 2008, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
4. इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन, डॉ0 बी0एल0 फाड़िया, डॉ0 कुलदीप फाड़िया, 2007, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

7.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन, अवस्थी एवं अवस्थी, 2009, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. इंडियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, रमेश अरोड़ा, रजनी गोयल, 2001, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. भारत का संविधान, डॉ0 जी0 एस0 पाण्डेय, 2001, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर।

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. राज्यपाल की शक्तियों का वर्णन कीजिये।
2. राज्य प्रशासन में मुख्यमंत्री की भूमिका का परीक्षण कीजिये।
3. मंत्री-परिषद के गठन एवं कार्यों का वर्णन कीजिये।

इकाई- 8 राज्य सचिवालय, मुख्य सचिव

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 राज्य सचिवालय
    8.2.1 सचिवालय की उपयोगिता
    8.2.2 संगठन
    8.2.3 सचिवालय का संगठनात्मक ढ़ाँचा
    8.2.4 राज्य सचिवालय के कार्य
    8.2.5 राज्य सचिवालय की कार्य प्रणाली
    8.2.6 राज्य सचिवालय की समस्याऐं
8.3 मुख्य सचिव
    8.3.1 मुख्य सचिव पद का उदय
    8.3.2 मुख्य सचिव का चयन
    8.3.3 राज्य प्रशासन में मुख्य सचिव के कार्य
    8.3.4 मुख्य सचिव की भूमिका
8.4 सारांश
8.5 शब्दावली
8.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.9 निबंधात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

भारत में राज्यों के शासन के लिए संसदीय ढाँचे को अपनाया गया है, राज्यों का प्रशासन संघीय शासन का प्रतिरूप है। राज्य प्रशासन में शीर्ष पर राज्यपाल और मंत्री-परिषद हैं। राज्यपाल औपचारिक कार्यकारी और मंत्री-परिषद वास्तविक कार्यकारी है। मंत्री-परिषद को प्रशासन में सहायता प्रदान करने के लिये राज्यों में संघीय प्रशासन के समान मंत्रिमण्डल समितियां और सचिवालय है। राज्य सचिवालय विभिन्न विभागों में विभक्त होता है, जिसका राजनीतिक प्रमुख, मंत्री और प्रशासनिक प्रमुख, सचिव होते हैं।

शासन द्वारा निर्मित कानूनों को क्रियान्वित करने, नीतियों तथा योजनाओं को यथार्थ धरातल पर लागू करने एवं विकास और कल्याण कार्यों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए लोक सेवकों की विशाल संख्या कार्यरत रहती है। ये सभी लोक सेवक प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सचिवालय के अधीन कार्य करते हैं। सचिवालय ही पूरे प्रदेश में नीति-निर्माण की भूमिका का निर्वहन करता है।

राज्य सचिवालय का प्रमुख, मुख्य सचिव कहलाता है। सामान्यतः यह प्रदेश के आई0ए0एस0 संवर्ग का सबसे वरिष्ठ अधिकारी होता हैं। मुख्य सचिव का मुख्य कार्य, नीति-निर्माण एवं उसके क्रियान्वयन को सुनिश्चित करना है।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- राज्य सचिवालय के गठन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- राज्य सचिवालय की संरचना की विवेचना कर सकेंगे।
- राज्य सचिवालय के कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।
- मुख्य सचिव के कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।
- प्रशासन में मुख्य सचिव की भूमिका का परीक्षण कर सकेंगे।

8.2 राज्य सचिवालय

हमारे देश में सचिवालय की व्यवस्था ब्रिटिश शासन-तन्त्र की विरासत है। जिस प्रकार से केन्द्र सरकार के समस्त मंत्रालयों एवं विभागों का सामूहिक रूप केन्द्रीय सचिवालय कहलाता है, उसी प्रकार राज्य सरकार के समस्त विभाग सम्मिलित रूप से राज्य सचिवालय के नाम से जाने जाते हैं। एक विभाग का राजनीतिक मुखिया, मंत्री तथा प्रशासनिक मुखिया सचिव कहलाता है। सामान्यतः राजनीतिक मंत्रियों के पास प्रशासनिक अनुभव की कमी होती है, उनके इस अनुभव की कमी को प्रशासनतंत्र में कार्यरत कार्मिक पूरी करते हैं। इसके साथ ही सचिवालय प्रशासन में निरन्तरता प्रदान करते हैं। मंत्री तथा सचिव तो आते-जाते रहते हैं, किन्तु सचिवालय सदैव रहता है और प्रशासन की निरन्तरता की बनाये रखता है।

8.2.1 सचिवालय की उपयोगिता

सचिवालय की उपयोगिता को निम्नलिखित आधारों पर समझाया जा सकता है-

1. मंत्रियों को सामान्यतः प्रशासन का अनुभव नहीं होता है। शासन के संचालन में सचिवालय के अधिकारी उनकी सहायता करते हैं।
2. मंत्रीगण समयाभाव के कारण प्रशासनिक कार्यों का संचालन समय से नहीं कर पाते हैं। यह कार्य सचिवालय के अधिकारी निष्पादित करते हैं।
3. सचिवालय एक स्थायी व्यवस्था होती है, जो कि सरकारों के पतन के पश्चात भी प्रशासन को निर्बाध गति से चलाती है।
4. नीति निर्माण, नियोजन, अनुश्रवण एवं मूल्यांकन में सचिवालय मुख्य कार्यकारी की भूमिका का निर्वहन करता है।

8.2.2 संगठन

संविधान के अनुच्छेद- 154(i) के द्वारा राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित की गयी है। जिसका प्रयोग वह अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से करता है। वस्तुतः राज्य का मुख्यमंत्री उसकी मंत्री-परिषद तथा सचिवालय एवं अन्य कार्यालयों के अधिकारी राज्यपाल की शक्तियों का व्यावहारिक प्रयोग करते हैं। इस प्रकार राज्य प्रशासन का वास्तविक मुखिया मुख्यमंत्री होता है, जो सचिवालय का भी नियंत्रणकर्ता होता है। यह राज्य सरकार की समस्त शक्तियों का केन्द्र-बिन्दु होता है।

शासन सचिवालय, किसी एक विभाग या कार्यालय का नाम नहीं है, अपितु यह राज्य सरकार के समस्त विभागों का शीर्ष स्तर पर सामूहिक नाम है। प्रत्येक राज्य के सचिवालय में विभागों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है।

विभागों की संख्या का निर्धारण राज्य का मंत्रिमण्डल करता है। वर्तमान में बड़े राज्यों में सामान्यतः 50 से ऊपर विभाग होते हैं। अधिकांश राज्यों में सामान्यतः निम्नलिखित विभाग होते हैं- सामान्य प्रशासन, गृह, राजस्व, खाद्य और कृषि योजना, पंचायती राज, ग्राम्य विकास, वित्त, विधि, सार्वजनिक निर्माण, शिक्षा, उद्योग, ऊर्जा, सिंचाई, सहकारिता, यातायात, स्थानीय शासन, कारागार, श्रम और रोजगार, आबकारी और कर आदि। इसके अतिरिक्त कुछ विभाग किसी राज्य विशेष को आवश्यकता के अनुसार बनाये और समाप्त किये जा सकते हैं। सचिवालय के किसी प्रशासनिक विभाग के अधीन अधीनस्थ कार्यालयों की संख्या उस विभाग के कार्यों एवं प्रकृति पर निर्भर करती है।

8.2.3 सचिवालय का संगठनात्मक ढ़ाँचा

राजनीतिक स्तर	प्रशासनिक स्तर पर
• मुख्यमंत्री • कैबिनेट मंत्री • राज्य मंत्री; स्वतंत्र प्रभार/राज्य मंत्री • उप-मन्त्री	• मुख्य सचिव • अपर मुख्य सचिव/ ए0पी0सी0 • प्रमुख सचिव/ सचिव • विशेष सचिव • संयुक्त सचिव • उप-सचिव • अनुभाग अधिकारी • यू0डी0ए0 • एल0डी0ए0

संगठनात्मक दृष्टि से राज्य सचिवालय का मुखिया मुख्यमंत्री होता है, क्योंकि वह मंत्री-परिषद का अध्यक्ष भी होता है। सचिवालय के समस्त विभाग किसी कैबिनेट मंत्री अथवा राज्यमंत्री; स्वतंत्र प्रभार के अधीन होते हैं। बड़े विभागों में कैबिनेट मंत्री के अधीन राज्य मंत्री भी होते हैं। कई बार एक मंत्री को एक से ज्यादा विभागों का मंत्री भी बनाया जाता है।

प्रशासनिक स्तर पर सचिवालय का मुख्य अधिकारी मुख्य सचिव होता है। प्रत्येक विभाग का मुख्य अधिकारी शासन सचिव या प्रमुख शासन सचिव होता है। इस पद पर भारतीय प्रशासनिक सेवाओं का 'सुपर टाइम स्केल' का अधिकारी आसीन होता है। सचिव के अधीन विशेष सचिव अथवा अतिरिक्त सचिव होता है। विशेष सचिव के अधीन संयुक्त सचिव होता है, जो कि सामान्यतः राज्य प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारी होते हैं। संयुक्त सचिव के अधीन उप-सचिव, अनुभाग अधिकारी तथा यू0डी0ए0 एवं एल0डी0ए0 तैनात होते हैं। यह सभी अधिकारी सामान्यतः राज्य सचिवालय सेवा के होते हैं।

8.2.4 राज्य सचिवालय के कार्य

राज्य प्रशासन की सर्वोच्च प्रशासनिक संस्था होने के कारण नीति एवं कानून निर्माण तथा अधीनस्थ संस्थाओं पर नियंत्रण का कार्य सचिवालय ही करता है। यहाँ सचिवालय के कार्यों से तात्पर्य सम्पूर्ण सविचालयी व्यवस्था या राज्य सरकार के किसी एक विभाग के कार्यों से है, क्योंकि सामान्य कार्य सभी विभागों में एक समान हैं, जबकि विशिष्ट कार्य विभागानुसार पृथक प्रकृति के हो सकते हैं। उदाहरणस्वरूप गृह विभाग के कार्यों में शांति एवं

व्यवस्था बनाये रखना प्रमुख है, अतः पुलिस अधिकारियों तथा नियामकीय प्रवृत्तियों का बोलबाला रहता है, जबकि समाज कल्याण विभाग का कार्य निराश्रित एवं निर्योग्य व्यक्तियों को कल्याणकारी सेवाऐं उपलब्ध करवाना है। अतः यहाँ मानवीय संवेदनाएँ महत्वपूर्ण हो जाती हैं। लेकिन भारतीय प्रशासनिक-तंत्र की कार्यशैली में विभागीय आधार पर व्यापक स्तर पर अन्तरों को समझ पाना किंचित कठिन है।

राज्य सचिवालय के सभी विभागों के या किसी एक विभाग के कार्य निम्न होते हैं-

1. **विकास हेतु नीतियों का निर्माण-** सचिवालय का प्रमुख कार्य जन-कल्याण तथा विकास कार्यों को गति प्रदान करने के निमित्त सार्थक नीतियॉं एवं योजनाएँ तैयार करना है। अधिकांश नीतियां किसी एक विभाग के कार्यों तथा लक्ष्यों से सम्बन्धित होती हैं। ये नीतियां सत्तारूढ़ राजनीतिक दल की मान्यताओं, कार्यशैली तथा उसके दृष्टिकोण से प्रभावित होती हैं। तथापि राज्य के संसाधन, जन-समस्याएँ तथा उपलब्ध प्रशासनिक तंत्र इनके निर्माण में निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। जब किसी विभाग की एक स्पष्ट एवं दूरगामी नीति तैयार एवं स्वीकृत हो जाती है, तब उस विभाग के उद्देश्य और कार्यक्रम मुख्यतः उस विभाग की नीति के इर्द-गिर्द घूमते हैं।

   पंचवर्षीय एवं वार्षिक योजनाओं के माध्यम से राज्य का सर्वांगीण सामाजिक-आर्थिक विकास सुनिश्चित किया जाता है। राष्ट्रीय स्तर पर पंचवर्षीय योजनाएँ, योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद के माध्यम से निरूपित होती हैं, लेकिन राज्य के विकास के लिए योजनाओं का स्वरूप, आकार तथा आवश्यक धनराशि स्वीकृत करवाने के लिए राज्य प्रशासन को खासी मेहनत करनी पड़ती है। राज्य के विकास के लिए कतिपय योजनाएँ केन्द्र प्रवर्तित होती हैं, जबकि कुछ कार्यक्रम स्वयं राज्य सरकार द्वारा संचालित एवं वित्त-पोषित होते हैं। इन सभी नीतियों, कार्यक्रमों तथा योजनाओं का आकलन, निर्माण तथा स्वीकृति के क्रम में सचिवालय में कार्यरत मंत्रियों, सचिवों तथा अन्य विशेषज्ञों की भूमिका निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण रहती है।

2. **सुशासन हेतु नियमों एवं कानूनों का निर्माण-** आधुनिक राज्यों, शासन-व्यवस्थाओं तथा प्रशासनिक कृत्यों का मुख्य आधार कानून है। आज कानूनों के द्वारा ही न केवल व्यक्ति एवं समाज को नियंत्रित किया जाता है, बल्कि प्रवर्तित व्यवस्था को यथावत् रखते हुए विकास की राह पर अग्रसर हुआ जाता है। भारत के संविधान में वर्णित राज्य-सूची के विषयों के सन्दर्भ में कानून एवं नियमों का निर्माण करने हेतु राज्य सचिवालय अपनी अहम् भूमिका निर्वाहित करता है। तात्कालिक समस्याओं या परिस्थितियों के अनुसार नये विधेयक तैयार करना अथवा प्रचलित अधिनियमों में संशोधन करके उन्हें विधायिका में प्रस्तुत करने लायक बनाने से पूर्व तथ्यों, सूचनाओं तथा शासन की नीतियों का विश्लेषण करने का कार्य सचिवालय का है। सचिवालय में उपलब्ध सूचनाएँ एवं दस्तावेज कानूनों तथा नियमों के निरूपण में सहायता प्रदान करते हैं।

3. **प्रशासनिक कार्यों का संचालन एवं नेतृत्व-** राज्य प्रशासन का शीर्ष प्रशासनिक संस्थान होने के कारण सचिवालय का यह दायित्व है कि वह सभी अधीनस्थ कार्यालयों तथा कार्मिकों के माध्यम से सरकार के कार्यक्रमों तथा कानूनों का कार्यान्वयन सुनिश्चत करे। इस समबन्ध में आने वाली बांधाओं तथा शंकाओं का समाधान करना, अधीनस्थ संस्थाओं को पर्यवेक्षण एवं मार्गदर्शन प्रदान करना, चाही गयी सूचनाएँ एवं संसाधन उपलब्ध करवाना, आपत्तियों का निराकरण करना एवं आवश्यक दिशा-निर्देश प्रदान करने हेतु राज्य की सभी प्रशासनिक संस्थाओं का नेतृत्व करना सचिवालय का कार्य है। चूंकि राज्य सरकार का प्रत्येक प्रशासनिक अभिकरण सचिवालय के किसी न किसी विभाग के अधीन कार्य करता है, अतः प्रशासनिक नियंत्रण का कार्य सचिवालय का जिम्मा है।

4. **मानव संसाधन का विकास करना-** किसी भी संगठन के लिए मानव संसाधन सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय है, क्योंकि शेष सभी संसाधनों का उपयोग मानव संसाधन अर्थात् कार्मिकों की कुशलता एवं प्रतिबद्धता पर निर्भर करता है। राज्य प्रशासन में कार्यरत लोक सेवकों; सरकारी कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, स्थानान्तरण, वेतन एवं भत्ते तथा अन्य आवश्यक सेवा-नियमों और शर्तों का निर्धारण सचिवालय द्वारा किया जाता है। राज्य में नई कार्मिक सेवाओं का गठन, पदों का सृजन, कमी या बढ़ोत्तरी, वेतनमानों में संशोधन, कार्मिक आन्दोलनों पर कर्मचारी नेताओं से वार्ता तथा हड़ताल की स्थिति में प्रशासनिक तंत्र पर नियंत्रण इत्यादि सचिवालयी विभागों का कार्य है।
5. **संस्थाओं के मध्य समन्वय सुनिश्चित करना-** सकारात्मक प्रयासों के रूप में विभिन्न व्यक्तियों या संगठनों के मध्य आपसी सहयोग ही समन्वय है। वर्तमान में प्रशासनिक कार्यों की प्रकृति बहुविभागीय तथा विशिष्टीकरण युक्त है। उदाहरण के लिए जनसंख्या नियंत्रण में चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग, श्रम एवं उद्योग विभाग तथा शिक्षा विभाग का आपसी तालमेल एवं सामंजस्य अत्यावश्यक है। प्रशासनिक कार्यों या निर्णयों के दौरान एक विभाग का दूसरे विभाग से कई बार संघर्ष एवं विवाद भी हो जाता है। इस प्रकार की अप्रिय स्थितियों से बचने अथवा उन्हें सुलझाने के क्रम में सचिवालय सतत प्रयास करता रहता है। सामान्यतः राज्य सचिवालय निम्न स्तरों पर समन्वय करता है-
    - विभिन्न अभिकरणों एवं राज्य प्रशासन के मध्य।
    - केन्द्र सरकार के मंत्रालयों/संस्थाओं एंव राज्य सरकार के विभागों के मध्य।
    - स्वयंसेवी संगठनों तथा राज्य प्रशासन के मध्य।
    - निजी संस्थाओं एवं राज्य सरकार के मध्य।
    - दबाव समूहों/संगठनों तथा राज्य सरकार के मध्य।
    - राजनीतिज्ञों तथा सरकारी कार्मिकों के मध्य।
    - एक ही विभाग के शीर्ष तथा अधीनस्थ कार्यालयों के मध्य।
    - आम जनता तथा प्रेस और राज्य प्रशासन के मध्य।
    - विभिन्न लोक उपक्रमों, आयोगों, कमेटियों तथा स्वायत्तशासी संस्थाओं के मध्य समन्वय सुनिश्चित करना।

वस्तुतः सचिवालय का कार्य, शासन की नीतियों, विधियों तथा कार्यक्रमों को जनकल्याण हेतु निष्पादित करवाना है। अतः इस सम्बन्ध में जिस स्तर पर कोई भी बांधा उत्पन्न हो, उसका निवारण सचिवालय के द्वारा होता है।

6. **बजट निर्माण तथा निष्पादन-** वित्त, आधुनिक प्रशासनतंत्र का रक्त है। प्रत्येक छोटा या बड़ा कार्य मुख्यतः वित्तीय संसाधनों पर निर्भर करता है, अतः वार्षिक आय-व्यय का लेखा 'बजट' के रूप में तैयार किया जाता है। प्रत्येक विभाग की स्थानीय शाखाएँ अपना बजट तैयार करके राजधानी स्थित सचिवालय में अपने विभाग के पास भेजती हैं। प्रत्येक विभाग का बजट मद; आइटम के अनुसार तैयार होता है। सचिवालय के विभागों द्वारा तैयार इस बजट को वित्त विभाग एकीकृत स्वरूप प्रदान करता है तथा अन्तिम रूप से कैबिनेट द्वारा स्वीकृत होने पर विधायिका में प्रस्तुत किया जाता है। विधायिका द्वारा स्वीकृति के पश्चात ही राज्य सरकार के विभाग विभिन्न प्रकार के व्यय कर सकते हैं तथा सेवाओं के बदले लगाए गये कर एवं शुल्क एकत्र कर सकते हैं। यदि किसी विभाग को आवंटित किया गया बजट किन्ही कारणों से कम पड़ता है तो उसकी परिस्थितिजन्य स्वीकृति सचिवालय ही प्रदान करता है।

7. **जन-सम्पर्क एवं जन शिकायत निवारण-** लोक कल्याणकारी शासन व्यवस्थाओं में संचालित योजनाएँ चूंकि जनसाधारण हेतु होती हैं, अतः उन योजनाओं एवं कार्यक्रमों का प्रसार-प्रचार भी आम जनता के मध्य प्रशासन द्वारा ही किया जाता है। आजकल रेडियो, टी0वी0 समाचार पत्रों, पोस्टर्स, होर्डिंग्स तथा प्रदर्शनियों के माध्यम से सरकार अपनी योजनाएँ जनसाधारण को सूचित करती है। आज का युग सूचना का युग है। अतः आम जनता तक प्रशासनिक कार्यकलापों की जानकारी पहुँचाना आवश्यक है।

   प्रशासनिक कार्यों तथा प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में जनसाधारण को हुई असुविधा तथा राजकीय सम्पत्ति के दुरूपयोग इत्यादि के क्रम में असंख्य शिकायतें प्रतिदिन सचिवालय में प्राप्त होती हैं। इन शिकायतों का निवारण तथा दोषी कार्मिक के विरूद्ध कार्यवाही करने का कार्य सचिवालय द्वारा सम्पादित ही होता है।

8. **नियंत्रण एवं मूल्यांकन करना-** किसी भी कार्य की पूर्ण सफलता हेतु अति आवश्यक है कि उस कार्य का सतत् अनुश्रवण तथा एक निश्चित अवधि या पूर्ण समाप्ति पर मूल्यांकन(इवेल्युएशन) किया जाए। राज्य सरकार द्वारा कार्यान्वित योजनाओं तथा कार्यक्रमों का सचिवालय द्वारा मूल्यांकन किया जाता है। क्षेत्रीय कार्यालयों तथा कार्मिकों द्वारा प्रेषित प्रगति प्रतिवेदन, आम जनता की परिवेदनाएँ, राज नेताओं का आकलन तथा आकस्मिक दौरों के माध्यम से योजनाओं के कार्य-संचालन एवं प्रगति पर नियंत्रण रखा जाता है। शीर्षस्थ नियंत्रणकर्ता के रूप में सचिवालय अपने अधीनस्थ कार्यालयों पर नियंत्रण स्थापित करने हेतु अनेक प्रकार के नियम-विनियम, दिशा-निर्देश तथा परिपत्र जारी करता है, क्योंकि कार्यक्रम या योजना की सफलता उस पर रखे गये नियंत्रण पर अत्यधिक निर्भर करती है। राजकीय सामग्री के भंडार का सत्यापन तथा लेखा परीक्षण; ऑडिट के द्वारा भी नियंत्रण स्थापित किया जाता है।

9. **तथ्य एकत्रण एवं प्रतिवेदन तैयार करना-** लोक प्रशासन की प्रत्येक कार्यकारी संस्था अपने वार्षिक तथ्य, सूचना तथा सम्पर्क तैयार करती है। सचिवालय के विभाग भी अपने अधीनस्थ निदेशालयों तथा अन्य सम्बद्ध प्रशासनिक अभिकरणों के माध्यम से विभागीय आंकड़ों को एकत्र करते हैं। ये आंकड़े सूचना अथवा तथ्य, नई योजनाऐं बनाने तथा प्रवर्तित योजनाओं के प्रभाव को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार के वार्षिक प्रगति विवरण राजनेताओं, विधायकों, शोधार्थियों तथा प्रशासकों के लिए विभिन्न दृष्टियों से लाभकारी सिद्ध होते हैं। इन प्रगति विवरणिकाओं के अतिरिक्त प्रत्येक महत्वपूर्ण दस्तावेज तथा फाइलों को भी अभिलेखागार में सुरक्षित रखा जाता है।

8.2.5 राज्य सचिवालय की कार्य प्रणाली

राज्य सचिवालय के विभिन्न स्तरों के पदाधिकारी अपने पद की महत्ता के अनुसार कार्य सम्पन्न करते हैं। शासन सचिव सम्पूर्ण विभाग और अधीनस्थ स्टाफ पर सामान्य नियन्त्रण एवं अधीक्षण रखता है। उप-सचिव उसकी सहायता करते हैं तथा अपर सचिव द्वारा यह देखा जाता है कि किसी प्रस्तुत मामले से सम्बन्धित सभी तथ्य संलग्न किये गये हैं अथवा नहीं। अनुभाग का अधिकारी यह व्यवस्था करता है कि अनुभाग में आने वाले सभी कागज-पत्रों पर उचित कार्यवाही की जाये। अनुभाग अधिकारी की देखरेख में ही कार्यालय प्रक्रिया के अनुशीलन का प्रबन्ध किया जाता है। वह सभी अधिनियमों, उपनियमों, कार्यालय प्रक्रिया तथा फाइल बनाने आदि कार्यों से परिचित रहता है, इसलिए अपने सहायकों को आवश्यक निर्देश प्रदान कर सकता है। यह निर्णय के 'क्या' पर प्रभाव नहीं डालता वरन 'कैसे' का सुझाव देता है। निर्णण लेना उच्च अधिकारियों का कार्य है।

सचिवालय की कार्य प्रक्रिया 'सेक्रेटेरिएट मैनुअल' में उल्लिखित होती है। किसी भी राज्य सचिवालय में अपनायी गयी फाइल व्यवस्था अत्यन्त सरल होती है। उदाहरण के लिए, सचिवालय में फाइल के दो भाग किये जाते हैं-

टिप्पणियां एवं पत्र व्यवहार। टिप्पणी वाले भाग में सम्बन्धित विषय पर विभाग का अभिमत अंकित होता है। पत्र व्यवहार वाले भाग में किसी विषय पर प्राप्त किये गये या भेजे गये सभी पत्र होते हैं।

सचिवालय मैनुअल में यह भी उल्लिखित है कि एक कागज को किस प्रकार व्यवस्थित किया जाये, संलग्न किये जाये, पृष्टों पर नम्बर किस प्रकार डाला जाये, आदि। फाइल रखने का तरीका ऐसा होना चाहिए कि एक अधिकारी किसी फाइल को मंगाकर तत्सम्बन्धी सारी बातों की जानकारी कर सके।

8.2.6 राज्य सचिवालय की समस्याऐं

डॉ0 श्रीराम माहेश्वरी के अनुसार राज्य सचिवालय ने उन कार्यों को भी हथिया लिया है, जो वास्तव में इसके अपने नहीं हैं, इससे विभागाध्यक्षों में उदासीनता की प्रवृत्ति उत्पन्न होती जा रही है। विभागाध्यक्ष प्रायः यह शिकायत करते हैं कि सचिवालय यन्त्र ने उनके कार्यों में सुविधा पहुँचाने की अपेक्षा बांधा डाली है। उनके महत्वपूर्ण सुझावों को सचिवालय कई बार रद्दी की टोकरी में डाल देता है। सचिवालय के कर्मचारियों में इतनी अधिक वृद्धि हो रही है कि जो प्रशासनिक दृष्टि से आवश्यक नहीं है। सचिवालय के अधिकारी हमेशा अपनी सेवा की सुरक्षा, वेतन-भत्ते और पदोन्नति के मसलों में उलझे रहते हैं। कई बार आवश्यक स्वरूप के कागज सचिव से चलकर पुनः सचिव तक पहुँचने में 15 से 20 स्तरों पर रूकते हैं। जिससे आवश्यक विलम्ब होता है और समय व श्रम की बर्बादी। सचिवालय संगठन की एक अन्य समस्या यह है कि इसे बहुत सारा अनावश्यक कार्य भी सौंप दिया जाता है। पंजाब में प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल ने यह ज्ञात किया कि वहाँ सचिवालय में आने वाले कार्यों में से कम से कम एक-तिहाई कार्य तो ऐसे होते हैं जो उनके सामने आने की नहीं चाहिए।

भारत के राज्यों में सचिवालय और विभागाध्यक्षों के बीच समन्वय, सहयोग तथा मधुर सम्बन्धों की स्थापना आवश्यक पहलू है। वस्तुतः सचिवालय मूल रूप से एक अभिलेख रखने वाला और समन्वय, नियन्त्रण तथा पर्यवेक्षण करने वाला कार्यालय है, जबकि विभागाध्यक्ष सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों की सफल क्रियान्विति के लिए उत्तर दायी है। अतः दोनों की भूमिका स्पष्टतः परिभाषित होनी चाहिए और उनका उच्च-अधीनस्थ का सम्बन्ध न होकर समांजस्यपूर्ण सम्बन्धों की रूपरेखा बननी चाहिए। सचिवालय की कार्य प्रणाली का भी आधुनिकीकरण किया जाना चाहिए ताकि अनावश्यक विलम्ब, आद को टाला जा सके। लालफीताशाही को रोकने के लिए सभी सचिवालयों में कर्मचारियों की संख्या कम की जानी चाहिए, शक्ति का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए, लाइन एवं स्टाफ में स्पष्ट अन्तर होना चाहिए तथा सभी विभागों में एक-एक पृथक् प्रभाग समन्वय कार्य के लिए स्थापित किया जाना चाहिए।

8.3 मुख्य सचिव

मुख्य सचिव राज्य प्रशासन का प्रशासनिक प्रमुख होता है। राज्य स्तर पर मुख्य सचिव केन्द्रीय स्तर के मंत्री-मण्डलीय सचिव के समकक्ष माना जा सकता है। वह राज्य सचिवालय का मुख्य समन्वयकर्ता होता है। वह राज्य के समस्त एवं सामान्य प्रशासन का अध्यक्ष होता है। वह सचिवालय का ऐसा किंगपिन है, जो सभी स्तरों पर सचिवालय के सभी विभागों को परस्पर संयुक्त करता है। वह सचिवों का मुखिया तथा राजकीय लोक सेवाओं का अध्यक्ष है मुख्य सचिव का राजनीतिक प्रमुख मुख्यमंत्री होता है वह सचिवालय का सर्वेसर्वा होता है। सचिवालय के सभी विभागों पर उसका नियन्त्रण होता है, वह राज्य को अत्यन्त आवश्यक प्रशासकीय नेतृत्व प्रदान करता है, राज्य के सम्पर्क अधिकारी का कार्य करता है तथा अपने प्रदेश की सरकार और केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के मध्य संचार सूत्र का कार्य करता है।

8.3.1 मुख्य सचिव पद का उदय

मुख्य सचिव का पद ब्रिटिश विरासत है। सन् 1898 में लॉर्ड बेलजली, जब भारत के गवर्नर जनरल बने तो उन्होंने केन्द्रीय सचिवालय का पुनर्गठन किया और उसी समय मुख्य सचिव का पद सृजित किया गया। ऐसे प्रमाण हैं कि जार्ज हिलेरो बालो पहले मुख्य सचिव नियुक्त हुए थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की समाप्ति के बाद जब शासन सीधे ब्रिटिश संसद के अधीन आ गया तो धीरे-धीरे सभी प्रान्तों में मुख्य सचिव पद सृजित किए गये। उसे महत्वपूर्ण नियुक्तियां करने के अधिकार प्रदान किए गये, जिनमें जिला स्तर के अधिकारियों की नियुक्तियां प्रमुख थीं।

8.3.2 मुख्य सचिव का चयन

मुख्य सचिव राज्य में आई0ए0एस0 का वरिष्ठतम अधिकारी होता है। सामान्यतया उसकी नियुक्ति 'वरिष्ठता' के आधार पर होती है, किन्तु ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि मुख्य सचिव के चयन में योग्यता और अन्य बातें भी निर्णायक होती हैं। व्यवहार में मुख्य सचिव का चयन राज्य का मुख्यमंत्री करता है। परम्परा यह है कि ऐसा करते समय वह संघ सरकार से सलाह करता है, किन्तु ऐसा करना आवश्यक नहीं है। वह अपने सहयोगी मन्त्रियों से भी सलाह कर सकता है, पर अन्तिम निर्णय उसी का होता है। डॉ0 मीना सोगानी के अनुसार मुख्य सचिव के चयन में जिन मुख्य तथ्यों को ध्यान में रखा जाता है वे निम्नलिखित हैं- वरीयता, सेवा अभिलेख, कार्य निष्पादन तथा योग्यता और मुख्यमन्त्री का अधिकारी में विश्वास।

हाल ही में विभिन्न राज्यों में मुख्य सचिवों के चयन से स्पष्ट होता है, कि सामान्यतया मुख्यमन्त्री अपनी पसन्द के व्यक्ति को ही मुख्य सचिव के पद पर नियुक्त करता है। इस कारण यह कहा जा सकता है कि मुख्य सचिव के चयन में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका मुख्यमंत्री की ही होती है। डॉ0 एस0 आर0 माहेश्वरी के अनुसार, राज्य प्रशासन को सुचारू रूप से और प्रभावी ढंग से चलाने के लिए यह आवश्यक भी है कि मुख्यमंत्री और मुख्य सचिव के आपसी सम्बन्ध परस्पर ठोस विश्वास पर आधारित हों। प्रशासनिक सुधार आयोग का मत था कि मुख्य सचिव का चयन बहुत ही सावधानी से किया जाना चाहिए। यह एक वरिष्ठतम, प्रभावी व्यक्ति होना चाहिए जिसे अपनी योग्यता, अनुभव, ईमानदारी और निष्पक्षता के कारण सभी अधिकारियों का विश्वास और आदर प्राप्त हो।

8.3.3 राज्य प्रशासन में मुख्य सचिव के कार्य

राज्य का सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी तथा मुख्यमंत्री के प्रमुख परामर्शदाता के रूप में पदासीन मुख्य सचिव के कार्य अत्यन्त विस्तृत तथा गम्भीर हैं। संक्षेप में मुख्य कार्य अग्रलिखित हैं-

1. राज्य के प्रशासनतंत्र को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए मुख्यमंत्री को परामर्श देना तथा स्वयं प्रशासनतंत्र को नेतृत्व प्रदान करना।
2. मंत्रिमण्डल सचिवालय के सचिव के रूप में राज्य की शासकीय नीतियों के निरूपण में सहायता करना।
3. मंत्रिमण्डल बैठकों की सूचना मंत्रिगण तक पहुँचाने, बैठक के निर्णयों को प्रशासनिक इकाइयों तक पहुँचाने तथा उनकी क्रियान्विति सुनिश्चित कराने के प्रयास करना।
4. केन्द्र-राज्य सम्बन्धों, क्षेत्रीय परिषदों के कार्यों तथा अन्तर्राज्यीय सम्पर्कों के क्रम में पत्र-व्यवहार एवं समन्वय करना।
5. राज्यपाल, मुख्यमंत्री तथा अन्य मंत्रियों से सम्बन्धित संस्थापना प्रकरणों पर कार्यवाही करना।
6. राज्य क्षेत्र के बाहर के प्रकरणों में चिकित्सा सहायता उपलब्ध करवाना।

7. उच्च स्तरीय; मंत्रियों तथा प्रशासनिक अधिकारियों, सभा, संगोष्ठियों तथा कार्यशालाओं से सम्बन्धित मामलों पर कार्यवाही करना।
8. राज्य के विकास हेतु कार्यक्रम एवं योजनाएँ बनवाने में सहायता करना।
9. राज्य प्रशासन से सम्बन्धित विधि/नियम निर्माण में परामर्श प्रदान करना।
10. जनगणना के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार को राज्य प्रशासन द्वारा सहायता उपलब्ध करवाना।
11. संसद तथा राज्य विधान सभा में मुख्यमंत्री तथा मंत्रियों से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर हेतु तथ्य एवं सूचनाऐं उलब्ध करवाना।
12. राज्य कर्मचारियों के वेतनमानों, पदों, पदोन्नतियों, स्थानानतरण, पुरस्कार तथा कार्मिक विकास से सम्बन्धित सेवाशर्तों का निर्माण करवाना।
13. विभिन्न प्रशासकीय संगठनों, स्वयंसेवी संस्थाओं, उद्योग मंडलों, दबाव समूहों, प्रेस तथा कार्मिक संघों से वार्तालाप करना तथा सरकार का पक्ष स्पष्ट करना।
14. केन्द्र सरकार के मंत्रालयों, राज्य सरकार के विभागों तथा अन्य अभिकरणों के मध्य विवाद की स्थिति में समन्वय स्थापित करवाना।
15. राज्य प्रशासन के कार्यकरण में शामिल संस्थाओं तथा कार्मिकों पर नियंत्रण, पर्यवेक्षण तथा मार्गदर्शन प्रदान करना।
16. विभिन्न विभागों से प्राप्त बजटीय अनुमानों को एकीकृत करते हुए मंत्रिमण्डल के सम्मुख उन्हें प्रस्तुत करवाना तथा विधायिका द्वारा स्वीकृत बजट को वास्तविक रूप से क्रियान्वित करवाना।
17. महत्वपूर्ण व्यक्तियों के राज्य के दौरे के समय व्यवस्थाएँ करवाना।
18. सांस्कृतिक आदान-प्रदान, कला एवं संस्कृति विकास, पुरस्कार एवं प्रोत्साहन, तथा करों एवं शुल्क के क्रम में आवश्यक कदम उठाना।
19. राज्य के प्रशासनतंत्र में संशोधन, सुधार, नवाचार तथा 'रूल्स ऑफ विजनस' में परिवर्तन हेतु मंत्रिमण्डल को परामर्श देना।

8.3.4 मुख्य सचिव की भूमिका

राज्य प्रशासनिक तंत्र में मुख्य सचिव की भूमिका कई आयामों से महत्वपूर्ण तथा प्रशासनिक दृष्टि से सर्वोच्च है। मुख्यमंत्री के परामर्शदाता, राज्य कार्मिकों के नेतृत्वकर्त्ता तथा प्रशासनतंत्र की धुरी के रूप में मुख्य सचिव की भूमिका को यहाँ निम्नांकित शीर्षकों के माध्यम से स्पष्ट किया जा रहा है-

1. **मुख्यमंत्री के सहयोगी के रूप में-** किसी राज्य में नये मुख्यमंत्री तथा मंत्री-परिषद की स्थापना के साथ ही सामान्यतः मुख्य सचिव भी परिवर्तित हो जाता है। यद्यपि लोक सेवक होने के नाते मुख्य सचिव राजनीतिक दृष्टि से निष्पक्ष होता है। तथापि प्रत्येक मुख्यमंत्री अपनी इच्छा का मुख्य सचिव नियुक्त करना पसंद करता है, ताकि मुख्य सचिव उसे सूचना, तथ्य तथा समुचित परामर्श उपलब्ध करा सके एवं मुख्यमंत्री के मंतव्यों को समझते हुए कार्यक्रम निर्मित एवं कार्यान्वित करवा सके।

   मंत्रिमण्डल की बैठकों की व्यवस्था, वांछित सूचना या फाईल उपलब्ध कराना, महत्वपूर्ण मुद्दों पर अपना परामर्श देना तथा मंत्रिमण्डल के निर्णयों को लागू कराने में मुख्य सचिव की भूमिका निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि राज्य का मुख्यमंत्री अधिकांशतः मुख्य सचिव पर निर्भर रहता है। राज्य प्रशासन की नीतियों, कानूनों, कार्यक्रमों तथा नयी योजनाओं के निर्माण, मुख्यमंत्री द्वारा किये गये वायदों की क्रियान्वित इत्यादि में मुख्य सचिव बहुत कुशलता से अपना कार्य सम्पादित करता है, क्योंकि

मंत्रिमंडलीय बैठकों तथा अन्य मंचों पर राजनीतिक मंत्रीगण कई प्रकार की बाध्यताओं तथा स्वार्थों से घिर कर अपना मत प्रकट करते हैं। जबकि मुख्य सचिव को अपने दीर्घ प्रशासनिक अनुभव एवं प्रवर्तित कानूनों के अनुसार निर्णय करना होता है।

मुख्यमंत्री के दौरों, बैठकों तथा लोगों से मुलाकात के क्रम में मुख्यमंत्री के सचिव के साथ मुख्य सचिव भी तालमेल बैठाता है। राज्य सरकार के विभिन्न विभागों से महत्वपूर्ण तथा नीतिगत मुद्दों से जुड़े प्रकरणों की फाइलें मुख्य सचिव के पास आती हैं, जिन्हें वह मुख्यमंत्री के पास अग्रेषित करता है तथा सम्बन्धित प्रकारण पर अपनी टिप्पणी एवं परामर्श देता है। योग्य, चतुर तथा धैर्यवान मुख्य सचिव, कुछ विवादित प्रकरणों में कानून की पतली गलियों के माध्यम से अपने मुख्यमंत्री को संकट से उबार भी सकता है। मुख्यमंत्री के पास आने वाली जन-शिकायतों की जाँच तथा सुनवाई का कार्य मुख्य सचिव के माध्यम से ही सम्बन्धित विभाग तक भेजा जाता है।

2. **मुख्य प्रशासनिक अधिकारी के रूप में-** राज्य सचिवालय के विभागों के सभी सचिवों, निदेशालयों के निदेशकों, संभागीय आयुक्तों, जिला कलेक्टरों तथा अन्य सभी राज्य कर्मचारियों का शीर्षस्थ अधिकारी मुख्य सचिव होता है। इस स्थिति में मुख्य सचिव का यह दायित्व हो जाता है कि सम्पूर्ण प्रशासनतंत्र को निर्देशित तथा समन्वित करें, ताकि किसी प्रकार की शिथिलता तथा संघर्ष की स्थिति उत्पन्न न हो। राज्य प्रशासन की किसी भी इकाई द्वारा किया गया विवादित कार्य या उच्च स्तरीय प्रशंसनीय कार्य अथवा दिखाई गयी लापरवाही के क्रम में अन्ततः मुख्य सचिव को जिम्मेदार बनना पड़ता है। इसलिए राज्य कार्मिकों के मनोबल को बढ़ाने हेतु उनके वेतनमानों, भत्तों तथा सुविधाओं में वृद्धि, पदोन्नति, पुरस्कार एवं प्रशिक्षण व्यवस्था में सुधार तथा सेवानियमों में समयानुकूल परिवर्तन तथा अनुशासन हीनता के मामलों में दण्ड की कार्यवाहियॉ इत्यादि में मुख्य सचिव महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

3. **कुछ विभागों के प्रमुख के रूप में-** यद्यपि मुख्य सचिव राज्य के सम्पूर्ण प्रशासनतंत्र का प्रशासनिक प्रमुख है। तथापि कुछ विभाग ऐसे हैं, जिनका सचिव पद, मुख्य सचिव द्वारा ही धारित किया जाता है। इन विभागों में प्रशासनिक सुधार विभाग, कार्मिक विभाग, सामान्य प्रशासन विभाग तथा नियोजन विभाग प्रमुख हैं। यह स्थिति प्रत्येक राज्य में भिन्न-भिन्न है, फिर भी मुख्य सचिव की भूमिका संघीय सरकार के कैबिनेट सचिव से भिन्न है, क्योंकि कैबिनेट सचिव के अधीन प्रत्यक्षतः कोई मंत्रालय नहीं होता है, जबकि राज्यों के मुख्य सचिव के अधीन कुछ विभाग होते हैं।

सामान्यतः महत्वपूर्ण प्रकृति के उन विभागों को जो राज्य प्रशासन में समन्वय स्थापित करने में अग्रणी हैं, को मुख्य सचिव के अधीन रखा जाता है। मुख्यमंत्री के साथ मिलकर राज्य की वार्षिक तथा पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण तथा श्रियोजन एवं विकास समन्वय समिति के अध्यक्ष के रूप में मुख्य सचिव महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कार्मिक विभाग में मुख्य कार्यों में अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों; राज्य संवर्ग के कार्यों का बंटवारा, पद-स्थापन, पदोन्नति, सेवानिवृत्ति, प्रशिक्षण, वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट, सेवानियम, आधार संहिता तथा उच्च स्तरीय निकायों जैसे लोकायुक्त, लोक सेवा आयोग, लोक उपक्रम इत्यादि में अधिकारियों की नियुक्ति के क्रम में मुख्यमंत्री, मुख्य सचिव से परामर्श करता है। प्रशासनिक सुधार विभाग के मुखिया के रूप में राज्य प्रशासनतंत्र से सुधार, संशोधन, प्रक्रिया परिवर्तन तथा नवाचारों को प्रोत्साहन देने का जिम्मा मुख्य सचिव का है। सामान्य विभाग के सचिव के रूप में मुख्य सचिव की भूमिका, उच्च स्तरीय प्रतिनिधि मंडलों या महत्वपूर्ण व्यक्तियों के दौरों के समय व्यवस्थाएँ करवाने, पुरस्कार निर्धारण एवं वितरण, स्वयंसेवी संगठनों को सहायता देने, राजकीय भवनों

तथा अतिथि गृहों की रक्षा, राज्य मोटर गैराज का प्रबन्ध तथा स्वतंत्रता सेनानियों के मामले, इत्यादि से सम्बन्धित होती है। सामान्यतः ये विभाग किसी मंत्री के अधीन नहीं होते, बल्कि मुख्यमंत्री ही इनका प्रभारी होता है, जिसे मुख्य सचिव प्रशासनिक सहायता प्रदान करता है।

4. **विभिन्न स्तरों पर समन्वयक के रूप में-** वर्तमान में जटिल होती प्रशासनिक संस्थाओं तथा विशेषज्ञता के कारण फैलते प्रशासनिक क्षेत्र में विवधि अभिकरणों के मध्य सामंजस्य एवं समन्वय स्थापित करना परमावश्यक है। राज्य प्रशासन के प्रमुख अधिकारी के रूप में मुख्य सचिव को राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार एवं उनके विभिन्न मंत्रालयों या अभिकरणों से समन्वय स्थापित करना पड़ता है। विभिन्न प्रकार की पंचवर्षीय योजनाओं, विकास कार्यक्रमों, शांति एवं व्यवस्था, वित्तीय सहायता की प्राप्ति, अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों का कार्मिक प्रबन्ध तथा राज्य की विकास परियोजनाओं की मंजूरी इत्यादि के क्रम में मुख्य सचिव राज्य सरकार के विभागों और केन्द्र सरकार के कैबिनेट सचिव, मंत्रालयों एवं वित्तीय संस्थाओं के मध्य समन्वय स्थापित करता है। प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले मुख्य सचिव सम्मेलन में वह राज्य का प्रतिनिधित्व करता है। कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता में होने वाले इस वार्षिक सम्मेलन में मुख्यतः केन्द्र-राज्य समन्वय की चर्चा होती है।

   राज्य पुनर्गठन अधिनियम- 1956 के अनुसरण में केन्दीय गृहमंत्री की अध्यक्षा में बनी क्षेत्रीय परिषद में सम्बन्धित राज्यों के मुख्यमंत्रियों, योजना आयोग के प्रतिनिधि, विकास आयुक्त तथा राज्यों के मुख्य सचिवों की अहम भूमिका होती है। दो या अधिक राज्यों के मध्य वाणिज्यिक, जलीय तथा करों से सम्बन्धित विवादों के मध्य अन्तर्विभागीय विवादों को निबटाने, विकास कार्यों में प्रत्येक विभाग का सहयोग सुनिश्चित करने, सचिवालय स्टॉफ को निर्देशित करने, विभागों की बैठकों को सम्बोधित करने, संभागीय आयुक्तों, विभागाध्यक्षों तथा जिलाधीशों की संगोष्ठियों की अध्यक्षता करने में मुख्य सचिव की एकमात्र उपयुक्त अधिकारी सिद्ध होता है, जो सहज रूप से सम्पूर्ण राज्य प्रशासन को एक सूत्र में पिरो सकता है। राज्य सरकार तथा प्रेस के मध्य, राज्य एवं दबाव समहों उद्योगपति/कर्मचारी संगठन तथा राज्य सरकार एवं निजी संगठनों के बीच सौहार्द्रपूर्ण वातावरण स्थापित कराने में भी मुख्य सचिव की महती भूमिका है।

5. **आपातकाल में महत्वपूर्ण भूमिका-** युद्ध तथा अशांति या वित्तीय संकट के कारण घोषित होने वाले राष्ट्रीय आपातकाल; इमर्जेन्सी तथा राज्य में संवैधानिक तंत्र की असफलता पर राष्ट्रपति शासन की घोषणा के समय राज्य सरकार का मंत्रिमण्डल चूंकि निष्क्रिय हो जाता है, अतः राज्यपाल वास्तविक सत्ता बन जाता है। इस स्थिति में मुख्य सचिव की राज्यपाल के प्रति आस्था वैसी ही हो जाती है, जैसी कि पूर्व में मुख्यमंत्री के साथ थी। राज्य के शासन-प्रशासन कार्यों को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए मुख्य सचिव को राज्यपाल महोदय के परामर्शदाता एवं कार्यकारी या निष्पादक अधिकारी की भूमिका निभानी पड़ती है। आपातकालीन परिस्थितियों में गठित की जाने वाली कमेटियों में भी मुख्य सचिव अहम भूमिका निभाता है।

   मुख्य सचिव राज्य के पुलिस महानिदेशक तथा महानिरीक्षक एवं गुप्तचर अभिकरणों के अधिकारियों के माध्यम से राज्य की कानून एवं व्यवस्था की अद्यतन सूचनाएँ निरन्तर प्राप्त करता है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों, राष्ट्रीय आयोगों, स्वयंसेवी संस्थाओं, कल्याणकारी न्यासों, साहसिक तथा सांस्कृतिक कार्यों में संलग्न निकायों एवं आम जनता से मुख्य सचिव दैनन्दिन सम्पर्क करता है। सारांशतः राज्य प्रशासन में मुख्य सचिव की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण एवं गंभीर दायित्वों से युक्त है।

अभ्यास प्रश्न-

1. राज्य पुनर्गठन अधिनियम- 1956 में पारित किया गया? सत्य/असत्य
2. राज्य सचिवालय राज्य स्तर पर विद्यमान समस्त विभागों का सामूहिक रूप होता है। सत्य/असत्य
3. मुख्य सचिव का मुख्य कार्य राज्य के प्रशासनतंत्र को सफलतापूर्वक संचालित करने का है। सत्य/असत्य

8.4 सारांश

राज्य सचिवालय राज्य स्तर पर विद्यमान समस्त विभागों का सामूहिक रूप होता है। इसका मुख्य कार्य सुशासन हेतु नीतियों का निर्माण करना है। इसके साथ ही नीतियों के सफल क्रियान्वयन हेतु अनुश्रवण एवं मूल्यांकन की व्यवस्था भी सचिवालय के ही जिम्मे है। प्रत्येक राज्य के सचिवालय में विभागों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। विभागों की संख्या का निर्धारण राज्य का मंत्रिमण्डल करता है। संगठनात्मक दृष्टि से राज्य सचिवालय का मुखिया मुख्यमंत्री होता है, क्योंकि वह मंत्री-परिषद का अध्यक्ष भी होता है। प्रशासनिक स्तर पर सचिवालय का मुख्य अधिकारी मुख्य सचिव होता है। राज्य स्तर पर मुख्य सचिव केन्द्रीय स्तर के कैबिनेट सचिव के समकक्ष माना जा सकता है। वह सचिवों का मुखिया तथा राजकीय लोक सेवाओं का अध्यक्ष है, इसके साथ ही सचिवालय के सभी विभागों पर उसका नियंत्रण होता है। मुख्य सचिव का चयन राज्य का मुख्यमंत्री करता है। मुख्य सचिव का मुख्य कार्य राज्य के प्रशासनतंत्र को सफलतापूर्वक संचालित करने का है।

8.5 शब्दावली

निदेशालय- सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए उत्तर दायी संस्था।
ए0पी0सी0- कृषि उत्पादन आयुक्त।
आई0ए0एस0- भारतीय प्रशासनिक सेवा।
रूल्स आफ विजनेस- कार्य के सम्पादन हेतु नियमावली।

8.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य, **3.** सत्य

8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत में लोक प्रशासन, डॉ0 बी0 एल0 फाड़िया, 2002, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. इण्डियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, रमेश अरोड़ा, रजनी गोयल, 2001, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. भारतीय प्रशासन, प्रो0 मधू सूदन त्रिपाठी, 2008, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
4. इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन, डॉ0 बी0 एल0 फाड़िया, डॉ0 कुलदीप फाड़िया, 2001, साहित्य भवन, पब्लिकेशन्स, आगरा।

8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन, अवस्थी एवं अवस्थी 2009, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. राज्य प्रशासन, डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया 1999, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।

8.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. राज्य सचिवालय के संगठन एवं उपयोगिता का उल्लेख कीजिये।
2. राज्य सचिवालय के कार्यों का वर्णन कीजिये।
3. मुख्य सचिव के कार्यों का वर्णन कीजिये।
4. राज्य प्रशासन में मुख्य सचिव की भूमिका का परीक्षण कीजिये।

इकाई- 9 स्थानीय शासन-परिचय, भूमिका, महत्व

इकाईकी संरचना

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 भारत में स्थानीय स्वशासन की पृष्ठभूमि
9.3 स्थानीय शासन का अर्थ एवं परिभाषा
9.4 स्थानीय शासन की भूमिका एवं महत्व
9.5 स्थानीय स्वशासन के लाभ
9.5.1 स्थानीय विषयों का कुशलतापूर्ण प्रबन्ध
9.5.2 केन्द्रीय शासन का भार कम होना
9.5.3 सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति जागरूक करना
9.5.4 राजनीतिक शिक्षण एवं राष्ट्र के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना
9.6.5 नौकरशाही पर नियंत्रण एवं मितव्ययिता
9.5.6 शासन में जन-सहभागिता एवं नागरिक गुणों का विकास
9.5.7 सुविधाएं पहुँचाने का साधन
9.5.8 नीति निर्माण में सहायक
9.6 भारत में स्थानीय शासन की संवैधानिक स्थिति
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

वर्तमान युग में स्थानीय शासन व्यवस्था, लोकतंत्र के बुनियादी मूल्यों स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व पर आधारित राजनीतिक निर्णयों में सत्ता के विकेन्द्रीकरण एवं जन सहभागिता के पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्धों पर आधारित है। लोकतंत्र की मूल मान्यता सर्वोच्च सत्ता का जनता में निहित होना है और इसका आशय होता है कि सर्वोच्च शक्ति का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण कर उसमें व्यक्ति की प्रत्यक्ष भागीदारी को शासन कार्यों में अभीष्ट स्थान देना। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की इस भावना को मूर्त रूप देने में स्थानीय शासन व्यवस्थाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है विशेष तौर पर तब जबकि इन संस्थाओं में प्रबन्ध न कार्य स्वयं नागरिकों की सहभागिता से होता है। इन संस्थाओं को जहाँ लोकतंत्र की आधारशिला कहा जाता है वहीं जनता को जागरूक कर लोकतंत्र के विश्वास का पाठ पढाती है। भारत जैसे देश में जहाँ दो-तिहाई से भी अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती हो, वहाँ स्थानीय शासन की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत का विस्तृत भू-भाग, कल्याणकारी सरकार के विस्तृत कार्य एवं दायित्व, स्थानीय समस्याओं का दिन-प्रतिदिन व्यापक होना आदि चुनौतियों के समाधान के लिए स्थानीय शासन ही कारगर हथियार है। डी0टाकविले के अनुसार,''स्वतंत्र राष्ट्रों की शक्ति स्थानीय संस्थाएं

होती हैं। एक राष्ट्र स्वतंत्र शासन की स्थापना कर सकता है किंतु स्थानीय संस्थाओं के बिना स्वतंत्रता की भावना नहीं हो सकती है।" स्थानीय शासन के लोकतांत्रिक महत्त्व को देखते हुए भारतीय संविधान में 73वाँ एवं 74वाँ संविधान संशोधन करते हुए संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया, और 14 अप्रैल 1993 से स्थानीय शासन (पंचायती एवं नगरीय) में विभक्त कर लागू कर दिया है। यह भारत में केन्द्र एवं राज्य सरकारों के पश्चात तीसरे स्तर की सरकार बन गयी।

स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता और महत्ता को सैद्धान्तिक स्तर पर भी महसूस किया जाना अपेक्षित है; जबकि व्यवहार में ऐसे स्वस्थ वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिए जिसमें स्थानीय स्वशासन के सभी सदस्यों में सहभागितापूर्ण लोकतंत्र फल-फूल सके। विश्व का लोकमत इस दृष्टिकोण का कायल हो रहा है कि स्थानीय स्वशासन राष्ट्रीय विकास और लोगों की प्रभावकारी सहभागिता के लिए अत्यावश्यक है और समस्त लोकतांत्रिक प्रक्रिया का अखण्ड एवं अपरिहार्य अंग इतना ज्यादा कि 08 अक्टूबर 1985 को यूरोपीय परिषद के 11 सदस्यों ने स्थानीय स्वशासन के यूरोपीय घोषणापत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। संयुक्त राज्य अमेरिका में परम्परा के द्वारा स्थानीय सरकारों पर सरकार के कतिपय बुनियादी कार्यों का दायित्व निर्भर है।

हमारे देश का स्थानीय स्वशासन दो स्तरों-नगरीय एवं ग्रामीण में विभक्त है नगरीय क्षेत्र में स्थानीय प्रशासन के अन्तर्गत संचालित इकाइयां नगर निगम, नगर पालिकाएं, अधिसूचित क्षेत्र समितियां, छावनी बोर्ड संस्था है। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पंचायतीराज व्चवस्था के त्रिस्तरीय रचना-जिला पंचायत, क्षेत्र पंचायत एवं ग्राम पंचायत को अपनाया गया। स्थानीय शासन को विभिन्न देशों में अलग-अलग नामों से संबोधित किया जाता है। इंगलैण्ड में इन्हें स्थानीय सरकारें कहा जाता है। फ्रान्स में स्थानीय प्रशासन (प्रीफेक्ट व्यवस्था) तथा अमेरिका में नगर पालिका शासन कहते हैं। सोवियत रूस में इसे म्युनिसिपल सोवियतन कहा गया है। किन्तु भारत में इसे 'स्थानीय स्वशासन'से पुकारा जाता है।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत में स्थानीय शासन को समझ पायेंगे।
- लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा में स्थानीय शासन के महत्व को जान पायेंगे।
- स्थानीय शासन के माध्यम से राजनीतिक विकास में जनसहभागिता एवं नियंत्रण को समझ पायेंगे।

9.2 भारत में स्थानीय स्वशासन की पृष्ठभूमि

भारत में स्थानीय स्वशासन की अवधारणा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। स्थानीय स्वशासन वर्तमान की भाँति नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं में विभक्त थी विशेष रूप से ग्राम पंचायतों का अस्तित्व अति प्राचीन है। 'पंचायत' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'पंचायतन' से हुई है, जिसका आशय पाँच व्यक्तियों के समूह से है। वैदिक सभ्यता के साहित्य में सभा एवं समितियों का वर्णन मिलता है जो प्रजा की भलाई के लिए राजा को सलाह देती थी। जिससे अतिशासन पर नियंत्रण सम्भव होता था।

रामायण महाभारत काल के साहित्य में सभाओं, समितियों तथा गाँवों का उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि रामायण में दो प्रकार के गांवों का वर्णन है-घोश एवं ग्राम। मनुस्मृति के अनुसार गाँव का अधिकारी 'ग्रामिक'कहलाता था उसका कार्य 'कर' संचित करना था। दस गाँव के अधिकारी को 'दशिक', 20 गाँव के अधिकारी को 'विधाधिप' सौ गाँवों पर शतपाल और एक हजार गाँव के अधिकारी को सहस्रपति कहते थे। मौर्य काल के विदेशी यात्री

मेगस्थनीज द्वारा भी स्थानीय शासन में नगरों एवं ग्राम आत्मनिर्भर छोटे गणतंत्रों के रूप में बताया गया। अर्थशास्त्र में कोटिल्य द्वारा स्थानीय स्वशासन पर काफी विस्तार से बताया गया और मौर्य शासकों के काल में इसका स्वरूप काफी विकसित था। गुप्त काल में गाँव के लिए ग्राम समितियों का विकास हो चुका था प्रशासनिक सुविधा के लिए प्रान्तों को नगर एवं ग्राम में विभक्त किया गया था। नगर का अधिकारी 'नगरपति' एवं ग्राम का अधिकारी 'ग्रामिक' कहलाता था। राजपूत कालीन युग में भी प्रशासन की मूल इकाई ग्राम ही थी जिसका शासन प्रबन्ध सभा एवं समितियों द्वारा होता था नगरीय शासन प्रबन्ध 'पहनाधिकारी' द्वारा होता था।

सल्तनतकालीन प्रशासन मूलतः सैनिक शासन रहा, जहाँनिरंकुशता एवं स्वेच्छाचारीता द्वारा स्थानीय स्वशासन के महत्त्व को कमतर कर दिया गया। सत्ता के केन्द्रीयकरण ने स्थानीय स्वायत्ता को प्रायः समाप्त ही कर दिया था। मुस्लिम शासनकाल में स्थानीय संस्थाओं के प्रति उपेक्षा देखने को मिलती है इस काल में स्थानीय संस्थाओं और स्वशासन का स्वरूप वह नहीं रहा था जो प्राचीन भारत की प्रशासनिक व्यवस्थाओं में देखने को मिलता है,विशेष रूप से जमींदारी प्रथा के आरम्भ होने के पश्चात।सत्ता के प्रति यह दृष्टिकोण आगे मुगलकाल में भी जारी रहा और स्थानीय स्वशासन की अवधारणा के महत्त्व पर कम ध्यान दिया गया। किन्तु स्थानीय प्रशासन पर 'आईन-ए-अकबरी' में नगर प्रशासन की जिम्मेदारी जिस अधिकारी पर थी वह 'कोतवाल' कहलाता था।

ब्रिटिश के प्रशासन में स्थानीय शासन के विषय में पर्याप्तविस्तृत विवरण मिलता है। यद्यपि भारत में स्थानीय स्वशासन प्राचीन काल से ही मौजूद रहा किन्तु इसका वर्तमान स्वरूप, संगठन, कार्यप्रणाली और विकास ब्रिटिश राज की ही देन है।

स्थानीय स्वशासन में शासक वर्ग का निर्वाचन जो प्रतिनिधियात्मक व उत्तर दायित्व की ओर संकेत करता है, का विकास ब्रिटिश शासन में आरम्भ हुआ।

ब्रिटिश काल में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की अपेक्षा नगरीय स्थानीय संस्थाओं के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया था इसका आरम्भ 1687 मद्रास नगर निगम की स्थापना से माना जाता है। इस प्रकार ब्रिटिश काल में विकसित हुआ भारत का स्थानीय शासन लगभग 330 वर्ष पुराना है।

आजादी के पश्चातभारतीय संस्कृति के प्राचीन मूल्यों, परम्पराओं एवं विरासतों को प्रजातांत्रिक संवैधानिक व्यवस्थाओं के साथ स्वभाविक रूप से अपनाया गया और हमारे नीति निर्माताओं द्वारा स्थानीय शासन के महत्त्व को समझते हुए लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित स्वायत्ता प्रदान की गयी। निर्वाचक गणों के प्रति उत्तर दायी पूर्ण शासन को बनाने के लिए स्थानीय स्वशासन को विकसित करने का पुनित कार्य न केवल राज्य को सौंपा गया बल्कि नीति-निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत पंचायतों एवं नगरीय शासन को 1992 में 73वां एवं 74वां संविधान संशोधन कर संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया। तब से भारतीय स्थानीय स्वशासन हमारी संघात्मक संरचना में शासन के तीसरे सोपान (केन्द्र, राज्य, स्थानीय) के रूप में एक मजबूत कडी का काम कर रहा है। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से भारतीय संघात्मक शासन व्यवस्था ग्राम पंचायतों एवं नगरीय प्रशासन में आत्मनिर्णय उत्तर दायित्व एवं जनसहभागिता द्वारा विकास को पुख्ता किया जा रहा है।

9.3 स्थानीय शासन का अर्थ एवं परिभाषाऐं

स्थानीय स्वशासन का अर्थ है नागरिकों का अपने ऊपर स्वयं का शासन अर्थात लोगों की अपनी शासन व्यवस्था। प्राचीन काल में स्थानीय स्वशासन विद्यमान था तथा ग्रामीण शासन प्रबन्ध न के लिए लोगों के अपने, कायदे कानून होते थे। इन नियमों के पालन में प्रत्येक व्यक्ति स्वैच्छिक भूमिका निभाता था। क्योंकि इससे शान्ति व्यवस्था बनाने में, सहभागितापूर्ण कार्यों में, समस्याओं के समाधान की क्षमता में विशेष योग्यता प्राप्त होती थी ताकि सामाजिक न्याय के उद्देश्य को प्राप्त कर सके।

स्थानीय स्वशासन को स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाऐं निम्न प्रकार हैं-

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार,''पूर्ण राज्य की अपेक्षा एक अन्दरूनी प्रतिबंधित एवं छोटे क्षेत्र में निर्णय लेने तथा उनको क्रियान्वित करने वाली सत्ता ही स्थानीय शासन है।"

एल0 गोल्डिंग के कथनानुसार ''स्थानीय सरकार को कई प्रकार से परिभाषित किया गया है किन्तु सम्भवतः इसकी सबसे सरल परिभाषा यही है कि यह एक बस्ती के लोगों द्वारा अपने मामलों का स्वयं ही प्रबन्ध है।"

हरमन फाइनर कहते हैं कि''जिस श्रेणी संघवाद तथा समानुपातिक प्रतिनिधित्व आदि की युक्तियां आती हैं, उसी में स्थानीय स्वायत्त शासन की गिनती है। ये सब व्यवस्थाएं समूह के अत्याचारों समतलन मानकीकरण तथा व्यक्तियों एवं व्यक्ति समूहों के प्रति परम्परागत घृणा से बचाव का साधन है।"

डब्ल्यू0 ए0 राब्सन के शब्दों में,''सामान्यतः स्थानीय शासन में एक ऐसे प्रादेशिक प्रभुत्वहीन समुदाय की धारणा निहित होती है जिसके पास अपने मामलों का नियमन करने का विधिक अधिकार तथा आवश्यक संगठन हुआ करता है जो बाह्य नियंत्रण से मुक्त रहकर काम कर सके, साथ ही यह भी जरूरी है कि स्थानीय समुदाय का अपने मामलों के प्रशासन में हिस्सा हो। स्थानीय शासन के ये तत्व किस सीमा तक विद्यमान होते हैं, इस विषय में न्यूनाधिक अन्तरहो सकता है।"

वी0वी0 राव के अनुसार, ''स्थानीय शासन सरकार का वह भाग है जो स्थानीय विषयों का प्रबन्ध करता है, जो सत्ताधारी राज्य सरकार के अधीन प्रशासन चलाते हैं परन्तु उनका निर्वाचन राज्य सरकार के स्वतंत्र एवं सक्षम निवासियों द्वारा किया जाता है।"

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि स्थानीय लोगों द्वारा मिल-जुल कर अपनी समस्याओं के निदान एवं विकास हेतु बनाई गई ऐसी व्यवस्था जो संविधान और राज्य सरकारों द्वारा बनाए गये नियमों एवं कानूनों के अनुरूप हो।स्थानीय शासन से हमारा अभिप्राय यह है कि स्थानीय क्षेत्रों का प्रशासन वहाँ के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाए। यदि स्थानीय क्षेत्र का प्रशासन केन्द्र या राज्य सरकारों के अधिकारियों द्वारा चलाया जाए तो वह स्थानीय प्रशासन होगा न कि स्थानीय स्वशासन। स्थानीय स्तर की समस्याओं का स्थानीय स्तर पर समाधान करने के लिए प्रायः सभी देशों में स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं स्थापित की जाती हैं। ये संस्थाएं ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के लिए अलग-अलग होती हैं। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी कुछ मूल्य एवं मान्यताएं होती हैं। इन्हीं मूल्य एवं मान्यताओं से राष्ट्र की सामाजिक राजनीतिक संस्थाएं उनकी कार्यप्रणाली तथा राष्ट्र का सर्वांगीण विकास निर्धारित होता है। इस तरह की संस्थाएं लचीली होती हैं। अतः ये समाज के बदलते राजनीतिक एवं सामाजिक परिवेश तथा आवश्यकता के अनुसार अपने आपको ढालने का प्रयास करती हैं।

9.4 स्थानीय शासन की भूमिका एवं महत्व

समकालीन परिदृश्य में जन आकांक्षाओं की उभरती हुई प्रवृत्तियों तथा लोककल्याणकारी राज्यों की मान्यता के फलस्वरूप राज्यों के कार्यों में उल्लेखनीय रूप से विस्तार हुआ है। केवल केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार ही इन कार्यों का सम्पादन नहीं कर सकती। इसी कारण लोकतांत्रिक देशों में राष्ट्रीय एवं प्रांतीय सरकारें अपने कार्यों को गति देने की दृष्टि से स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को पर्याप्त उत्तर दायित्व देती है। स्थानीय शासन की भूमिका एवं महत्व पर प्रकाश डालते हुए हैराल्ड जे लास्की ने कहा है,''हम लोकतंत्रीय शासन से पूरा लाभ उस समय तक नहीं उठा सकते जब तक कि हम यह न मान लें कि सभी समस्याएं केन्द्रीय समस्याएं नहीं हैं और उन समस्याओं को उन्हीं लोगों द्वारा हल किया जाना चाहिए जो उन समस्याओं से सर्वाधिक प्रभावित होते हैं।"

जब कोई जन समूह किसी स्थान विशेष पर मिल-जुल कर सामुदायिक जीवन का आरम्भ करता है तो पारस्परिक सम्बन्धोंके निरूपण से अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। इन समस्याओं का सम्बन्ध नागरिक जीवन

की सुविधाओं की व्यवस्था से होता है जैसे बिजली, पानी, सडक, संचार, स्वास्थ, आवास और स्वच्छता आदि। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ मनुष्य की जीवन यापन की आवश्यकताओं की न्यूनतम अवधारणा भी बदलने लगी है। स्थानीय शासन को जो कार्य करने चाहिए इनमें निरन्तर वृद्धि हो रही है। उपलब्ध सुविधाओं का परिवर्धन एवं नई सुविधायें जुटाना तथा भविष्य की सम्भावनाओं पर विचार कर, मानवीय जीवन के शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्ष को बेहतर बनाना स्थानीय शासन का उत्तर दायित्व है।

जहाँ एक ओर मनुष्य के जीवन को बेहतर से बेहतर बनाना स्थानीय शासन का उद्देश्य है वहीं प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रति जागरूक कर समाज को शासन व्यवस्थाओं के साथ सामंजस्य बिठाकर सतत विकास के पथ पर अग्रसर करना भी है। भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में स्थानीय स्वशासन संघवाद और सत्ता के विकेन्द्रीकरण व्यवस्था में तीन स्तर के शासन में बुनियाद का कार्य करता है। वस्तुतः आजकल लोगों के दैनिक जीवन में स्थानीय शासन की भूमिका प्रान्तीय और केन्द्रीय शासन से भी अधिक हो गयी है। इससे भी अधिक उल्लेखनीय बात यह है कि स्थानीय शासन के कार्यों में निरन्तर वृद्धि होने से इसका महत्व और अधिक बढता ही जायेगा। जैसे-जैसे लोग राजनीतिक दृष्टि से जागरूक होते जाऐंगे, राजनीतिक संस्कृति मजबूत होगी और उत्तर दायित्व और सहअस्तित्व पर आधारित शासन व्यवस्था का यह स्तर, नागरिक सहभागिता को और मजबूत करेगा और भविष्य की नागरिक सेवाओं के निष्पादन में मील का पत्थर भी साबित होगा।

9.5 स्थानीय स्वशासन के लाभ

स्थानीय शासन के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं-

9.5.1 स्थानीय विषयों का कुशलतापूर्ण प्रबन्ध

यदि स्थानीय संस्थाएं न हों तो स्थानीय विषयों का प्रबन्धन भी केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों द्वारा किया जायेगा जिससे उनके पास कार्यों की अधिकता होगी। स्थानीय स्वशासन के कारण नागरिकों के धरातलीय उत्तर दायित्वों का निर्वहन स्थानीय संस्थाएं कुशलतापूर्वक करती है इससे न केवल समस्याओं का त्वरित निदान होता है बल्कि संस्थाओं व नागरिकों के मध्य सीधा व सहभागी सम्बन्धस्थापित होता है जो कुशल प्रबन्धन का द्योतक है। सम्भव है कि केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि स्थानीय समस्याओं को न समझ सकें और स्थानीय समस्याओं का हल ढूँढ निकालना उनके लिए सम्भव न हो। दूरस्थ क्षेत्रों में कार्य करने में उन्हें अवश्य ही बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पडता है। इन कार्यों को स्थानीय शासन आसानी से कुशलतापूर्वक कर सकता है।

9.5.2 केन्द्रीय शासन का भार कम होना

जनकल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने केन्द्र सरकार के कार्यों में अत्यधिक वृद्धि कर दी है। ऐसे में अगर स्थानीय विषयों को भी केन्द्रीय सरकार द्वारा सम्पन्न करने से उसके कार्य भार में अत्याधिक वृद्धि से असंतुलन बढेगा और केन्द्र सरकार अपने कार्य भी सही प्रकार से नहीं कर सकेगी। स्थानीय संस्थाएं केन्द्रीय सरकार के कार्य भार को कम करने में मदद करती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि स्थानीय शासन केन्द्रीय शासन का कुछ बोझ अपने ऊपर ले लेता है। केन्द्रीय शासन अपने कुछ कार्य स्थानीय शासन को सौंप देता है। फलतः स्थानीय शासन केन्द्रीय या राज्य सरकारों को बहुत से कार्यों या जिम्मेदारियों से मुक्त कर देता है।

9.5.3 सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति जागरूक करना

प्रजातंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सामान्य नागरिकों द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में कितनी रूचि ली जाती है। यह रूचि संस्थाओं द्वारा एवं स्वयं नागरिकों द्वारा उत्पन्न होनी चाहिए। इससे विश्वास और उत्तर

दायित्व की भावना का विकास होता है और जनसाधारण बढ़-चढ़ कर भागीदार बनते हैं। सार्वजनिक जीवन के प्रति जागरूकता बढ़ना स्थानीय शासन की संस्थाओं का दायित्व है। स्थानीय शासन जनता के सबसे निकट होता है इसलिए लोग यह भी मानते हैं कि वे इन संस्थाओं पर अच्छे कामकाज के लिए अधिक प्रभाव डाल सकते हैं। नागरिकों की भावना और क्रियाशीलता समस्त जन समुदाय में जागरूकता का संचार करती है।

9.5.4 राजनीतिक शिक्षण एवं राष्ट्र के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना

स्थानीय शासन एक ओर जहाँ राजनीतिक शिक्षण का माध्यम बनना है, वहीं स्थानीयता से राष्ट्रीयता तक एकता की भावना का संचार करता है। प्रजातांत्रिक स्वरूप में नागरिक स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के भाव को प्राप्त ही नहीं करते, बल्कि उसकी रक्षा हेतु एकता के सूत्र में बंध कर राष्ट्र के प्रति निष्ठावान भी बनते हैं। जनता राजनीतिक तौर पर सजग रहती है और करों के औचित्य, चुनाव के तरीके और शासन के कार्यों को समझ सकती है कि शासन अपने कार्यों अर्थात कर्तव्यों को पूरा कर रही है या नहीं। नागरिक सार्वजनिक मामलों से परिचित हो जाता है। स्थानीय संस्थाएं नागरिकों को राज्य और देश की राजनीति में भाग लेने योग्य बनाती है।

9.5.5 नौकरशाही पर नियंत्रण एवं मितव्ययिता

स्थानीय शासन का एक बड़ा लाभ यह होता है कि राज कर्मचारियों की शक्ति को बढने से रोका जा सकता है। एक ओर तो नौकरशाही को यह बताया जाता है कि वे लोकसेवक हैं दूसरे जनता द्वारा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कई प्रकार के नियंत्रणों से शक्ति और विवके के फैलाव पर रोक लगती है, जिससे क्षेत्राधिकार की सीमाओं में मितव्ययिता के साथ नौकरशाही, लोकसेवकों के रूप में कार्य करती है।

9.5.6 शासन में जन-सहभागिता एवं नागरिक गुणों का विकास

स्थानीय स्वशासन के माध्यम से जनता शासकीय कार्यों में सक्रिय एवं सकारात्मक सहयोग प्रदान करती है। ब्राइस ने इसके महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि''स्थानीय संस्थाएं लोगों को न केवल दूसरों के लिए कार्य करना सिखाती हैं, वरन् इसके साथ मिलकर कार्य करना भी सिखाती हैं। सहयोग की सकारात्मक सोच नागरिकों को सामान्य समस्याओं के प्रति रूचिवान बनाती है। योग्यता एवं ईमानदारी से कर्त्तव्य पालन की भावना अच्छे नागरिकों का निर्माण इसी स्वशासन में ही सम्भव होता है।''

इस प्रकार स्थानीय शासन आधुनिक राज्यों के लिए न केवल आवश्यक बन गई है, बल्कि ये प्रजातंत्र की आधारशिला हो गई है। स्थानीय संस्थाएं स्थानीय उत्तर दायित्व एवं राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने में अहम भूमिका निभाती हैं। इसके अतिरिक्त स्थानीय समाज संवैधानिक सरकार के संचालन में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान करता है। प्रजातंत्र को अपने घर से आरम्भ होना चाहिए और इसके लिए स्थानीय सरकार सबसे उपयुक्त स्थान है। इस प्रकार वास्तविक प्रजातंत्र के लिए स्थानीय संस्थाएं अति आवश्यक है।

9.5.7 सुविधाएं पहुँचाने का साधन

स्थानीय शासन जनता को सुविधाएं पहुँचाने का एक साधन है। स्थानीय शासन सफाई, सडकों, स्वास्थ्य, जल, बिजली आदि की समस्याएं हल करके जनता को सुविधाएं पहुँचाताहै। जनता के लिए भी यह अधिक सुविधाजनक होता है कि उसकी समस्याएं केन्द्रीय शासन के प्रतिनिधि द्वारा हल न करके स्थानीय शासन द्वारा हल की जाए।

9.5.8 नीति निर्माण में सहायक

स्थानीय सरकार राज्य सरकारों को समस्त ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों की जनता से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएं और आँकड़े उपलब्ध कराती है। जनसंख्या, आय, पुरुष, महिला, शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी, भूमि, उत्पादन, आदि बातों की जानकारी स्थानीय सरकार ही प्रदान करती है। इन सूचनाओं के आधार पर राज्य सरकार अपनी नीतियां तैयार करती हैं,जिससे योजनाओं और कार्यक्रमों का निर्माण होता है, जिससे समस्त राष्ट्र का हित निहित होता है। इन नीतियों तथा योजनाओं को सफल बनाने में स्थानीय शासन का अत्यधिक योगदान होता है।

9.6 भारत में स्थानीय शासन की संवैधानिक स्थिति

यद्यपि भारत के संविधान में स्थानीय शासन को परिभाषित नहीं किया गया है। सातवीं अनुसूची में कहा गया हैः ''स्थानीय शासन अर्थात म्युनिसिपिल कॉरपोरेशन, इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट, जिला परिषदों, खदान अभिकरणों और स्थानीय स्वशासन तथा ग्राम प्रशासन के हेतु अन्य स्थानीय अभिकरणों के गठन एवं शक्तियां।''

इस प्रकार 1992 तक भारत में स्थानीय शासन राज्यों के विवेक पर निर्भर था। इस कमी को दूर करते हुए संविधान में दो संशोधन किए गये। इन दो संविधान संशोधनों के माध्यम से भारतीय स्थानीय शासन को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हो गया। 73वां संशोधन जो ग्रामीण पंचायती राज संस्थाओं के विकास से सम्बन्धित है और 74वां संशोधन जो नगरीय प्रशासन से, दोनों के द्वारा सत्ता का लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण कर दिया गया। संविधान में ऐसा करने वाला भारत दुनियां का पाँचवां देश बन गया।

अभ्यास प्रश्न-

1. स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक मान्यता देने के लिए भारतीय संविधान में कौन-कौन से संशोधन किए गये?
2. भारत में स्थानीय स्वशासन को कितने भागों में विभक्त किया गया है?
3. पंचायत शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के किस शब्द से हुई है?
4. भारत में नगर निगम की सर्वप्रथम स्थापना कब और कहाँ हुई?

9.7 सारांश

स्थानीय स्वशासन एक प्राचीन अवधारणा है विशेष रूप से भारतीय संस्कृति में इससे जुड़ी संस्थाओं को विकास क्रम में प्राचीन से अद्यतम तक परिभाषित किया जा सकता है।

यह शासन का ऐसा स्वरूप है जो नागरिक विकास के लिए स्थानीय मुद्दों के समाधान में जनसहभागिता की जरूरत पर विशेष बल देता है। स्थानीय स्वशासन,भारतीय संघात्मकता एवं एकात्मकता रूपी प्रजातंत्र परआधारित सत्ताविकेन्द्रीकरण मूल्यों की आधारशिला है। संवैधानिक दर्जा प्राप्त होने से यह नियंत्रण एवं उत्तर दायी पूर्ण शासन व्यवस्था का तीसरा स्तर है जो नीति-व्यवस्था का तीसरा स्तर है जो नीति-निर्माण से क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन तक जनसहभागिता पर आधारित है। सही मायने में लोकतंत्र की बुनियादी इकाई 'स्थानीय स्वशासन' ही है।

9.8 शब्दावली

परिवर्धन-विस्तरण या विस्तार, द्योतक-प्रतीक या चिन्ह स्वरूप, उत्तर दायित्व-जिम्मेदारी, जनसाधारण-आमलोग, आधारशीला-नींव

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 73वां और 74वां संवैधानिक संशोधन, **2.** दो भागों में-नगरीय और ग्रामीण, **3.** पंचायतन, **4.** 1687 में मद्रास नगर निगम

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एल0 गोल्डिंग, लोकल गवर्नमेंट, इंगलिश यूनिवर्सिटी, लंदन 1955
2. जेम्सब्राइस, मार्डन डेमोक्रेसीज, मैकमिलन प्रेस न्यूयार्क 1921
3. जे0 एस0मिल, रिप्रेजेन्टिव गवर्नमेंट एवरिमेंस लाइब्रेरी एडीसन प्रेस लंदन 1957
4. एस0आर0 माहेश्वरी, ''भारत में स्थानीय शासन'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2012

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एस0आर0 माहेश्वरी, ''भारत में स्थानीय शासन'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2012

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए भारत में स्थानीय स्वशासन के महत्व को विस्तार से समझाइये।
2. स्थानीय स्वशासन को परिभाषित कीजिए और उसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. स्थानीय शासन के लाभों को विस्तार से समझाइये।
4. स्थानीय शासन लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की बुनियाद है,विश्लेषण कीजिए।

इकाई- 10 बलवन्त राय मेहता समिति प्रतिवेदन एवं त्रिस्तरीय व्यवस्था

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 बलवन्त राय मेहता समिति का उद्देश्य
10.3 बलवन्त राय मेहता समिति का प्रतिवेदन
10.4 बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियां
10.5 पंचायत की त्रिस्तरीय व्यवस्था
    10.5.1 ग्राम पंचायत
    10.5.2 पंचायत समिति
    10.5.3 जिला परिषद
10.6 बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों का क्रियान्वन
10.7 सारांश
10.8 शब्दावली
10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

भारत गांवों का देश है, जिसकी 80 प्रतिशत जनसंख्या 05 लाख 75 हजार गांवों में निवास करती है। यहाँ पंचायती राज के नाम से प्रसिद्ध ग्रामीण स्थानीय शासन का महत्व स्वतः सिद्ध और सर्वथा असंदिग्ध है। वस्तुतः ग्रामीण शासन सम्बन्धी विचार जनता के सामाजिक और आर्थिक उन्नति की महती चिन्ता का एक अंग मात्र है। हमारा देश अत्यन्त प्राचीन काल से ही जनकल्याण के लक्ष्य के प्रति अटूट रूप से समर्पित है। इस शब्द का प्रयोग करते ही हमारा ध्यान सुदुर धुंधले अतीत की तरफ बरबस हो चला जाता है,इसलिए ग्रामीण विकास प्रारम्भ से ही भारतीय शासन के चिन्ता का मुख्य विषय रहा है। इसी उद्देश्य को लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय सविधान में नीति निदेश क तत्वों के तहत गांवों को स्वशासन की इकाई के रूप में विकसित करने का विचार रखा गया। ग्रामीण विकास को दृष्टिगत रखकर ही 02 अक्टूबर 1952 ई0 में 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम'का आरम्भ केन्द्र सरकार के द्वारा किया गया। यह सरकार द्वारा ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्य में जनता की भागीदारी के बारे में एक नयी सोच थी सामुदायिक विकास कार्यक्रम इस ढंग से बनाया गया था कि यह निरन्तर विस्तृत होता चला जाय और अन्ततोगत्वा यह सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्र तक विस्तृत हो जाय। इसके बाद 1953 में सारे देश में 'राष्ट्रीय विस्तार सेवा' स्थापित की गयी। इसके लिए सारे देश को विकास खण्ड में बांट दिया गया। प्रत्येक विकास खण्ड का प्रशासनिक अधिकारी विकास अधिकारी को बनाया गया। जनता का सहयोग लेने के लिए तदर्थ सलाहकारी समितियां बनायी गयी परन्तु इनमें नामित सरकारी अधिकारी ही अधिक होते थे। इसमें सामुदायिक विकास के प्रशासनका उत्तर दायित्व नौकरशाहीके कंधों पर था। किन्तु विद्यमान संगठनात्मक ढ़ाँचे में हेर फेर कर दिया गया था। इस कार्यक्रम के अधीन सरकार ने ग्रामीणों के सहयोग से विकास योजनाएं बनायी थी तथा इस बात का ध्यान

रखा गया था कि ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता और खण्ड विकास अधिकारी दोनों का नीति निर्धारण में समन्वय बना रहे। सामुदायिक विकास के संगठन और प्रशासन ने जनता का विश्वासनहीं किया। अतः अपेक्षित जन सहयोग के अभाव यह कार्यक्रम अपने निहित उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहा। इन सभी कदमों ने स्वायतशासी इकाईयों के रूप में पंचायतों को पनपने नहीं दिया।

अतः सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन करने तथा ग्रामीण विकास की अवधारणा को पुर्नस्थापित करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने 1956 ई0 में एक समिति की नियुक्ति की जिसका नाम 'सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विकास सेवा का अध्ययन दल' था,इसके अध्यक्ष बलवन्त राय मेहता थे। इसलिए इसको बलवन्त राय मेहता समिति भी कहा जाता है। इस समिति का कार्यक्षेत्र सामुदायिक विकास कार्यक्रम की असफलता के कारणों की जांच करने के साथ-साथ स्थानीय स्वशासन की स्थापना के मजबूत आधार का उल्लेख करना था। ग्रामीण विकास या स्थानीय शासन के इतिहास में यह समिति तथा इसके सुझाव मील के पत्थर साबित हो रहें है।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- यह समझ पाओगे कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायत व्यवस्था का विकास कैसे प्रारम्भ हुआ।
- पंचायती राज के वर्तमान स्वरूप को स्थापित करने में इस समिति का क्या योगदान था, इस सम्बन्ध में जान पाओगे।
- त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था की नींव कब और कैसे पड़ी, इस सम्बन्ध में जान पाओगे।

10.2 बलवन्त राय मेहता समिति का उद्देश्य

बलवन्त राय मेहता समिति का निर्माण भारत सरकार के अधीन 'कमेटी ऑन प्लान प्रोजेक्ट्स' (आयोजक परियोजना समिति) ने सामुदायिक विकास परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा का अध्ययन करके प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए की थी। इसलिए इसका पूरा नाम 'सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विकास सेवा का अध्ययन दल' है। विशेषरूप से समिति को निम्नलिखित बिन्दुओं का अध्ययन कर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करना था-

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा हेतु कर्मचारियों की आवश्यकता का आकलन और प्रशिक्षण की विद्यमान सुविधाओं का परीक्षण जिससे कार्यक्रम के प्रसार के लिए कर्मचारियों की बढ़ती हुई आवश्यकता की पूर्ति की जा सके।
2. सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार-सेवा की उपलब्धियों का जिक्र करने के लिए अपनायी गयी पद्धतियां।
3. केन्द्र सरकार के विभिन्न विभागों, मन्त्रालयों, केन्द्र-राज्य सरकारों तथा सामुदायिक विकास प्रशासनके विभिन्न अभिकरणों तथा राज्य सरकार के संगठनों एवं विभागों के बीच तालमेल।
4. सामुदायिक विकास परियोजना के कार्यक्रम की अन्तर्वस्तु तथा इसके अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्षेत्रों के लिए निर्धारित की गयी प्राथमिकताएं।
5. इस बात की जांच करना कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थानीय जनता का सहयोग प्राप्त करने में तथा ऐसी संस्थाओं का निर्माण करने में कहाँ तक सफल हुआ, जिनके द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास तथा सामाजिक दशा के सुधार की प्रक्रिया को निरन्तर जारी रखा जा सके।

6. अन्य किसी प्रकार के सुझाव जिनको समिति ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा के क्रियान्वयन में मितव्ययता लाने हेतु आवश्यक समझे।

मेहता समिति ने देश भर के चुने हुए ब्लाकों, स्थानीय जनता, स्थानीय अधिकारियों, जिला स्तरीय अधिकारियों, प्रतिनिध्यात्मक संगठनों के प्रतिनिधियों, विभागों के अध्यक्षों और विकास विभाग के सरकारी सचिवों से बातचीत की। समिति ने इस प्रश्न पर भी विचार किया कि तत्कालीन स्थानीय संस्थाएं कार्य कर सकती हैं या नहीं, यदि नहीं तो फिर कौन सी नयी संस्थाएं किस क्षेत्र किन शक्तियों और साधनों के साथ निर्मित की जाय। तत्कालीन जिला बोर्ड का अध्ययन करते हुए समिति ने उनकी अयोग्यताओं पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला। समिति का मानना था कि जिला बोर्डों ने उन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं की, जिनके लिए उनको स्थापित किया गया था। उन्हें लोगों को स्वशासन की शिक्षा देनी चाहिए थी,लेकिन यह उनकी परम्परा नहीं रही और न तो उनके पास इस तरह के साधन थे कि वे ऐसा कर सकें। उन्हें कार्य तो सौंप दिया गया था। लेकिन उन्हें इतना साधन सम्पन्न नहीं बनाया गया था, जिससे वे अपनी समस्याओं का समुचित समाधान कर सकें। अध्यक्ष व सदस्य इस स्थिति में नहीं थे कि वे तत्कालीन समस्याओं को सुलझाने के लिए समय दे सकें। वे अधिकांश कार्यों को अधिकारियों पर छोड़ने के लिए बाध्य थे, इसलिए अनुभवी अधिकारियोंकी नियुक्ति आवश्यक थी। राज्यों की भी प्रवृत्तियह रही कि उन्होंने जिला बोर्डों से कई कार्य वापस ले लिये। इसके अलावा वहाँदोहरे शासन की स्थिति भी पायी जाती थी।

समिति ने प्राथमिक शिक्षा को जिला बोर्डों के अधिकार में रखने की व्यवस्था से भी असहमति प्रकट किया, क्योंकि जिला बोर्ड स्वयं अपने दायित्वों के निर्वहन के लिए आर्थिक रूप से सरकार पर निर्भर थे। इसलिए वे उनकी समस्याओं में बहुत ही कम रूचि दिखाते थे। पंचायतों को भी जिला बोर्डों से जोड़ने के विचार को श्रेयस्कर नहीं माना गया। समिति का विचार था कि पंचायतों को जिला बोर्ड से सीधे जोड़ना न तो सरल होगा और न ही सुविधानक और व्यवहारिक। कई राज्यों में एक ही जिले में कई सौ ग्राम पंचायतें हैं और उनमें से कई का क्षेत्र बहुत बड़ा है। उनकी इतनी बड़ी संख्या भी असुविधा का एक बड़ा कारण है। ऐसी स्थिति में जिला बोर्ड और पंचायतों के बीच सामंजस्य एक बड़ी समस्या है।

10.3 बलवन्त राय मेहता समिति का प्रतिवेदन

उपर्युक्त समस्याओं का अध्ययन करने के पश्चात समिति ने 24 नवम्बर 1957 ई0 को अपना प्रतिवेदन तत्कालीन सरकार को सौंपा। जिसमें उसके द्वारा कई महत्वपूर्ण जानकारियों पर भारी आश्चर्य व्यक्त किया गया था। समिति ने देखा कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम व राष्ट्रीय प्रसार सेवा के कार्यक्रम जनता में अभिक्रम की प्रवृत्ति◌ापैदा करने में सफल नहीं हुए। जिससे जनता इन कार्यक्रमों में सक्रिय सहयोग नहीं की। पंचायतों द्वारा भी सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन नहीं किया गया। पंचायत स्तर के ऊपर के स्थानीय निकायों द्वारा भी सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का उत्साह नहीं दिखाया गया। इन तथ्यों से समिति को गहरा आघात लगा।

समिति का दृष्टिकोण था कि इन व्याधियों को समाप्त करने के लिए सबसे बढ़िया उपाय यह है कि राज्य के नीचे के स्तरों पर शक्ति तथा उत्तर दायित्व का विकेन्द्रीकरण कर दिया जाय। उसका सुझाव था कि ''शक्ति को एक ऐसे निकाय को अन्तरित कर दिया जाय जो निर्मित हो जाने पर अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत विकास कार्य का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ले ले। सरकार पथ-प्रदर्शन, परिवीक्षण तथा उच्चतर आयोजन का काम अपने हाथों में सुरक्षित रखे और जहाँ आवश्यक हो वहाँ अतिरिक्त वित्तीय सहायता प्रदान करें।''अर्थात समिति का प्रमुख निष्कर्ष यह था कि आम लोगों को ग्रामीण विकास योजनाओं में भागीदार बनाने के लिए यह आवश्यक है कि योजना और प्रशासनिक सत्ता दोनोंका विकेन्द्रीकरण हो। इस रिपोर्ट में पहली बार विकेन्द्रीकरण के साथ लोकतान्त्रिक शब्द

जोड़ा गया। इसका आशयथा कि जो लोकतान्त्रिक पद्धति हमारे देश में अपनायी गयी है उसमें सभी ग्रामीण सक्रिय रूप से भाग लें। जिससे सामान्य नागरिक यह महसूस करें कि शासन प्रक्रिया में उसका भी योगदान है। समिति के रिपोर्ट में कहा गया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय प्रसार सेवा का विकास इसलिए नहीं हो पाया कि इसमें जनता के सहभागिता का अभाव था। जनता स्थानीय क्रियाकलापों में तभी सक्रिय रूचि लेगी जबकि उसके लिए प्रतिनिधि सभाएं गठित की जाय।

विकेन्द्रीकरण को स्पष्ट करते हुए समिति ने कहा कि सरकार के कार्यों व अधिकारों को निचले स्तर पर स्थानान्तरित करने के साथ-साथ उनको वित्तीय दृष्टि से भी सबल बनाया जाना चाहिए। यह तभी सम्भव है जबकि विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक ढ़ाँचा निर्वाचित निकायों के हाथों में हो। रिपोर्ट में कहा गया कि बिना जिम्मेदारी और अधिकारों के विकास कार्यों में प्रगति नहीं हो सकती। सामुदायिक विकास सहीअर्थों में तभी हो सकता है जब समुदाय अपनी समस्याओं को समझे, आवश्यक अधिकारों का प्रयोग कर सके और स्थानीय प्रशासन पर लगातार और समझदारी के साथ निगाह रख सके। इस उद्देश्यसे हम शीघ्र ही चुने हुए संविधानिक एवं निर्वाचित निकायों की स्थापना की सिफारिश करते हैं और आवश्यक संसाधन, अधिकार तथा प्राधिकार सौंपे जाने की संस्तुति करते हैं।

10.4 बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियां

बलवन्त राय मेहता समिति के द्वारा विकेन्द्रीकरण को प्रभावी बनाने के लिए प्रमुख रूप से निम्नलिखित संस्तुतियां की गयी थी -

1. लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण हेतु प्रस्तावित पंचायती राज की योजना ग्राम से लेकर जिला स्तर तक त्रि-स्तरीय होनी चाहिए (शीर्ष पर जिला परिषदें, बीच में पंचायत समिति तथा निचले स्तर पर ग्राम पंचायत की स्थापना की जाय)। ये तीनों स्तर एक-दूसरे से जुड़े होने चाहिए। रिपोर्ट में पंचायत समिति को इस ऋंखला की सबसे अहम कड़ी बताया गया। समिति के अनुसार इन संस्थाओं को कानूनी दर्जा मिलना चाहिए, इनके अधिकार व कर्तव्य साथ-साथ परिभाषित होने चाहिए और इन्हें सरकारी नियन्त्रण में नहीं रखा जाना चाहिए।
2. सरकार को क्षेत्रीय विकास सम्बन्धी कुछ कार्यों एवं दायित्वों को इन निकायों को सौंप देना चाहिए और अपने को केवल निर्देशन, परीक्षण और उच्च नियोजन तक ही सीमित रखना चाहिए।
3. विकास खण्ड स्तर पर अपने क्षेत्र में विकास सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन करने हेतु एक निर्वाचित स्वशासित संस्था की स्थापना की जाय।
4. समिति ने इस बात पर अधिक बल दिया कि लोकतन्त्रीय संस्थाओं का विकेन्द्रीकरण किया जाय ताकि निर्णय लेने के केन्द्र जनता के अधिक निकट हो और जनता इन निर्णयों में भाग ले सके साथ ही नौकरशाहीअथवा सरकारी कर्मचारी स्थानीय जनता के नियन्त्रण में काम करें। इसके अनुसार जनता द्वारा निर्वाचित पंचायती राज संस्थाओं के पर्याप्त अधिकार दिये गये। उन्हे अपने क्षेत्र के विकास-विषयक कार्यकलापों के लिए उत्तर दायी बनाया गया।
5. इन निकायों को अपना कार्य करने के लिए समुचित वित्तीय साधन मिलना आवश्यक है, इसके लिए एक कानून बनाकर आप के कुछ साधन इन्हें सौंप देने चाहिए। इसके अलावा राज्य सरकार इनको पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान करे जिसमें पिछड़े हुए क्षेत्र हेतु विशेषध्यान दिया गया हो।

   पंचायत समिति का गठन ग्राम पंचायतो द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चुने हुए सदस्यों द्वारा हो। इनका

क्षेत्राधिकार इतना व्यापक नहीं होना चाहिए कि वह अपने उद्देश्य में विफल हो जाय, साथ ही साथ इतना सीमित भी नहीं होना चाहिए कि वे मितव्ययता व कार्यकुशलताके मार्ग में बाधक बन जाय।

6. पंचायत समिति को कृषि विकास, पशुपालन, स्वास्थ्य और सफाई सम्बन्धी कार्य सौंपे जाऐं। विकास सम्बन्धी इन योजनाओं को कार्यान्वित करने हेतु पंचायत समिति को राज्य सरकार के अभिकर्ता के रूप में कार्य करना चाहिए।
7. समस्त केन्द्रीय व राजकोष जो विकास खण्ड क्षेत्र के विकास हेतु दिये गये हो पंचायत समिति द्वारा ही खर्च किये जाने चाहिए। समिति ने आषा व्यक्त की कि सरकार पंचायत समिति के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले विषयों में काम बन्द कर देगी और यदि किन्ही विशेष परिस्थितियों में उसे करना भी पड़ा तो वह पंचायत समिति के अभिकरण के द्वारा ही करेगी।
8. यद्यपि सरकार को पंचायत समिति के कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए किन्तु साथ ही साथ उसका यह भी विचार था कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में सरकार का नियन्त्रण आवश्यक होगा। उदाहरण स्वरूप सरकार के हाथों में सार्वजनिक हित में पंचायत समिति के कार्यों को स्थगित करने तथा उसको भंग करने का अधिकार होना चाहिए। जिलाधिकारी को यह अधिकार हो कि यदि पंचायत समिति का कोई प्रस्ताव शान्ति भंग करने वाला, संविधान विरूद्ध अथवा राष्ट्रीय कानून के विरूद्ध हो तो वह उसे स्थगित कर दे।
9. पंचायतों के गठन के सम्बन्ध में समिति का सुझाव था कि ग्राम पंचायत स्तर पर चुने गये सदस्यों में दो महिलाएं, एक अनुसूचित जाति तथा एक अनुसूचित जनजाति से होना चाहिए। ग्राम पंचायत का चुनाव ग्राम सभा द्वारा किया जाय। मध्य स्तर पर सदस्यों का चुनाव ग्राम पंचायतें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से करें। चुने हुए सदस्यों में दो महिलाएं हो जो बच्चों और महिलाओं के काम में दिलचस्पी लेती हों। इसमें अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति को आरक्षण देने की सिफारिशभी की गई थी। पंचायत समितियों के प्रधानों के अलावा सांसद व राज्य विधान सभा के सदस्य भी जिला परिषद के सदस्य होगें। जिला परिषद पंचायत समितियों व सरकार के बीच कड़ी का काम करें।
10. पंचायतों के आय का मुख्य स्रोत सम्पत्तिकर, गृहकर, बाजार था सवारी पर कर, चुंगी कर बिजली व पानी कर, पशु मेले पर कर एवं पंचायत समिति से प्राप्त वित्तीय आय होनी चाहिए।
11. ग्राम पंचायतों के बजट का अनुमोदन पंचायत समिति द्वारा होना चाहिए तथा ग्राम पंचायत का स्थगन केवल राज्य सरकार द्वारा जिला परिषद की संस्तुति पर होनी चाहिए।
12. ग्राम पंचायतों के आवश्यक कर्तव्यों में जलपूर्ति, सफाई, रोशनी, सड़कों का रख-रखाव, भूमि प्रबन्ध, भूलेखों का संकलन और प्रबन्ध तथा पिछड़े वर्गों के कल्याण सम्बन्धी कार्य आते हैं।
13. न्याय पंचायतों का क्षेत्र ग्राम सभा से ज्यादा बड़ा होगा। विभिन्न पंचायत समितियों के मध्य समनवय स्थापित करने के लिए एक जिला परिषद होगी। जिसमें इन समितियों के प्रमुख, उस क्षेत्र के लोकसभा और विधान सभा के चुने हुए सदस्य एवं जिला स्तर के अन्य अधिकारी होगें। जिलाधिकारी उसका अध्यक्ष होगा।
14. समिति के विचार में जिला परिषद के कार्यकारी काम नहीं होगें, क्योंकि इससे अन्य स्थानीय संस्थाओं ग्राम पंचायत और पंचायत समिति के स्वतन्त्रता का हनन होगा। जिसके फलस्वरूप प्रारम्भिक समिति में पंचायत समितियों की प्रभावकारिता पर आंच आयेगी।

15. जिला परिषद मात्र पंचायत समितियों के बजट को स्वीकृति देगी, मांगों को सरकार की ओर अग्रसर करेगी, सरकार से प्राप्त धन को खण्डों में वितरित करेगी, योजनाओं में सामंजस्य स्थापित करेगा और समितियों के गतिविधियों का मार्ग निर्देशन आदि कार्य करेगा।

10.5 पंचायत की त्रिस्तरीय व्यवस्था

बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियों में पंचायत व्यवस्था के त्रिस्तरीय स्वरूप की सिफारिशकी गई थी। निचले स्तर पर ग्राम पंचायत, मध्य स्तर पर क्षेत्रपंचायत और सबसे ऊपर जिला परिषद अर्थात् ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, विकास खण्ड स्तर पर क्षेत्रपंचायत तथा जिला स्तर पर जिला परिषद। जिनका संक्षिप्त उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकाता है-

10.5.1 ग्राम पंचायत

त्रिस्तरीय व्यवस्था में सबसे निचले स्तर पर ग्राम पंचायत होगी। जिसका निर्माण निर्वाचन द्वारा किया जाना चाहिए। इसके सदस्यों का चुनाव ग्राम सभा द्वारा किया जाय। चुने हुए सदस्यों में दो महिलाएं, दो अनुसूचित जाति तथा दो अनुसूचित जनजाति में से लिए जाने चाहिए। आईयेग्राम पंचायत को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझते हैं-

1. **ग्राम पंचायत के कार्य-** समिति के द्वारा ग्राम पंचायतों को निम्नलिखित कार्य एवं अधिकार देने की संस्तुति की गई- जल की व्यवस्था करना, गांव के साफ-सफाई का प्रबन्ध करना, गलियों, नालियों व तालाबों के रख-रखाव का प्रबन्ध करना, गांव की गलियों में प्रकाश की व्यवस्था, भूमि प्रबन्ध,गांव की सड़कों, पुलियों, पुलों व नालों की देख-रेख, संकट में सहायता देना, प्राथमिक पाठशालाओं का परिवीक्षण,पशुओं से सम्बन्धित अभिलेखों का रख-रखाव आकाड़ों को एकत्रित करना और संरक्षण देना, पिछड़े हुए वर्गों का कल्याण और भू-राजस्व की वसूली आदि। इन कामों के अतिरिक्त ग्राम पंचायत विभिन्न विकास परियोजनाओं अथवा अन्य कार्यकलापों में पंचायत समिति के अभिकरण के रूप में भी कार्य कर सकती है।
2. **वित्त-व्यवस्था-** समिति ने ग्राम पंचायत के अन्य के मुख्य स्रोतों को निम्न प्रकार वर्णित किया है- सम्पत्ति कर अथवा गृहकर, हाटों तथा बाजारों पर कर,चुंगी व सीमा कर, साईकिलों, गाड़ियों, बोझा ढोने वाले पशुओं, नावों आदि पर कर,सफाई और जलकर, गांव क्षेत्र में बिकने वाले पशुओं पर पंजीकरण शुल्क, बूचड़खानों पर कर, मवेशी खानों से आय और पंचायत समिति से प्राप्त अनुदान।
   कर की वसूली सन्तोषजनक नहीं थी। इसलिए समिति ने सुझाव दिया कि कानून द्वारा यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि जो व्यक्ति पिछले वर्ष के करो को अदा नहीं किया है। उसे आने वाले पंचायत के चुनाव में मतदान का अधिकार नहीं मिलना चाहिए। यदि किसी पंचायत सदस्य के द्वारा छः महीने से अधिक तक कर अदा नहीं किया जाय तो उसकी सदस्यता स्वतः समाप्त हो जानी चाहिए।
3. **नियन्त्रण-** मेहता समिति के अनुसार पंचायत समिति को ग्राम पंचायत के पुनरीक्षण व स्वीकृति का अधिकार दिया जाना चाहिए। जिससे पंचायत समिति ग्राम पंचायत के ऊपर नियन्त्रण रखने का कार्य भी करें।

10.5.2 पंचायत समिति

मध्यम स्तरीय या खण्ड स्तरीय निकाय को मेहता समिति ने पंचायत समिति का नाम दिया। समिति के अनुसार पंचायत समिति एक निर्वाचित व संविधानिक निकाय होनी चाहिए। उसके कार्य विस्तृत हो तथा उसके पास आवश्यककार्यकारी शक्ति और समुचित साधन हो। इसे सरकार के हस्तक्षेप या व्यापक नियन्त्रण से मुक्त रहकर कार्य का अधिकार हो। सरकार द्वारा उसे आवश्यक पथ-प्रदर्शन भी मिलना चाहिए। पंचायत समिति को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझते हैं-

1. **पंचायत समिति के कार्य-** समिति के द्वारा त्रिस्तरीय व्यवस्था में पंचायत समिति को सबसे महत्वपूर्ण इकाई माना गया क्योंकि समिति का मानना था कि ग्राम पंचायत इतनी छोटी है कि उसे प्रशासन की सफल इकाई नहीं बनाया जा सकता है और जिला परिषद जनता से इतनी दूर होगी कि जनता उसमें सक्रिय रूप से भाग नहीं ले सकेगी। यह ग्रामीण स्थानीय शासन की इकाई के रूप में कार्य करने के साथ-साथ अपने क्षेत्र के सभी विकास कार्यों की भी एकमात्र सत्ताधारी संस्था होगी। इस हेतु वह कृषि, पशुपालन, ग्रामीण-उद्योग, सहकारिता, लघु सिंचाई, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, स्वास्थ्य, स्थानीय संचार साधन, स्थानीय सुविधाएं आदि विकास कार्यों को सम्पन्न करेगी। इसलिए सरकार उसके कार्यक्षेत्र में कोई कार्य नहीं करेगी और यदि किन्हींविशेषपरिस्थितियों में करना भी पड़ा तो वह पंचायत समिति के अभिकरण द्वारा ही करेगी। इस प्रकार राज्य पर्यवेक्षण, मार्ग दर्शन, उच्च स्तरीय आयोजन व वित्तीय सहायता देने तक ही अपने को सीमित रखेगा।
2. **वित्तीय व्यवस्था-** बलवन्त राय मेहता समिति ग्रामीण संस्थाओं के वित्तीयसमस्याओं से भलीभाँति परिचित थी। इसलिए उसने इस समस्या की ओर समुचित ध्यान दिया और पंचायत समिति के आय के लिए निम्नलिखित साधन पंचायत समितियों को सुपुर्द करने की संस्तुति की- विकास खण्ड में वसूल किये जाने वाले भू-राजस्व का एक निश्चित प्रतिशत भाग, व्यवसायों तथा उद्यमों पर कर, विकास खण्ड की अचल सम्पत्तियों, घाटों, मत्स्य क्षेत्र से प्राप्त कर व लाभ,सड़क व पुलों पर प्राप्त चुंगी कर, मनोरंजन के साधनों से प्राप्त कर, प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी उप-कर, समय-समय पर लगने वाले मेलों व हाटों पर लगने वाले कर, ऐच्छिक सार्वजनिक चन्दे,मोटर-गाड़ी कर का एक भाग, तीर्थ यात्री कर, जल कर तथा भू-राजस्व कर आदि पर उप-कर और सरकार से प्राप्त अनुदान।

   समिति की संस्तुति है कि विकास खण्ड क्षेत्र में केन्द्र या राज्य सरकार द्वारा जो भी धनराशिखर्च की जाय वह निर्अपवाद रूप से पंचायत समिति को दे दी जानी चाहिए और उसको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खर्च करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो केवल उन संस्थाओं को अपवाद माना जा सकता है जिनको सहायता देना या तो पंचायत समिति के कार्य कलाप के बाहर है या उनके वित्तीय साधनों से परे है।
3. **नियन्त्रण-** बलवन्त राय मेहता समिति ने संस्तुति की कि पंचायत समिति के कार्यों में सरकार को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए किन्तु कुछ विशिष्टपरिस्थितियों में समिति ने सरकार का नियन्त्रण आवश्यकमाना। ये विशेष परिस्थितियां है, यदि समिति के किसी प्रस्ताव से शान्ति भंग की आशंका हो, प्रस्तावित कार्य संविधान या देश के किसी प्रचलित कानून के विरूद्ध हो तो जिलाधिकारी उसे स्थगित कर सकता है।
4. **कर्मचारीगण-** मेहता समिति के अनुसार पंचायत समिति में दो प्रकार के कर्मचारी व अधिकारी होंगे। प्रथम, खण्ड स्तर पर और द्वितीय, ग्राम पंचायत स्तर पर। खण्ड स्तर के अधिकारियों में खण्ड विकास अधिकारी, कृषि, सिचाई, सड़कों, इमारतों, लोक स्वास्थ्य, पशुपालन, सहकारिता, सामाजिक शिक्षा,

प्राथमिक शिक्षा आदि की देखरेख करने वाले तकनीकी तथा प्रसार अधिकारी सम्मिलित होंगे। खण्ड विकास अधिकारी कार्यकारी अधिकारी होगा। समिति के अनुसार खण्ड विकास अधिकारी में सांविधिक रूप से प्रशासकीय शक्ति निहित होनी चाहिए।

ग्राम स्तरीय कर्मचारियों में ग्राम सेवक, प्राथमिक पाठशाला के अध्यापक आदि आते हैं। इनकी भर्ती जिला परिषद द्वारा की जानी चाहिए तथा इन्हें विभिन्न पंचायत समितियों को सुपुर्द कर दिया जाना चाहिए। ये कर्मचारी प्रशासन और कार्य दोनों के दृष्टि से खण्ड विकास अधिकारी द्वारा नियन्त्रित होंगे।

10.5.3 जिला परिषद

बलवन्त राय मेहता समिति का मानना था कि जिले स्तर पर भी कोई ऐसा संगठन होना चाहिए जो जिले के पंचायत समितियों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का कार्य करे। इस हेतु उसने जिला स्तर पर जिला परिषद के स्थापना की संस्तुति की और कहा कि जिला परिषद पंचायत समितियों में तालमेल स्थापित करने के साथ-साथ उसके परिवीक्षण का कार्य करेगी, किन्तु उसके हाथों में कार्यकारी शक्ति नहीं होनी चाहिए।

1. **जिला परिषद के सदस्य-** जिला परिषद में जिले के अन्तर्गत आने वाले सांसद, विधायक, पंचायत समितियों के अध्यक्ष, कृषि, लोक स्वास्थ्य, पशु चिकित्सा, शिक्षा, लोक स्वास्थ्य, अभियन्त्रण, सार्वजनिक निर्माण तथा विकास विभागों के जिला स्तर के अधिकारी आदि सदस्य होंगे। जिलाधिकारी जिला परिषद का अध्यक्ष होगा तथा एक अन्य अधिकारी उसका सचिव होगा।
2. **जिला परिषद के कार्य-** जिला परिषद का मुख्य कार्य केवल पंचायत समितियों का परिवीक्षण तथा उनमें समन्वय स्थापित करना था। समिति की संस्तुति थी कि ''हमारा ऐसा विचार नहीं है कि इस परिषद के कार्यकारी काम होगे। उससे तो स्थानीय अभिक्रम को ठेस पहुँचेगी तथा फलस्वरूप प्रारम्भिक वर्षों में पंचायत समितियों की प्रभावकारिता पर भी आंच आयेगी।'' समिति की संस्तृतियों में जिला परिषद के निम्नलिखित कार्यों की अनुशंसा की गयी थी-
    - जिला परिषद सरकार द्वारा जिले के लिए दी गयी धनराशि को पंचायत समितियों को वितरित करेगी।
    - जिला परिषद जिले के समस्त पंचायत समितियों के बजट का परिवीक्षण तथा अनुमोदन करेगी।
    - जिला परिषद जिले की विकास खण्ड योजनाओं को एकीकृत व समन्वित करेगा।
    - जिला परिषद पंचायत समितियों द्वाराअनुदानों हेतु दिये गये आवेदन पत्रों को एकीकृत कर सरकार को अग्रसारित करेगी।
    - जिले के पंचायत समितियों के कार्यों का परिवीक्षण भी जिला परिषद के द्वारा किया जायेगा।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि बलवन्त राय मेहता समिति ने स्थानीय स्वशासन के लिए त्रिस्तरीयव्यवस्था की संस्तुति की। मेहता समिति की संस्तुतियों ने विद्यमान ग्रामीण शासन की व्यवस्था को प्रभावमयी व उचित व्यवस्था में रूपान्तरित कर दिया। इसकी संस्तुतियां वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था को आधार प्रदान करने का कार्य की। वर्तमान व्यवस्था के स्थापना में समिति की संस्तुतिया मील का पत्थर साबित हो रही है।

10.6 बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों का क्रियान्वयन

बलवन्त राय मेहता समिति का मत था कि ये संस्तुतियां उस शासन तन्त्र का एक व्यापक चित्र हैं। जिसे हम लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए आवश्यक समझते हैं और जिसके द्वारा प्रभावकारी ग्रामीण विकास सम्भव हो सकता है। लेकिन कुछ राज्य सरकारों ने यह मत व्यक्त किया कि उनके राज्य में जो परिस्थितियां हैं, उनको देखते हुए वे एक ऐसे स्थानीय निकाय का शक्ति अन्तरित करना उचित तथा सुविधाजनक समझते हैं जिसका अधिकार क्षेत्र जिले जितना बड़ा हो। यद्यपि हमारा विश्वास है कि, एक छोटे निकाय को शक्ति अन्तरित करना लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का सबसे प्रभावकारी तरीका होगा। फिर भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि इस प्रकार का अन्तरण जिले के निकाय को ही किया जा सकता है।

बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियों का अध्ययन केन्द्रीय सरकार द्वारा किया गया। तत्पश्चात इसे राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष रखा गया। जिसमें वहस के उपरान्त समिति के प्रायः सभी सिफारिशों को राष्ट्रीय विकास परिषद ने यथावत स्वीकार कर लिया। इसके बाद इस प्रस्ताव को केन्द्र सरकार ने राज्यों के पास भेज दिया। राज्यों को यह विशेषाधिकार दिया गया कि हर राज्य इस सम्बन्ध में अपने-अपने नियम बनाये और अपनी इच्छानुसार पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना करें। स्थानीय शासन की केन्द्रीय परिषद ने इस बात का समर्थन किया कि पंचायती राज का वह स्वरूप स्वीकार किया जाय जो परिस्थितियों के अनुकुल हो, जटिल न हो, क्योंकि हमारा देश अत्यन्त विशाल है। इसलिए इसका रूप भिन्न-भिन्न राज्यों के अनुरूप भिन्न-भिन्न हो सकता है। सन् 1959 में राष्ट्रीय विकास परिषद ने संस्तुति की कि वाह्य ढ़ाँचा व प्रधान तत्वों में एक रूपता हो सकती है किन्तु आकार,प्रकार में जटिलता नहीं होनी चाहिए। वस्तुतः देशइतना विशाल है और पंचायती राज (लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण) इतना जटिल विषय है तथा उसके परीक्षण की पूरी-पूरी गुंजाइश है। अधिक महत्व की बात यह है कि जनता को शक्ति का अन्तरण करना है। यदि यह सुनिश्चित हो जाय तो रूप व आकार-प्रकार में विभिन्न राज्यों में विद्यमान परिस्थितियों के अनुसार भिन्नताएं हो सकती हैं।

प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरु के सुझाव के अनुसार इस त्रिस्तरीय प्रशासन की प्रक्रिया का विशुद्ध भारतीय नाम 'पंचायती राज'रखा गया। मद्रास राज्य 1957 के आरम्भ से ही जनवादी विकेन्द्रीकरण के एक अगुवा खण्ड को प्रयोग के तौर पर अपने ढंग से चला रहा था। इस खण्ड के अनुभव मौजूद थे। आन्ध्र प्रदेश के हर जिले में इस तरह का एक खण्ड था। बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों के अनुसार राजस्थान राज्य के अनुभवों से प्रेरित होकर 02 अक्टूबर (महात्मा गाँधी का जन्मदिन) 1959 ई0 में सम्पूर्ण प्रदेश को जनवादी विकेन्द्रीकरण के अधीन लाने की पहल पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने नागौर जिले में दीपक जलाकर पंचायती राज का उद्-घाटन किया। जिसके तहत सम्पूर्ण राज्य को 232 सामुदायिक विकास खण्डों में बांट दिया गया और राज्य के विकास की जिम्मेदारी जनता और पंचायत से शुरु कर उनके ऊपर के प्रतिनिधियों को सौप दी गयी। 1959 ई0 में आन्ध्र प्रदेश सभी सक्रिय सामुदायिक विकास खण्डों और सब जिलों की जिला परिषदों में जनवादी विकेन्द्रीकरण की यह योजना लागू कर दी। इसके पश्चात दूसरे राज्यों ने भी इसके ढ़ाँचे , कार्यों और साधनों में कुछ अनिवार्य परिवर्तन के साथ उसे स्वीकार कर लिया।

अभ्यास प्रश्न-

1. बलवन्त राय मेहता समिति के गठन का कारण क्याथा?
2. सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विकास सेवा दल' के अध्यक्ष कौनथे?
3. बलवन्त राय मेहता समिति का गठन कबकिया गया था?
4. क्यापंचायत का त्रिस्तरीय ढ़ाँचा बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों का परिणाम है?

5. बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुति में ग्राम पंचायत, क्षेत्रपंचायत तथा जिला परिषद में सबसे महत्वपूर्ण किसे माना गया?
6. बलवन्त राय मेहता समिति के सिफारिशों के अनुरूप पंचायती राज व्यवस्था का प्रारम्भ सर्वप्रथम किस राज्य में हुआ?
7. नगौर जिला किस राज्य में स्थित है ?

10.7 सारांश

भारत गांव प्रधान देश है,अतः भारत के सम्पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है कि गांवों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। गांवों का विकास चाहे वह आर्थिक क्षेत्र में हो अथवा राजनीतिक क्षेत्र में नियोजित तरीके से ही सम्भव हो सकेगा। इसी बात को ध्यान में रखकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात गांवों का शासन गांव स्तर पर चलाने तथा लोकतन्त्र को मजबूती प्रदान करने के लिए जन सहभागिता प्राप्त करने के उद्देश्य से पंचायती राज की स्थापना की गई।

ग्रामीण विकास के उद्देश्य से ही प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरु ने 1952 ई0 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा 1953 ई0 में राष्ट्रीय प्रसार सेवा का प्रारम्भ किया। इसका उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक नियोजन के विरूद्ध गांवों में सक्रिय चेतना जागृत करना था, लेकिन यह प्रयास मात्र सरकारी प्रयास बनकर रह गया। ग्रामीण विकास कार्यक्रम की असफलता तथा उसे ग्रामीण जनता का सहयोग न मिलने के कारणों की जांच के लिए सर्वप्रथम 1956 में बलवन्त राय मेहता के नेतृत्व में 'सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विकास सेवा का अध्ययन दल' नामक समिति का गठन किया गया।

समिति ने देश की स्थितियों का अध्ययन किया और पाया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की असफलता का सबसे प्रमुख कारण जनता के सहयोग का अभाव था। समिति ने अपनी रिपोर्ट नवम्बर 1957 में भारत सरकार को सौंपा, इसमें विकास कार्योंमें जनता के सहयोग को बढ़ाने के लिए समिति ने लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण पर बल दिया। लोकतन्त्रिक विकेन्द्रीकरण के अलावा समिति के रिपोर्ट में कहा गया था कि विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक ढ़ाँचा निर्वाचित निकायो के हाथों में होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समिति ने निम्न तीन स्तरों पर पंचायती राज व्यवस्था की सिफारिशकी ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद। इनमें पंचायत समिति को ऋंखला की सबसे अहम कड़ी बताया गया। सरकार के द्वारा समिति के प्रतिवेदन का अध्ययन करने पश्चात इसे राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष रखा गया। परिषद की स्वीकृति मिलने के उपरान्त इसे राज्यों को इस विशेषाधिकार के साथ भेज दिया गया कि वे अपनी स्थितियों व परिस्थितियों के अनुरूप नियम बनाकर पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना करें।

बलवन्त राय मेहता समिति के संस्तुतियों को लागू करने के लिए प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने महात्मा गाँधी के जन्म दिवस 02 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में दीपक जलाकर इसका उद्-घाटन किया। जवाहर लाल नेहरु के सुझाव पर ही इस प्रक्रिया को 'पंचायती राज' नाम दिया गया।

10.8 शब्दावली

संविधान-किसी राज्य की शासन व्यवस्था के लिए विधित बनाये गये आधारभूत नियमों का संग्रह,समिति-किसी निश्चित उद्देश्य से निर्मित लघु संगठन,परियोजना-दीर्घ काल के लिए निर्मित योजना,सामुदायिक-सर्व समुदाय के लिए की गयी व्यवस्था,प्रतिवेदन-अधिकारी के पास भेजी जाने वाली रिपोर्ट,संस्तुति-किसी कार्य के करने के लिए प्रबल सिफारिश,पंचायती-पंचायत द्वारा किया हुआ,विकेन्द्रीकरण-शक्तियों का केन्द्र से बाहर की ओर

प्रवाह,प्रशासनिक-राज्य शासन की कार्यकारिणी से सम्बन्धित,स्वशासित-स्वयं द्वारा शासित होने की स्थिति,नियोजित-नियुक्त किया हुआ या योजनाबद्ध तरीके से कुछ करना।

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन करना और राष्ट्रीय प्रसार सेवा का मूल्याकंन करना, **2.** बलवन्त राय मेहता, **3.** 1956ई0 में, **4.** हॉ, **5.** क्षेत्रपंचायत को, **6.** राजस्थान, **7.** राजस्थान में

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महीपाल, पंचायती राज- अतीत, वर्तमान और भविष्य, सारांश प्रकाशन प्रा0लि0, दिल्ली।
2. डॉ0 श्रीराम माहेश्वरी, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक,आगरा।
3. एम0पी0 त्यागी और आर0के0 रस्तोगी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन,मेरठ।
4. एस0के0डे, पंचायती राज (हिन्दी में), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
5. त्रिवेदी प्रसाद गुप्त एवं चन्द्रिका प्रसाद उपाध्याय, पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास, किरण बुक कम्पनी, इलाहाबाद।
6. देवेन्द्र उपाध्याय, पंचायती राज व्यवस्था, जगदीश भारद्वाज, सामयिक प्रकाशन,दरियागंज, नयी दिल्ली।

10.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 श्रीराम माहेश्वरी, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक,आगरा।
2. एम0पी0 त्यागी और आर0के0 रस्तोगी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन,मेरठ।

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बलवन्त राय मेहता समिति की स्थापना के उद्देश्यों एवं उसके प्रतिवेदन का उल्लेख कीजिये।
2. भारत में स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं के सम्बन्ध में बलवन्त राय मेहता समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन का संक्षेप में विवेचन कीजिये।

इकाई- 11 पंचायती राज और तिहत्तरवां(73वां) संविधान संशोधन अधिनियम

इकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 पंचायती राज
11.3 स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के रूप में पंचायती राज
11.4 स्वतंत्रता पूर्व भारत में पंचायती राज
11.5 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायती राज
11.6 पंचायतों के विकास के लिए गठित समितियाँ
    11.6.1 बलवंत राय मेहता समिति
    11.6.2 अशोक मेहता समिति
    11.6.3 जी0वी0के0 समिति
    11.6.4 डॉ0 एल0एम0 सिंघवी समिति
    11.6.5 सरकारिया आयोग और पी0 के0 थुंगर समिति
11.7 तिहत्तरवें संविधान संशोधन की सोच
11.8 तिहत्तरवां संविधान अधिनियम
11.9 तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य बातें
11.10 तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की विशेषताऐं
11.11सारांश
11.12 शब्दावली
11.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.16 निबन्धात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

शासन प्रणालियों के विकास क्रम में मनुष्य ने अनेक प्रकार की शासन प्रणालियों को अपनाया। शासन प्रणालियों का कोई भी स्वरूप- चाहे वह तानाशाही शासन हो, राजशाही शासन, सैनिक शासन, साम्यवादी शासन या लोकतांत्रिक शासन प्रणाली, ये सभी शासन प्रणालियाँ भौगोलिक परिस्थितियों के परिणाम ना होकर व्यक्ति के विचारों और सिद्धान्तों का परिणाम हैं। शासन प्रणालियों के विकास क्रम में ज्यादातर समय राजशाही व तानाशाही शासन प्रणाली का रहा, किन्तु एक बेहतर जीवन की खोज में व्यक्ति का संघर्ष लगातार जारी रहा। जिसका परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति ने अपने ऊपर शासन के लिए स्वयं को शासक बनाने का निश्चय किया और लोकतंत्र या प्रजातंत्र शासन प्रणाली का स्वरूप सामने आया। लोकतंत्र में भी सबसे निचले स्तर तक के व्यक्ति के हाथों में सत्ता की पहुँच हो और वो शासन के कार्यों में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके इसके लिए शासन-सत्ता का एक जगह केन्द्रीकरण ना करके इसके विकेन्द्रीकरण को अपनाया गया। सत्ता विकेन्द्रीकरण की सोच ने स्थानीय स्वशासन को जन्म दिया और सबसे निचले स्तर पर पंचायती और नगरीय शासन का स्वरूप सामने

आया। लोकतंत्रीय शासन प्रणाली में ही सत्ता का विकेन्द्रीकरण सम्भव है। आज हम सभी भारत में पंचायती राज और नगरीय शासन से अच्छी तरह परिचित हैं।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- पंचायती राज के सम्बन्ध में जान पाओगे।
- स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद भारत में पंचायती राज की स्थिति के बारे में जान पायेंगे।
- 73वें संविधान संशोधन के पीछेक्या सोच थी, इस विषय में जान पायेंगे।
- 73वें संविधान संशोधन और इस संविधान में मौजुद मुख्य बातों(उपबन्धों) के विषय में जान पायेंगे।

11.2 पंचायती राज

पंचायती राज का इतिहास कोई नया नहीं अपितु यह आदिकाल से हमारी पुरातन धरोहर है। भारतीय ग्रामीण व्यवस्था में सामुदायिकता की भावना प्राचीन काल से विद्यमान रही है। इसी सामुदायिकता व परम्परागत संगठन के आधार पर पंचायत व्यवस्था का जन्म हुआ। इसीलिए हमारे देश में पंचायतों की व्यवस्था भी सदियों से चली आ रही है। भारतीय संस्कृति के विकास के साथ-साथ पंचायती व्यवस्था का जन्म और विकास हुआ। पंचायत शब्द पंच+आयत से बना है। 'पंच' का अर्थ है, समुदाय या संस्था तथा 'आयत' का अर्थ है विकास या विस्तार। अतः सामूहिक रूप से गाँव का विकास ही पंचायत का वास्तविक अर्थ है। ये संस्थाऐंहमारे समाज की बुनियादी संस्थाऐं हैं और किसी न किसी रूप में ये संस्थाऐं हमारी संस्कृति व शासन-प्रणाली का अभिन्न हिस्सा रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास, प्रशासन व न्याय की जिम्मेदारी इन्हीं संस्थाओं की थी। राजा,महाराजा भी स्थानीय स्तर पर काम-काज के संचालन हेतु इन्हीं संस्थाओं पर निर्भर रहते थे। स्थानीय स्तर पर सत्ता एक व्यक्ति के हाथ में न रह कर सामूहिक रहती थी। इसीलिए इन्हें गणतन्त्र की स्थानीय इकाईयों के रूप में मान-सम्मान दिया जाता था। ग्राम पंचायत ग्रामीण क्षेत्रों में शासन प्रबन्ध, शान्ति और सुरक्षा की एकमात्र संस्थाऐं रही हैं।डाक्टर राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है कि ये समस्त जनता की सामान्य सभा के रूप मेंअपने सदस्यों के समान अधिकारों, स्वतंत्रताओं के लिए निर्मित होती हैं, ताकि सब में समानता, स्वतंत्रता तथा बुधुत्व का विचार दृढ़ रहे। अतः यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में पंचायती राज का गौरवशाली अतीत रहा है।

प्राचीन काल में पंचायतों का स्वरूप कुछ और था। यद्यपि इन संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा नहीं प्राप्त था लेकिन गांवों से जुड़े विकास व न्याय सम्बन्धित निर्णयों के लिए ये संस्थाऐं पूर्ण रूप से जिम्मेदार थीं। प्राचीन काल में गाँवों में पंच परमेश्वर की प्रणाली मौजूद थी। गाँव में सर्वसहमति से चुने गये पाँच गणमान्य व बुद्धिमान व्यक्तियों को गाँव में न्याय व्यवस्था बनाये रखने व गाँव के विकास हेतु निर्णय लेने का अधिकार था और उन्हें तो पंच परमेश्वर तक कहा जाता था। पंच परमेश्वर द्वारा न्याय को सरल और सुलभ बनाने की प्रथा काफी मजबूत थी। उस समय ये पंच एक संस्था के रूप में कार्य करते थे। गाँव के झगड़े, गाँव की व्यवस्थायें सुधारना जैसे मुख्य कार्य पंच-परमेश्वर संस्था किया करती थी। उसके कायदे-कानून लिखित नहीं होते थे फिर भी उनका प्रभाव समाज पर ज्यादा होता था। पंचों के फैसले के खिलाफ जाने की कोई सोच भी नहीं सकता था। पंचों का सम्मान बहुत था व उनके पास समाज का भरोसा और ताकत भी थी। लोग पंचों के प्रति बड़ा विश्वास रखते थे और उनका निर्णय सहज स्वीकार कर लेते थे। पंच परमेश्वरभी बिना किसी पक्षपात के निर्णय किया करती थी। मुंशी प्रेमचन्द ने अपनी कहानी पंच परमेश्वर द्वारा प्राचीन काल में स्थापित इस पंच प्रणाली को काफी सरल तरीके से समझाया है। प्राचीन

काल में जातिगत व कबाइली पंचायतों का भी जिक्र भी मिलता है। इन पंचायतों के प्रमुख गाँव के विद्वान व कबीले के मुखिया हुआ करते थे। इन पंचायतों में कोई भी निर्णय लेने हेतु तब तक विचार-विमर्श किया जाता था जब तक कि सर्वसहमति से निर्णय न हो जाये।

11.3 स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के रूप में पंचायत व्यवस्था

राजा-महाराजा काल में स्थानीय स्वशासन को काफी महत्व दिया गया। उनके द्वारा भी जनता को सत्ता सौंपने की प्रथा को अपनाया गया। भारत जैसे विशाल देश को एक केन्द्र से शासित करना राजाओं व सम्राटों के लिए सम्भव नहीं था। अतः राज्य को सूबों, जनपदों, ग्राम समितियों अथवा ग्राम सभाओं में बांटा गया। वेदों, बौद्ध ग्रन्थों, जातक कथाओं, उपनिषदों आदि में इस व्यवस्था के रूप में पंचायतों के आस्तित्व के पूर्ण साक्ष्य मिलते हैं। मनुस्मृति तथा महाभारत के 'शांति-पर्व' में ग्राम सभाओं का उल्लेख है। रामायण में इसका वर्णन जनपदों के नाम से आता है। महाभारत काल में भी इन संस्थानों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वैदिक कालीन तथा उत्तर -वैदिक कालीन इतिहास के अवलोकन में यह बात स्पष्ट हो गई है कि प्राचीन भारत का प्रत्येक ग्राम एक छोटा सा स्वायत्त राज्य था। इस प्रकार के कई छोटे-छोटे गाँवों औरछोटे-छोटे प्रादेशिक संघ मिलकर बड़े संघ बन जाते थे। संघ, पूर्णतः स्वावलम्बी थे तथा एक-दूसरे से बड़ी अच्छी तरह जुड़े हुए तथा सम्बन्धित थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी गाँवों के छोटे-छोटे गणराज्यों की बात कही गई है। सर चार्ल्स मेटकाफ ने तो पंचायतों कोगाँव के छोटे-छोटे गणतन्त्र कहा था जो स्वयं में आत्मनिर्भर थे। बौद्ध व मौर्य काल के समय पंचायतों के आस्तित्व की बात कही गई है। बौद्ध काल के संघों की कार्य-पद्धति ग्राम राज्य की प्रथा को दर्शाती है। बौद्ध संघों के शासन की प्रणाली वस्तुतः भारत की ग्राम पंचायतों तथा ग्राम संघों से ही ली गई थी। गुप्त काल में भी ग्राम समितियां, पंचायतों के रूप में कार्य करती थीं। चन्द्रगुप्त के दरबार में रहने वाले यूनानी राजदूत मैगस्थनीज के वृतान्त से उसके बारे में काफी सामग्री मिलती है। मैगस्थनीज के वृतान्त से उस समय के नगर प्रशासन तथा ग्राम प्रशासन पर खासा प्रकाश पड़ता है। नगरों का प्रशासन भी पंचायत-प्रणाली से ही होता था और पाटलिपुत्र का प्रशासन उसकी सफलता का सूचक है। मैगस्थनीज के अनुसार नगर प्रशासन भी ग्राम प्रशासन की भाँति ही होता था। नगर का शासन एक निर्वाचित संस्था के हाथ में होता था, जिसमें 30 सदस्य होते थे। सदस्य 06 समितियों में विभक्त होते थे। प्रत्येक समिति अलग-अलग विषयों का प्रबन्धन करती थी। कुछ विषय अवश्य ऐसे थे जो सीधे राजकीय नियंत्रण में होते थे।

प्राचीन काल में राजा लोग महत्वपूर्ण निर्णय लेते समय इन पंचायतों से पूर्ण विचार-विमर्श करते थे। स्थानीय स्वशासन की ये संस्थाऐं,स्थानीय स्तर पर अपना शासन खुद चलाती थीं। लोग अपने विकास के बारे में खुद सोचते थे, अपनी समस्याऐं स्वयं हल करते थे एवं अपने निर्णय स्वयं लेते थे। वास्तव में जिस स्वशासन की बात हम आज कर रहे हैं, असली स्वशासन वही था। यह कह सकते हैं कि हमारे गाँव का काम गाँवमें और गाँव का राज गाँव में था। पंचायतें हमारे गाँव समाज की ताकत थी।

ग्रामों के इस संगठनों की सफलता का रहस्य केवल यह था कि ग्रामीण अपने अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों की अधिक चिंता करते थे। इस तरह भारत के ग्रामों के संगठन की परम्परा उत्पन्न हुई, पनपी और इसमें दीर्घकाल तक कीसफलता से देश के ग्रामीणों को समृद्ध, सुसम्पन्न तथा आत्मनिर्भर बनाया। पंचायतों के कारण ही काफी समय तक विदेशी अपना आर्थिक प्रभुत्व जमाने में असमर्थ रहे।

मध्य काल में पंचायतों के विकास पर खास ध्यान नहीं दिया गया। इस दौरान समय-समय पर विदेशियों के आक्रमण भारत में हुए। मुगलों के भारत में आधिपत्य के साथ ही शासन प्रणाली में नकारात्मक बदलाव आये । लोगों की अपनी बनाई हुई व्यवस्थाऐं चरमराकर धराशायी हो गई। समस्त सत्ता व शक्ति बादशाह व उसके खास कर्मचारियों के हाथों में केन्द्रित हो गयी। यद्यापि मुगल बादशाह अकबर द्वारा स्थानीय स्वशासन को महत्व दिया

गया और उस समय ग्राम स्तरीय समस्त कार्य पंचायतों द्वारा ही किया जाता था। लेकिन अन्य शासकों के शासनकाल में पंचायत व्यवस्था का धीरे-धीरे विघटन का दौर शुरू हुआ जो ब्रिटिश काल के दौरान भी अंग्रेजों की केन्द्रीकरण की नीति के कारण चलता रहा। पंच-परमेश्वर प्रथा की अवहेलना से पंचायतों व स्थानीय स्वशासन को गहरा झटका लगा,जिसके परिणाम स्वरूप जो छोटे-छोटे विवाद पहले गाँव में ही सुलझ जाया करते थे,अब वह दबाये जाने लगे व सदियों से चली आ रही स्थानीय स्तर पर विवाद निपटाने की प्रथा का स्थान कोर्ट-कचहरी ने लेना शुरू किया। जिन प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा व उपयोग गाँव वाले स्वयं करते थे वे सब अंग्रेजी शासन के अर्न्तगत आ गये और उनका प्रबन्धन भी सरकार के हाथों चला गया। स्थानीय लोगों के अधिकार समाप्त हो गये।
कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि स्थानीय स्वशासन की परम्परा प्राचीन काल में काफी मजबूत थी। स्थानीय स्वशासन की संस्थाऐं जन-समुदाय की आवाज हुआ करती थी। वर्तमान की पंचायत व्यवस्था का मूल आधार हमारी पुरानी सामुदायिक व्यवस्था ही है। यद्यपि मध्यकाल व ब्रिटिश काल में पंचायती राज व्यवस्था लडखड़ा गई थी, लेकिन भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने के लिए पुनः प्रयास शुरू हुए और पंचायती राज व्यवस्था भारत मे पुनः स्थापित की गई। जिसके बारे में आप आगे विस्तार से अध्याय करेंगे।

11.4 स्वतंत्रता पूर्व भारत में पंचायती राज

स्वतन्त्रता पूर्व पंचायतों की मजबूती व सुधार हेतु विशेष प्रयास नहीं हुए जिस कारण पंचायती राज व्यवस्था लड़खड़ाती रही। मध्य काल में मुस्लिम राजाओं का शासन भारत के विभिन्न हिस्सों में फैल गया। यद्यपि स्थानीय शासन की संस्थाओं का मजबूती के लिए विशेष प्रयास नहीं किये गये, परन्तु मुस्लिम शासन ने अपने हितों में पंचायतों का काफी उपयोग किया। जिसके फलस्वरूप पंचायतों के मूल स्वरूप को धक्का लगा और वे केन्द्र के हाथों की कठपुतली बन गये। सम्राट अकबर के समय स्थानीय स्वशासन को पुनः मान्यता मिली। उस काल में स्थानीय स्वशासन की इकाइयाँ कार्यशील बनी। स्थानीय स्तर पर शासन के सारे कार्य पंचायतें ही करती थीं और शासन उनके महत्व को पूर्णतः स्वीकार करता था। लेकिन मुस्लिम काल के इतिहास को अगर समग्र रूप में देखा जाए तो इस काल में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को मजबूती नहीं मिल सकी।
ब्रिटिश काल के दौरान भी प्राचीन पंचायत व्यवस्था लड़खड़ाती रही। अंग्रजों शासन काल मे सत्ता का केन्द्रीकरण हो गया और दिल्ली सरकार पूरे भारत पर शासन करने लगी। केन्द्रीकरण की नीति के तहत अंग्रेज तो पूरी सत्ता अपने कब्जे में करके एक-क्षत्र राज चाहते थे। भारत की विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था उन्हें अपने मनसूबों को पूरा करने में एक रुकावट लगी। इसलिये अंग्रेजों ने हमारी सदियों से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की परम्परा व स्थानीय समुदाय की ताकत का तहस-नहस कर शासन की अपनी व्यवस्था लागू की। जिसमें छोटे-छोटे सूबे तथा स्थानीय स्वशासन की संस्थाऐंकमजोर बना दी गयी या पूरी तरह समाप्त कर दी गयी। धीरे-धीरे सब कुछ अंग्रेजी सरकार के अधीन होता गया। सरकार की व्यवस्था मजबूत होती गयी और समाज कमजोर होता गया। परिणाम यह हुआ कि यहाँ प्रशासन का परम्परागत रूप करीब-करीब समाप्तप्राय हो गया और पंचायतों का महत्व काफी घट गया। अंग्रेजी राज की बढ़ती ताकत व प्रभाव से आम आदमी दबाव में था। समाज में असंतोष बढ़ने लगा, जिसके कारण 1909 में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक विकेन्द्रीकरण कमीशन की नियुक्ति की गयी। 1919 में ''मांटेस्क्यू चेम्सफोर्स सुधार''के तहत एक अधिनियम पारित करके पंचायतों को फिर से स्थापित करने का काम प्रान्तीय शासन पर छोड़ दिया। अंग्रेजों की नियत तब उजागर हुई, जब एक तरफ पंचायतों को फिर से स्थापित करने की बात कही गईऔर दूसरी तरफ गाँव वालों से नमक बनाने तकका अधिकार छुड़ा लिया। इसी क्रम में 1935 में

लार्ड वैलिंग्टन के समय भी पंचायतों के विकास की ओर थोड़ा बहुत ध्यान दिया गया लेकिन कुल मिलाकर ब्रिटिशकाल में पंचायतों को फलने-फूलने के अवसर कम ही मिले।

हम नब्बे के दशक में भारत सरकार द्वारा पंचायतों को नया स्वरूप देने के उद्देश्य से भारतीय संविधान में किये गये 73वें संशोधन अधिनियम के बारे में पढ़ेंगे। प्राचीन समय में भी देश के गांवों का पूरा कामकाज पंचायतें ही चलाती थीं। लोग इस संस्था को गहरी आस्था व सम्मान की की दृष्टि से देखते थे, इसलिये इसका निर्णय भी सब को मान्य होता था। इसी धारणा को ध्यान में रख कर व सामान्य व्यक्ति की शासन में भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए पंचायतों को संवैधानिक स्थान देने की आवश्यकता हुई। जिसके लिए संविधान का 73वां संविधान संशोधन किया गया। जिसका विस्तृत अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे।

11.5 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायती राज

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पंचायतों के पूर्ण विकास के लिये प्रयत्न शुरू हुए। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी स्वराज और स्वावलम्बन के लिये पंचायती राज के प्रबलतम समर्थक थे। गाँधी जी ने कहा था-''सच्चा स्वराज सिर्फ चंद लोगों के हाथ में सत्ता आ जाने से नहीं बल्कि इसके लिये सभी हाथों में क्षमता आने से आयेगा। केन्द्र में बैठे बीस व्यक्ति सच्चे लोकतन्त्र को नहीं चला सकते। इसको चलाने के लिये निचले स्तर पर प्रत्येक गाँव के लोगों को शामिल करना पड़ेगा।''गाँधी जी की ही पहल पर संविधान में अनुच्छेद-40 शामिल किया गया। जिसमें यह कहा गया कि राज्य ग्राम पंचायतों को सुदृढ़ करने हेतु कदम उठायेगा तथा पंचायतों को प्रशासन की इकाई के रूप में कार्य करने के लिये आवश्यक अधिकार प्रदान करेगा। यह अनुच्छेद राज्य का नीति निर्देशक सिद्धान्त बना दिया गया। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिये विभिन्न कमीशन नियुक्त किये गये, जिन्होंने पंचायती राज व्यवस्था को पुर्नजीवित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया।

भारत में सन् 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थापित किये गये। किन्तु प्रारम्भ में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को कोई महत्वपूर्ण सफलता नहीं मिल सकी, इसका मुख्य कारण जनता का इसमें कोई सहयोग व रुचि नहीं थी। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सरकारी कामों के रुप में देख गया और गाँववासी अपने उत्थान के लिए स्वयं प्रयत्न करने के स्थान पर सरकार पर निर्भर रहने लगी। इस कार्यक्रम के सूत्रधार यह आशा करते थे कि जनता इसमें आगे आये और दूसरी ओर उनका विश्वास था कि सरकारी कार्यवाही से ही यह कार्यक्रम सफल हो सकता है। कार्यक्रम जनता ने चलाना था, लेकिन वे बनाये उपर से जाते थे। जिस कारण इन कार्यक्रमों में लोक कल्याण के कार्य तो हुए लेकिन लोगों की भागीदारी इनमें नगण्य थी। ये कार्यक्रम लोगों के कार्यक्रम होने के बजाय सरकार के कार्यक्रम बनकर रह गये। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के असफल हाने के कारणों का अध्ययन करने के लिए एक कमेटी गठित की गयी, जिसका नाम बलवन्त राय मेहता समिति था।

11.6 पंचायतों के विकास के लिए गठित समितियाँ

पंचायतों के विकास के लिए समय-समय पर अनेक समितियां गठित की गयी-

11.6.1 बलवंत राय मेहता समिति

1957 में सरकार ने पंचायतों के विकास पर सुझाव देने के लिए श्री बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में यह सिफारिश की गयी कि सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की तुरन्त स्थानपा की जानी चाहिए। इसे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का नाम दिया गया। मेहता कमेटी के अपनी निम्नलिखित शिफारिशें रखी-

1. ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड(ब्लाक) स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद। अर्थात् पंचायतों की त्रिस्तरीय संरचना बनायी जाये।
2. पंचायती राज में लोगों को सत्ता का हस्तान्तरण किया जाना चाहिए।
3. पंचायती राज संस्थाऐं जनता के द्वारा निर्वाचित होनी चाहिए और सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अधिकारी उनके अधीन होने चाहिए।
4. साधन जुटाने व जन सहयोग के लिए इन संस्थाओं को पर्याप्त अधिकार दिये जाने चाहिए।
5. सभी विकास सम्बन्धी कार्यक्रम व योजनाऐं इन संगठनों के द्वारा लागू किये जाने चाहिए।
6. इन संगठनों को उचित वित्तीय साधन सुलभ करवाये जाने चाहिए।

राजस्थान वह पहला राज्य है जहाँ पंचायती राज की स्थापना की गयी। 1958 में सर्वप्रथम पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 02 अक्टूबर को राजस्थान के नागौर जिले में पंचायती राज का दीपक प्रज्जवलित किया और धीरे-धीरे गाँवों में पंचायती राज का विकास शुरू हुआ। सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दिशा में यह पहला कदम था। 1959 में आन्ध्र प्रदेश में भी पंचायती राज लागू किया गया। 1959 से 1964 तक के समय में विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं को लागू किया गया और इन संस्थाओं ने कार्य प्रारम्भ किया। लेकिन इस राज से ग्रामीण तबके के लोगों का नेतृत्व उभरने लगा जो कुछ स्वार्थी लोगों की आँखों में खटकने लगा, क्योंकि वे शक्ति व अधिकारों को अपने तक ही सीमित रखना चाहते थे। फलस्वरूप पंचायती राज को तोड़ने की कोशिशें भी शुरू हो गयी। कई राज्यों में वर्षों तक पंचायतों में चुनाव ही नहीं कराये गये। 1969 से 1983 तक का समय पंचायती राज व्यवस्था के ह्रास का समय था। लम्बे समय तक पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव नहीं करवाये गये और ये संस्थाऐं निष्क्रीय हो गयी।

11.6.2 अशोक मेहता समिति

जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद पंचायतों को मजबूत करने के उद्देश्य से 12 दिसम्बर 1977 को पंचायती राज संस्थाओं में आवश्यक परिवर्तन सुझाने के लिए में श्री "अशोक मेहता" की अध्यक्षता में 13 सदस्यों की कमेटी गठित की गयी। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं मे आई गिरावट के लिए कई कारणों को जिम्मेदार बताया। इसमें प्रमुख था कि पंचायती राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों से बिल्कुल अलग रखा गया है। अशोक मेहता समिति ने महसूस किया कि पंचायती राज संस्थाओं की अपनी कमियां स्थानीय स्वशासन को मजबूती नहीं प्रदान कर पा रही हैं। इस समिति द्वारा पंचायतों को सुदृढ़ बनाने के लिए निम्न सुझाव दिये गये-

1. समिति ने दो स्तरों वाले ढाँचे,जिला परिषद को मजबूत बनाने और ग्राम पंचायत की जगह मण्डल पंचायत की सिफारिश की। अर्थात पंचायती राज संस्थाओं के दो स्तर हों, जिला परिषद व मंडल परिषद।
2. जिले को तथा जिला परिषद को समस्त विकास कार्यों का केन्द्र बनाया जाए। जिला परिषद ही आर्थिक नियोजन करें और जिले में विकास कार्यों में सामन्जस्य स्थापित करें और मंडल पंचायतों को निर्देशन दें।
3. पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचन में जिला परिषद को मुख्य स्तर बनाने और राजनैतिक दलों की सक्रिय भागीदारी पर बल दिया।
4. पंचायतों के सदस्यों के नियमित चुनाव की सिफारिश की। राज्य सरकारों को पंचायती चुनाव स्थगित न करने व चुनावों का संचालन मुख्य चुनाव आयुक्त के द्वारा किये जाने का सुझाव दिया।
5. कमेटी ने यह सुझाव भी दिया कि पंचायती राज संस्थाओं को मजबूती प्रदान करने के लिये संवैधानिक प्रावधान बहुत ही आवश्यक हैं।
6. पंचायती राज संस्थाऐं समिति प्रणाली के आधार पर अपने कार्यों का सम्पादन करें।

7. राज्य सरकारों को पंचायती राज संस्थाओं के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

8. देश के कई राज्यों ने इन सिफारिशों को नहीं माना, अतः तीन स्तरों वाले ढाँचे को ही लागू रखा गया।

इस प्रकार अशोक मेहता समिति ने पंचायती राज व्यवस्था में सुधार लाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण शिफारिशें की, किन्तु ग्राम पंचायतों को समाप्त करने की उनकी शिफारिश पर विवाद पैदा हो गया। ग्राम पंचायतों की समाप्ति का मतलब था, ग्राम विकास की मूल भावना को ही समाप्त कर देना। समिति के सदस्य सिद्धराज चड्डा ने इस विषय पर लिखा कि ''मुझे जिला परिषदों और मंडल पंचायतों से कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु समिति ने ग्राम सभा की कोई चर्चा नहीं की, जबकि पंचायती राज संस्थाओं की आधारभूत इकाई तो ग्राम सभा को ही बनाया जा सकता था।''

11.6.3 जी0वी0के0 समिति

पंचायतों के सुदृढ़ीकरण(विकास)की प्रक्रिया में सन् 1985 में 'जी0वी0के0 राव समिति' गठित की गयी। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को अधिक अधिकार देकर उन्हें सक्रिय बनाने पर बल दिया। साथ ही यह सुझाव भी दिया कि योजना निर्माण और उसके संचालन करने के लिये जिला मुख्य इकाई होना चाहिये। समिति ने पंचायतों के नियमित चुनाव की भी सिफारिश की।

11.6.4 डॉ0 एल0एम0 सिंघवी समिति

1986 में डॉ0एल0एम0 सिंघवी समिति का गठन किया गया। सिंघवी सामिति ने 'गाँव पंचायत'(ग्राम-सभा) की सिफारिश करते हुये संविधान में ही नया अध्याय जोड़ने की बात कही, जिससे पंचायतों की अवहेलना ना हो सके। इन्होंने ने गाँव के समूह बना कर न्याय पंचायतों के गठन की भी सिफारिश की।

11.6.5 सरकारिया आयोग और पी0 के0 थुंगर समिति

1988 में सरकारिया आयोग बैठाया गया, जो मुख्य रुप से केन्द्र व राज्यों के सम्बन्धों से जुड़ा था। इस आयोग ने भी नियमित चुनावों और ग्राम पंचायतों को वित्तीय व प्रशासनिक शक्तियाँ देने की सिफारिश की। 1988 के अंत में ही पी0 के0 थुंगर की अध्यक्षता में संसदीय परामर्श समिति की उपसमिति गठित की गयी। इस समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने की शिफारिश की।

भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्व0 राजीव गाँधी की सरकार ने गाँवों में पंचायतों के विकास की ओर अत्यधिक प्रयास करने शुरू किये। श्री राजीव गाँधी का विचार था कि जब तक गाँवके लोगों को विकास प्रक्रिया में भागीदार नहीं बनाया जाता, तब तक ग्रामीण विकास का लाभ ग्रामीण जनता को नहीं मिल सकता। पंचायती राज के द्वारा वे गाँव वालों केखासकर अनुसूचित जाति, जनजाति तथा महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में बदलाव लाना चाहते थे। उन्होंने इस दिशा में कारगर कदम उठाते हुये 64वां संविधान विधेयक संसद में प्रस्तुत किया। लोक सभा ने 10 अगस्त 1988 को इस विधेयक को अपनी मंजूरी दे दी। मगर राज्य सभा में सिर्फ पांच मतों की कमी रह जाने से यह पारित न हो सका। फिर 1991 में तत्कालीन सरकार ने 73वां संविधान संशोधन विधेयक को संसद में पेश किया। लोक सभा ने 02 दिसम्बर 1992 को इसे सर्व सम्मति से पारित कर दिया। राज्य सभा ने अगले ही दिन इसे अपनी मंजूरी दे दी। उस समय 20 राज्यों की विधान सभाऐं कार्यरत थीं। 20 राज्यों की विधान सभाओं में से 17 राज्यों की विधान सभाओं ने संविधान संशोधन विधेयक को पारित कर दिया। 20 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति ने भी इस विधेयक को मंजूरी दे दी। तत्पश्चात73वां संविधान संशोधन अधिनियम 24 अप्रैल से लागू हो गया।

11.7 तिहत्तरवें संविधान संशोधन की सोच

पंचायतों को मजबूत, अधिकार सम्पन्न व स्थानीय स्वशासन की इकाई के रूप में स्थापित करने हेतु संविधान में 73वां संशोधन अधिनियम एक क्रान्तिकारी कदम है। 73वें संविधान संशोधन के पीछे निम्न सोच है-

- निर्णय को विकेन्द्रीकृत करना तथा स्थानीय स्तर पर संवैधानिक एवं लोकतांत्रिक प्रकिया शुरू करना।
- स्थानीय स्तर पर पंचायत के माध्यम से निर्णय प्रक्रिया, विकास कार्यों व शासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना।
- ग्राम विकास प्रक्रिया के नियोजन, क्रियान्वयन तथा निगरानी में गांव के लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करना व उन्हें अपनी जिम्मेदारी का अहसास कराना।
- लम्बे समय से हासिये पर रहने वाले तबकों जैसे महिला, दलित एवं पिछड़ों को ग्राम विकास व निर्णय प्रक्रिया में शामिल करके उन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ना।
- स्थानीय स्तर पर लोगों की सहभागिता बढ़ाना व लोगों को अधिकार देना।

11.8 तिहत्तरवासंविधान संशोधन अधिनियम

स्वतन्त्रता पश्चातदेश को सुचारू रूप से चलाने के लिये हमारे नीति निर्माताओं द्वारा भारतीय संविधान का निर्माण किया गया। इस संविधान में नियमों के अनुरूप व एक नियत प्रक्रिया के अधीनजब भी कुछ परिवर्तन किया जाता है या उसमें कुछ नया जोड़ा जाता है अथवा हटाया जाता है तो यह संविधान संशोधन अधिनियम कहलाता है। भारत में सदियों से चली आ रही पंचायत व्यवस्था जो कई कारणों से काफी समय से मृतप्रायः हो रही थी, को पुर्नजीवित करने के लिये संविधान में संशोधन किये गये। ये संशोधन तिहत्तरवां व चौहत्तरवां संशोधन अधिनियम कहलाये। तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की गई। इसी प्रकार चौहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के नगरीय क्षेत्रों में नगरीय स्वशासन की स्थापना की गई। इन अधिनियमों के अनुसार भारत के प्रत्येक राज्य में नयी पंचायती राज व्यवस्था को आवश्यक रूप से लागू करने के नियम बनाये गये। इस नये पंचायत राज अधिनियम से त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने व स्थानीय स्तर पर उसे मजबूत बनाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इस अधिनियम में जहाँस्थानीय स्वशासन को प्रमुखता दी गई है व सक्रिय किये जाने के निर्देश हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारों को विकेन्द्रीकरण हेतु बाध्य करने के साथ-साथ वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये वित्त आयोग का भी प्रावधान किया गया है।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम अर्थात 'नया पंचायती राज अधिनियम' प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को जनता तक पहुँचाने का एक उपकरण है। गॉधी जी के स्वराज के स्वप्न को साकार करने की पहल है। पंचायती राज स्थानीय जनता का, जनता के लिये, जनता के द्वारा शासन है।

11.9 तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य बातें

लोकतंत्र को मजबूत करने के लिये नई पंचायत राज व्यवस्था एक प्रशंसनीय पहल है। गांधी जी का कहना था कि 'देश में सच्चा लोकतंत्र तभी स्थापित होगा जब भारत के लाखों गांवों को अपनी व्यवस्था स्वयं चलाने का अधिकार प्राप्त होगा। गांव के लिये नियोजन, प्राथमिकता चयन लोग स्वयं करेंगे। ग्रामीण अपने गांव विकास सम्बन्धी सभी निर्णय स्वयं लेंगे। ग्रामविकास कार्यक्रम पूर्णतया लोगों के होंगे और सरकार उनमें अपनी भागीदारी

देगी।' गांधी जी के इस कथन को महत्व देते हुये तथा उनके ग्राम-स्वराज के स्वप्न को साकार करने के लिये भारतीय सरकार ने पंचायतों को बहुत से अधिकार दिये हैं। तिहत्तरवें संविधान अधिनियम में निम्न बातों को शामिल किया गया है -

1. 73वें संविधान संशोधन के अर्न्तगत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। अर्थात पंचायती राज संस्थाएं अब संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाएं हैं।
2. नये पंचायती राज अधिनियम के अनुसार ग्राम सभा को संवैधानिक स्तर पर मान्यता मिली है। साथ ही इसे पंचायत व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया गया है।
3. यह तीन स्तरों- ग्राम पंचायत, क्षेत्रपंचायत और जिला पंचायत पर चलने वाली व्यवस्था है।
4. एक से ज्यादा गांवों के समूहों से बनी ग्राम पंचायत का नाम सबसे अधिक आबादी वाले गांव के नाम पर होगा।
5. इस अधिनियम के अनुसार महिलाओं के लिये त्रिस्तरीय पंचायतों में एक तिहाई सीटों पर आरक्षण दिया गया है।
6. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिये भी जनसंख्या के आधार पर आरक्षण दिया गया है। आरक्षित वर्ग के अलावा सामान्य सीट से भी ये लोग चुनाव लड़ सकते हैं।
7. पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष तय किया गया है तथा कार्यकाल पूरा होने से पहले चुनाव कराया जाना अनिवार्य किया गया है।
8. पंचायत 06 माह से अधिक समय के लिये भंग नहीं रहेगी तथा कोई भी पद 06 माह से अधिक खाली नहीं रहेगा।
9. इस संशोधन के अन्तर्गत पंचायतें अपने क्षेत्र के अर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण की योजनायें स्वयं बनायेंगी और उन्हें लागू करेंगी। सरकारी कार्यों की निगरानी अथवा सत्यापन करने का भी अधिकार उन्हें दिया गया है।
10. 73वें संशोधन के अर्न्तगत पंचायतों को ग्राम सभा के सहयोग से विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं के अर्न्तगत लाभार्थी के चयन का भी अधिकार दिया गया है।
11. हर राज्य में वित्त आयोग का गठन होता है। यह आयोग हर पांच साल बाद पंचायतों के लिये सुनिश्चित आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर वित्त का निर्धारण करेगा।
12. उक्त संशोधन के अर्न्तगत ग्राम प्रधानों का चयन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा तथा क्षेत्रपंचायत प्रमुख व जिला पंचायत अध्यक्षों का चयन निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना तय है।
13. पंचायत में जबाबदेही सुनिश्चित करने के लिये छः समितियों (नियोजन एवं विकास समिति, शिक्षा समिति तथा निर्माण कार्य समिति, स्वास्थ्य एवं कल्याण समिति, प्रशासनिक समिति, जल प्रबन्धन समिति) की स्थापना की गयी है। इन्हीं समितियों के माध्यम से कार्यक्रम नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जायेगा।
14. हर राज्य में एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई है। यह आयोग निर्वाचन प्रक्रिया, निर्वाचन कार्य, उसका निरीक्षण तथा उस पर नियन्त्रण भी रखेगा।

अतः संविधान के 73वें संशोधन ने नयी पंचायत व्यवस्था के अर्न्तगत न केवल पंचायतों को केन्द्र एवं राज्य सरकार के समान एक संवैधानिक दर्जा दिया है अपितु समाज के कमजोर व शोषित वर्ग को विकास की मुख्य धारा से जुड़ने का भी अवसर दिया है।

11.10 तिहत्तरवें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएं

73वां संविधान संशोधन पंचायती राज से सम्बन्धित है, जिसमें पंचायतों से सम्बन्धित व्यवस्था का पूर्ण विधान किया गया है। इसकी निम्न लिखित विशेषताएं हैं।

1. संविधान में ''ग्राम सभा'' को पंचायती राज की आधारभूत इकाई के रुप में स्थान मिला है।
2. पंचायतों की त्रीस्तरीय व्यवस्था की गयी है। ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, क्षेत्र स्तर पर (ब्लाक स्तर) क्षेत्र-पंचायत व जिला स्तर पर जिला पंचायत की व्यवस्था की गयी है।
3. प्रत्येक स्तर पर पंचायत के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष मतदान के द्वारा की जाने की व्यवस्था है। लेकिन क्षेत्र व जिला स्तर पर अध्यक्षों के चुनाव चुने हुए सदस्यों में से, सदस्यों द्वारा किये जाने की वयवस्था है।
4. 73वें संविधान संशोधन में अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या में उसके प्रतिशत के अनुपात से सीटों के आरक्षण की व्यवस्था है। महिलाओं के लिए कुल सीटों का एक-तिहाई भाग प्रत्येक स्तर पर आरक्षित किया गया है।अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में ही आरक्षण की व्यवस्था है। प्रत्येक स्तर पर अध्यक्षों के कुल पदों का एक-तिहाई भाग महिलाओं के लिए आरक्षित किया गया है।
5. अधिनियम में पंचायतों का कार्यकाल(पांच वर्ष) निश्चित किया गया है। यदि कार्यकाल से पहले ही पंचायत भंग हो जाय तो 06 माह के भीतर चुनाव कराने की व्यवस्था है।
6. अधिनियम के द्वारा पंचायतों से सम्बन्धित सभी चुनावों के संचालन के लिए राज्य चुनाव आयोग को उत्तर दायी बनाया गया है।
7. अधिनियम के द्वारा प्रत्येक राज्य में राज्य वित्त आयोग का गठन किया गया है, ताकि पंचायतों के पास पर्याप्त साधन उपलब्ध हो,जिससे विभिन्न विकास कार्य किये जा सके।

अभ्यास प्रश्न-

1. 73वें संविधान संशोधन का सम्बन्धकिससे है?
2. किससंविधान संशोधन ने पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया?
3. 73वें संविधान संशोधन द्वारा महिलाओं को पंचायतों में कितने प्रतिशत आरक्षण दिया गया है?
4. 1919 के किस सुधार के तहत एक अधिनियम पारित करके पंचायतों को फिर से स्थापित करने का काम प्रान्तीय शासन पर छोड़ दिया?
5. भारत में किस सन् में सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्थापित किये गये?
6. बलवंत राय समिति का गठन कब किया गया?
7. पंचायतों के विकास के लिए गठित किस समिति ने त्री-स्तरीय पंचायती राज की बात कही?
8. वह कौन सा पहला राज्य है,जहाँ पंचायती राज की स्थापना की गयी?
9. राजस्थान के किस जिले में 02 अक्टूबर 1958 को पंचायती राज की शुरूआत की गयी?
10. किस समिति ने पंचायतों की दो स्तरीय व्यवस्था की सिफारिश की थी?
11. 0जी0वी0 राव समिति कब गठित की गयी?
12. किस समिति ने गाँव के समूह बना कर न्याय पंचायतों के गठन की सिफारिश की थी?

11.11 सारांश

वैदिक काल से चली आ रही पंचायत व्यवस्था देश में लगभग मृतप्राय हो चुकी थी, जिसे गाँधी जी, बलवन्त राय मेहता समिति, अशोक मेहता समिति, जी0के0वी0 राव समिति, एल0एम0सिंघवी रिपोर्ट के प्रयासों ने नवजीवन दिया। जिसके फलस्वरूप 73वां संविधान संशोधन विधेयक संयुक्त संसदीय समिति की जाँच के बाद पारित हुआ। 73वें संविधान संशोधन से गाँधी जी के ग्राम स्वराज के स्वप्न को एक नई दिशा मिली है। गाँधी जी हमेशा से गाँव की आत्मनिर्भता पर जोर देते रहे। गाँव के लोग अपने संसाधनों पर निर्भर रह कर स्वयं अपना विकास करें, यही ग्राम स्वराज की सोच थी। 73वें सविधान संशोधन के पीछे मूलधारणा भी यही थी कि स्थानीय स्तर पर विकास की प्रक्रिया में जनसमुदाय की निर्णय स्तर पर भागीदारी हो। 73वां संविधान संशोधन अधिनियम वास्तव में एक मील का पत्थर है जिसके द्वारा आम जन को सुशासन में भागीदारी करने का सुनहरा मौका प्राप्त हुआ है। पंचायतों के माध्यम से हम विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को साकार रूप दे सकते हैं।

73वां संविधान संशोधन स्थानीय स्वशासन को मजबुती प्रदान करने और आम जन की शासन सत्ता में सीधी भागीदारी के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है। 73वें संविधान संशोधन ने ग्राम स्तर पर लोगों को नीति निर्माण की प्रक्रिया में भागीदारी, जनहित के कार्यों में सक्रिय सहयोग का मौका दिया। 73वां संविधान संशोधन ग्राम स्तर पर लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

11.12 शब्दावली

दशक- दस वर्ष का समय, विकेन्द्रीकृत- किसी चीज का केन्द्र या एक स्थान पर न होना, जन कल्याणकारी योजनाऐं-आम लोगों के हित की योजनाएं,सुदृढ़िकरण-सुधार और मजबूत करने की प्रक्रिया,प्रबलतम-मजबूत,स्वावलम्बन-आत्मनिर्भरता,नगण्य-नहीं के बराबर (अनुपस्थित),हस्तांतरण-एक स्थान से दुसरे स्थान पर,त्रीस्तरीय-तीन स्तर पर (गाम पंचायत, क्षेत्र पंचायत व जिला पंचायत)

11.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग्रामीण विकास और पंचायती राज व्यवस्था, **2.** 73वें संविधान संशोधन द्वारा, **3.** 33 प्रतिशत, **4.** मांटेस्क्यू चेम्सफोर्स सुधार, **5.** 1952, **6.** 1960, **7.** बलवंत राय मेहता समिति, **8.** राजस्थान, **9.** नागौर जिला, **10.** अशोक मेहता समिति,**11.** सन् 1985,**12.** सिंघवी समिति

11.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम।
2. पंचायत सन्दर्भ सामाग्री, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर।
3. भारत में पंचायती राज-के0के0 शर्मा।
4. भारत में स्थानीय शासन-एस0आर0 माहेश्वरी।

11.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत में पंचायती राज-के0के0 शर्मा।
2. भारत में स्थानीय शासन-एस0आर0 माहेश्वरी।
3. भारतीय प्रशासन-अवस्थी एवं अवस्थी।

11.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम किससे सम्बन्धित है, इस अधिनियम में मौजुद मुख्य बातों को स्पष्ट करें?
2. पंचायती राज से आप क्या समझते हैं? इसके उत्थान के लिए किए गये प्रयासों पर विस्तृत चर्चा कीजिए।

इकाई- 12 नगरीय शासन का विकास

इकाई की संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 भारत में नगरीय शासन का महत्व
12.3 नगरीय शासन का विकास
12.3.1 प्राचीन भारत में नगरीय शासन
12.3.2 मध्यकालीन भारत में नगरीय शासन
12.3.3 आधुनिक भारत (ब्रिटिश काल) में नगरीय शासन
12.3.3.1 सन् 1687 से 1881 का काल
12.3.3.2 सन् 1882 से 1909 का काल
12.3.3.3 सन् 1927 से 1937 का काल
12.3.3.4 सन् 1937 से 1947 का काल
12.4 स्वतंत्र भारत में नगरीय स्वशासन का विकास
12.4.1 केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों द्वारा गठित समितियां और आयोग
12.4.2 नगरीय विकास मंत्रालय
12.5 सारांश
12.6 शब्दावली
12.7 अभ्यास प्रश्नोंके उत्तर
12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

लोकतंत्र का तात्पर्य यह है कि इस शासन व्यवस्था में लोगों स्वयं अपने स्वामी होते हैं, अर्थात वे स्वयं अपनी समस्याओं के समाधान हेतु स्वयं पर शासन करते हैं। लोककल्याणकारी राज्य की संकल्पना के विकास के साथ ही साथ लोकतंत्र में लोगों की केन्द्रीयता और भी बढ़ गई। राज्य के कार्यक्षेत्र में विस्तार ने इस बात पर विशेष बल दिया कि लोग स्वयं अपनी समस्याओं का समाधान करें, क्योंकि केवल केन्द्र सरकार या राज्य सरकार से हम यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि उनके माध्यम से सभी समस्याओं का ससमय और सठीक समाधान किया जा सके। स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय लोगों के अलावा किसी और के द्वारा सठीक तरीके से कर पाना सम्भव नहीं है। अतः इसके लिए यह आवश्यक हो गया कि हम स्थानीय स्वशासन के माध्यम से न केवल स्थानीय समस्याओं का स्थानीय समाधान निकाले बल्कि इसके माध्यम से लोकतंत्र के जड़ों को और भी अधिक मजबूत बनाए।

स्थानीय स्वशासन की संकल्पना लोकतंत्र के विस्तार के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसे लोकतंत्र का आधार व आधारशिला भी कहा जाता है, क्योंकि यही वह माध्यम है जिसके द्वारा नागरिकों को अपने ही मामले में प्रबन्धन करने का अवसर प्राप्त होता है। भारत में स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं कोई नई नहीं हैं बल्कि

प्राचीनकाल से भारत में स्थानीय स्वशासन किसी न किसी रूप में विद्यमान रही हैं। भारत में, ब्रिटिशकाल में स्थानीय स्वशासन शुरूआत सन् 1687 से मानी जाती है जब मद्रास कॉरपोरेशन की स्थापना हुई। स्वतंत्र भारत में स्थानीय स्वशासन की संरचनाबहुत हद तक ब्रिटिश ढ़ाँचे से मिलती जुलती है। भारत में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को दो वर्गों में विभाजित किया गया है-ग्रामीण और शहरी। ग्रामीण क्षेत्रों में त्रिस्तरीय प्रशासनिक व्यवस्था अपनाई गई है-जिला परिषद्, पंचायत समिति और ग्राम पंचायत जिसे पंचायती राज कहते हैं तथा नगरों में नगर निगम (बड़े नगरों में) और नगरपालिका (छोटे नगरों में) के रूप में स्थापित किया गया है। स्वतंत्र भारत में स्थानीय स्वशासन की इकाइयों का विकास बड़ी ही तीव्र गति से हुआ है। भारत में स्थानीय शासन को संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र व राज्य में शक्तियों के बंटवारे में राज्य सूची के अधीन रखा गया है तथा 1993 में दो संविधान संशोधनों-73वाँ और 74वाँ, के माध्यम से संवैधानिक दर्जा भी प्रदान कर दिया गया है।

लोकतंत्र की सबसे महत्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि यह शक्ति के विकेन्द्रीकरण पर बल देती है और शक्ति के विकेन्द्रीकरण की जब बात होती है तो स्थानीय स्वशासन की संकल्पना महत्वपूपर्ण हो जाती है, जिसके बिना विकेन्द्रीकरण की कल्पना भी नहीं की जा सकती। स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को बृहद रूप से दो वर्गों में विभाजित कर समझा जा सकता है-ग्रामीण स्वशासन तथा शहरी अथवा नगरीय स्वशासन। इस इकाई में हम स्थानीय स्वशासन के अंतर्गत भारत में नगरीय स्वशासन के विकास का अध्ययन करेंगे।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नगरीय स्वशासन के महत्व को जान सकेंगे।
- भारत में नगरीय स्थानीय स्वशासन के विकास को समझ सकेंगे।
- भारत के वर्तमान नगरीय स्थानीय स्वशासन की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।

12.2 भारत में नगरीय शासन का महत्व

भारत में नगरीय शासन का इतिहास बहुत ही पुराना रहा है जिसके सन्दर्भ में पिछली इकाई में चर्चा की जा चुकी है। नगरीय शासन में समय-समय पर कई परिवर्तन भी किए गए,इसलिए नगरीय शासन का इतिहास कई उतार-चढ़ाव से गुजरा है। भारत में लोकतंत्र की स्थापना का आधार कहे जाने वाले स्वशासन की इकाइयों में नगरीय शासन अत्यंत ही महत्वपूर्ण माना जाता रहा है। विकास के दौर में भारत भी विश्व के अन्य देशों के समकक्ष आगे बढ़ रहा है और समय के साथ-साथ भारत में भी शहरों का निरंतर विकास और प्रसार हो रहा है, जिसके कारण नगरीय शासन के अंतर्गत नवीन चुनौतियाँ भी आ रहीं हैं। वर्तमान में भारत में लगभग सौ से भी अधिक नगर निगम, 14 सौ से अधिक नगरपालिकाएं तथा 02 हजार से भी अधिक नगर पंचायत हैं। प्रत्येक पांच वर्ष में 32 लाख से भी अधिक सदस्यों का चुनाव इन निकायों में होता है, जिनमें से लगभग 10 लाख महिला प्रतिनिधि भी हैं। यदि भारत में कुल विधान सभाओं और संसद को मिला लिया जाए तब भी कुल जन प्रतिनिधियों की संख्या मात्र 05 हजार है। अतः नगरीय स्वशासन के निकायों ने बड़े पैमाने पर जन प्रतिनिधित्व को बढ़ावा दिया है। इतना ही नहीं बल्कि वर्तमान में लगभग 30 महिला मेयर हैं, नगरपालिकाओं में 05 सौ से भी अधिक महिला अध्यक्ष है तथा नगर पंचायतों में भी लगभग 650 नगर पंचायत महिलाओं के नेतृत्व में हैं। भारत में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की जनसंख्या क्रमशः 16.2 तथा 8.2 प्रतिशत है और आरक्षण की व्यवस्था के माध्यम से वर्तमान में लगभग 6.6 लाख प्रतिनिधि नगरीय स्वशासन की इकाइयों में निर्वाचित हैं। इन नगरीय स्वशासन की इकाइयों ने न

केवल लोकतंत्र का प्रसार किया है, बल्कि इनके माध्यम से महिलाओं तथा समाज के वंचित वर्गों का सशक्तिकरण भी सम्भव हो सका है। ऐसे में नगरीय शासन के वर्तमान स्वरूप को समझना और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है जिसके लिए सर्वप्रथम नगरीय स्वशासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा इसके विकास को समझना अत्यन्त आवश्यक है। इस इकाई में हम नगरीय स्वशासन के विकास को चरणबद्ध तरीके से समझने का प्रयास करेंगे।

12.3 भारत में नगरीय शासन का विकास

भारत में नगरीय शासन के विकास को समझने के लिए इसे मुख्यतः तीन चरणों में विभाजित करके देखा जा सकता है-प्रथम, प्राचीन भारत में स्थानीय स्वशासन; द्वितीय, मध्यकालीन भारत में स्थानीय स्वशासन; तृतीय, आधुनिक भारत में नगरीय स्थानीय स्वशासन। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रथम तथा द्वितीय चरण में नगरीय स्वशासन के विकास को दर्शाना कठिन हो जाता है जबकि तृतीय चरण में नगरीय स्वशासन के विकास को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, क्योंकि प्रथम दो चरणों में भारत मुख्यतः गाँवों का देश ही था। यद्यपि शहरों के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता परन्तु प्राचीन तथा मध्यकाल में कुछ गिने-चुने नगर ही थे जो अत्यंत ही समृद्ध थे। शहरों का विकास स्पष्ट रूप से ब्रिटिश शासन के अंतर्गत ही हो सका जब ब्रिटिश शासन के द्वारा शहरों के विकास पर बल दिया गया। अतः इकाई के इस भाग में हम प्राचीन भारत तथा मध्य भारत में स्थानीय स्वशासन के विकास को दर्शाने के क्रम में नगरीय स्वशासन की इकाइयों के विकास को समझने का प्रयास करेंगे तथा आधुनिक भारत (ब्रिटिश काल) में नगरीय स्वशासन की इकाइयों के विकास को चरणबद्ध प्रकार से समझने का प्रयास करेंगे।

12.3.1 प्राचीन भारत में नगरीय शासन

रामायण के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में भारत में स्थानीय स्वशासन कितना महत्वपूर्ण और समृद्ध था। उस काल में प्रशासन दो भागों में विभाजित हुआ करता था-'पुर' और 'जनपद'। ग्रामों की गणना जनपद में की जाती थी तथा वहाँ के निवासी 'जानपदा' कहलाते थे। इसके साथ ही 'ग्राम', 'महाग्राम'तथा 'घोष' का भी उल्लेख रामायण में मिलता है। ग्राम के निकट स्थित नगरों को 'पट्टन'कहा जाता था, जो कि उस समय जनपदों के लिए मंडी का काम करते थे। रामायण में 'श्रेणी'तथा 'नैंगम'जैसी संस्थाओं का भी उल्लेख मिलता है, परन्तु उनके संगठन पर विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो पाई है। महाभारत के शांतिपर्व में उल्लिखित है कि शासन की सबसे छोटी इकाई 'ग्राम'होगी, जिसके ऊपर क्रमशः दस, बीस, शत तथा सहस्त्र ग्राम-समूहों की इकाइयाँ होंगी। ग्रामों के अतिरिक्त राज्य में कुछ छोटे व बड़े नगर भी थे। इन नगरों के शासन का अधिकारी अथवा प्रमुख 'चिन्तक'कहलाता था। उसका कार्य अपने अधीनस्थों के कार्यों का निरीक्षण करना था। चिन्तक यह सुनिश्चित करता था कि उसके अधीनस्थों के द्वारा प्रजा के प्रति अन्याय न हो तथा उसका यह भी दायित्व था कि वह प्रजा की रक्षा भी करे। शांतिपर्व में सचिव का भी उल्लेख मिलता है, जो सभी प्रादेशिक अधिकारियों के कार्यों का निर्देशन करता था। ग्राम तथा ग्रामों के प्रधान के साथ ही साथ निगमों व उनके प्रधानों का भी उल्लेख मिलता है।
मनुस्मृति में मनु ने भी स्थानीय स्वशासन के व्यवस्थित स्वरूप पर बल दिया था तथा शासन की शक्तियों एवं कार्यों के विकेन्द्रीकरण के महत्व को स्पष्ट करते हुए इस बात पर बल दिया कि प्रजा में स्वशासन के गुणों का विकास भी होना चाहिए। इसके लिए उन्होंने राजा को एक पृथक उत्तर दायी मंत्री के पद सृजन का भी परामर्श दिया था। कौटिल्य ने अपनी सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र'में नगर के लिए 'पुर'शब्द का प्रयोग किया था तथा पुर के प्रधान अधीक्षक को नागरिक कहा है। नागरिक को नगर की संपूर्ण कानून व्यवस्था तथा प्रशासनिक कार्यों के लिए उत्तर दायी माना है। कौटिल्य ने नगर को कई भागों में विभक्त कर नगर के प्रत्येक एक चौथाई भाग को जिस अधिकारी

के अधीन रखा उसे 'स्थानिक'नाम दिया गया तथा प्रत्येक दस, बीस, चालीस परिवारों पर एक 'गोप'की नियुक्ति की व्यवस्था बताया, जिसका कार्य न केवल इन परिवारों के स्त्री व पुरूषों की जाति, गोत्र, नाम तथा व्यवसाय की जानकारी रखना था, अपितु उनकी आय एवं व्यय की जानकारी रखना भी था। ये स्थानीय संस्थायें सम्राट के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से मुक्त हुआ करती थीं।

चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में भी शासन के विकेन्द्रीकरण की नीति को अपनाया गया। मेगस्थनीज के उस समय के पाटलिपुत्र नगर के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि नगर का कार्यभार पाँच-पाँच सदस्यों की छः समितियों में विभक्त था, जिनका कार्य उचित बाट एवं माप, व्यापार व वाणिज्य का निरीक्षण, जन्म-मृत्यु के अभिलेखों को रखना, विदेशियों का स्वागत-सत्कार, बिक्रीकर की वसूली आदि था। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में दक्षिण भारत में सातवाहन शासनकाल में नगरों व ग्रामों में स्थानीय राजनीतिक संस्थायें हुआ करती थीं। पश्चिमोत्तर भारत के कुषाण व अवन्ति के महाक्षत्रपों तथा गुप्त साम्राज्य के बीच में भद्रगण से लेकर खरपारिक गण तक छोटे-छोटे गणराज्य हुआ करते थे। गुप्तकाल में भी राजतंत्र में अनेक गणतंत्र थे, जो अपने आंतरिक मामलों में काफी हद तक स्वतंत्र हुआ करते थे।

12.3.2 मध्यकालीन भारत में नगरीय शासन

मध्यकालीन भारत में भी स्थानीय स्वशासन प्रचलित था। मध्यकाल का प्रारम्भ जो कि सल्तनत काल कहलाता है, इसमें दिल्ली के सुल्तान को इस बात का ज्ञात था कि इतने बड़े साम्राज्य को एक केन्द्र से संचालित कर पाना सम्भव नहीं है और न ही पूरे साम्राज्य पर सीधा नियंत्रण रख पाना सम्भव है। अतः उस काल में उन्होंने भी अपने साम्राज्य को विभिन्न प्रान्तों में विभाजित किया था। प्रान्त के प्रमुख को 'अमीर'अथवा 'वाली'कहा जाता था। उनका दर्जा अर्ध स्वतंत्र शासक के समकक्ष होता था। अर्थात उनके कार्यों में सम्राठ द्वारा किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। इन प्रान्तों को भी छोटी इकाईयों 'शिक'में विभक्त किया गया था और 'शिक'के प्रमुख को 'शिकदार'कहा जाता था। शिक के उपरान्त छोटी इकाई के रूप में 'परगना'हुआ करती थी और परगने के बाद की इकाई 'मोंगा'अथवा 'गाँव'थी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन भारत में भी प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण पर बल दिया गया था और स्थानीय निकायों को स्वायत्ता भी प्राप्त थी। हालांकि नगरीय शासन और ग्रामीण शासन में विभेद कर पाना कठिन था।

12.3.3आधुनिक भारत (ब्रिटिश काल) में नगरीय शासन

ब्रिटिश शासनकाल में स्थानीय शासन का आरम्भ 1687 से मानी जाती है जब मद्रास में एक नगर निगम की स्थापना की गई। 1687 से उसका इतिहास कई उतार-चढ़ाव से प्रभावित रहा है। हर काल की अपनी एक विष्टिता रही है तथा कुछ निश्चित उद्देश्य रहे हैं।

12.3.3.1 सन् 1687 से 1881 का काल

भारत में नगरीय शासन की प्रारम्भ सन् 1687 से माना जाता है, जब इस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा सन् 1687 में मद्रास में नगर निगम की स्थापना की गई। इसे करों के संग्रह के अलावा दीवानी व फौजदारी मामलों का अभिलेख न्यायालय भी बनाया गया था। सन् 1726 में बम्बई तथा कलकत्ता में भी नगरपालिका निकायों की स्थापना की गई। सन् 1773 में रेग्यूलेटिंग एक्ट के अंतर्गत प्रेसीडेन्सी नगरों में 'जस्टिश ऑफ पीस' की नियुक्ति की गई, जिनका कार्य अपने नगरों की सफाई व्यवस्था और स्वास्थ की व्यवस्थाओं का पर्यवेक्षण करना था। सन् 1793 के अधिकार-पत्र अधिनियम द्वारा इन प्रेसीडेन्सी नगरों में नगर प्रशासन की स्थापना का उत्तर दायित्व गवर्नर जेनरल को सौंपा गया। उसे इस हेतु मद्रास, बम्बई व कलकत्ता में शांति दण्डाधिकारियों को नियुक्त करने का अधिकार भी

दिया गया। सन् 1863 में कलकत्ता में भी नगर निगम की स्थापना की गई। वर्ष 1870 स्थानीय शासन के विकास की दृष्टि से अत्यंत ही महत्वपूर्ण रहा। सन् 1970 के रॉयल चार्टर के माध्यम से भारत के तीनों प्रेसीडेन्सी नगरों मद्रास, बाम्बे तथा कलकत्ता में मेयर कोर्ट की स्थापना की गई। ये कोर्ट प्रशासनिक कम और न्यायिक अधिक थे। सन् 1842 में बंगाल अधिनियम पारित हुआ, जिसके माध्यम से नगर समिति का गठन किया गया। इसका उद्देश्य नगर की सफाई व्यवस्था की देख-रेख करना था, परन्तु यह सफल न हो सका। सन् 1850 में सम्पूर्ण भारत के लिए एक अधिनियम पारित किया गया, जिसका उद्देश्य नागरिकों के आवेदन के आधार पर स्थानीय समितियों का गठन करना था, जो कि स्वास्थ्य तथा अन्य सुविधाओं की व्यवस्था करें। परन्तु यह समिति भी ऐच्छिक ही थी, जो कि स्थानीय लोगों की मांगों के आधार पर बनाई जानी थी।

सन् 1863 में रॉयल आर्मी सेनिटेशन आयोग के द्वारा सरकार का ध्यान शहरों में फैलती गंदगी की ओर आकृष्ट किया गया, जिसके उपरान्त सरकार ने विभिन्न प्रान्तों के गवर्नरों को यह अधिकार सौंप दिया कि वे अपने प्रांत के अधीन आने वाले नगरों में निगमों की स्थापना कर सकते हैं। वे इन निगमों के सदस्य के रूप में न्यूनतम पांच तथा उससे भी अधिक सदस्यों की नियुक्ति कर सकते हैं।

सन् 1870 में लॉर्ड मेयो के प्रस्ताव को प्रकाशित किया गया, जिसमें यह कहा गया कि शासन का विकेन्द्रीकरण करने के लिए प्रान्तों को अधिक शक्तियाँ दी जाये तथा भारतीयों का प्रतिनिधित्व भी बढ़ाया जाए। इस प्रस्ताव के अंतर्गत स्थानीस निकायों में चुनाव कराए जाने के सिद्धान्त को भी लागू करने पर बल दिया गया। इस सिद्धान्त के लागू होने पर न केवल नगरीय स्थानीय स्वशासन को बढ़ावा मिला, बल्कि स्थानीय वित्त की व्यवस्था भी सुनिश्चित की गई। परन्तु व्यवहार में चुनाव के सिद्धान्त को कहीं आंशिक तो कहीं-कहीं पूर्ण रूप से अपनाया गया और अधिकतम मामलों में सदस्य मनोनीत ही किए जाते रहे। यह स्थानीय शासन की व्यवस्था तो कहीं से भी नहीं बन पायी, परन्तु इतना अवश्य सम्भव हो गया कि कुछ स्थानीय प्रबुद्ध वर्गों को सरकार द्वारा मनोनीत कर लिया गया, जिससे स्थानीय समस्याओं का समाधान किया जा सके। परन्तु सरकार पूर्ण रूप से इन निगमों पर अपना नियंत्रण स्थापित किए हुए थी।

लॉर्ड मेयो के प्रस्ताव में शक्तियों के विकेन्द्रीकरण तथा भारतीयों को प्रशासन से सम्बद्ध करने की आवश्यकता पर बल देते हुए इस हेतु नगर प्रशासन को सर्वाधिक उपयुक्त मानकर म्युनिसपल संस्थाओं को सशक्त बनाने का सुझाव दिया गया। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि इस काल में स्थानीय शासन को केन्द्र तथा प्रान्तों के वित्तीय बोझ को हल्का करने का साधन माना जाता रहा और इसी रूप में उसका प्रयोग किया जाता रहा। इस काल में निगमों के विकास को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार की मंशा कहीं से भी स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को सशक्त करना नहीं थी, बल्कि इनका प्रयोग केवल सरकार के हितों में ही किया गया, जिससे सरकार पर पड़ रहे अतिरिक्त वित्तीय बोझ को हल्का किया जा सके। इन इकाइयों में ब्रिटिश लोगों का प्रतिनिधित्व अधिकतम था और भारतीयों को केवल नाममात्र प्रतिनिधित्व दिया गया।

12.3.3.2 सन् 1882 से 1909 का काल

1880 में लार्ड रिपन भारत के वाइसराय बनें। भारत में नगरीय शासन के विकास का अगला चरण लॉर्ड रिपन के प्रसिद्ध प्रस्ताव से होती है जो 18 मई 1882 में दिया गया। इनके शासनकाल का सबसे महत्वपूर्ण कार्य 1882 का स्थानीय स्वशासन का प्रस्ताव था। इस प्रस्ताव को स्थनी स्वशासन के विकास में एक मील का पत्थर माना जाता है। यह भारत में स्थानीय शासन का आधार बना और इसी लिए लॉर्ड रिपन को भारत में स्थानीय शासन का जनक भी माना जाता है। रिपन देश के नगरपालिकाओं को विकसित करना चाहते थे। उसके अनुसार इन्हीं संस्थाओं से देश की राजनीतिक शिक्षा का आरम्भ हो सकता है। इस प्रस्ताव में यह सुझाव दिया गया कि संपूर्ण भारत में

स्थानीय निकायों की जाल बिछा दी जाए; सरकारी प्रतिनिधियों की संख्या कुल प्रतिनिधियों की तिहाई कर दी जाए; वित्तीय विकेन्द्रीकरण कर दिया जाए; तथा चुनाव को स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के गठन का आधार बना दिया जाए। इनका मुख्य उद्देश्य देश के प्रशासन को ही उत्तम बनाना नहीं था, बल्कि राजनीतिक और लोगों की शिक्षा का साधन बनाना भी था। ग्रामीण प्रदेशों में स्थानीय बोर्डों की स्थापना की गई। प्रत्येक जिले में जिला उपविभाग, तालुका अथवा तहसील बोर्ड बनाने की स्वीकृति मिली। इन स्थानीय निकायों को निश्चित कार्य दिए गए और आय के साधन भी चिन्हित कर दिए गए। इन संस्थाओं में गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या अधिक रखे जाने पर बल दिया गया। सरकार के हस्तक्षेप को कम करने के उद्देश्य से आशा की गई कि सरकार इन्हें आदेश न दें बल्कि इनका मार्गदर्शन करे। बोर्ड के अध्यक्ष इन्हीं निकायों के सदस्यों द्वारा चुने जाए। प्रस्ताव को प्रत्येक प्रांत को अपनी परिस्थितियों के अनुसार लागू करने का सुझाव दिया गया। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु 1883-85 के बीच अनेक प्रान्तों में स्थानीय स्वशासन अधिनियम पारित किए गए। प्रारम्भ में लॉर्ड रिपन के इन सुझावों ने नगरीय शासन में बड़े पैमाने पर सुधार लाया। बड़े पैमाने पर चुने हुए प्रतिनिधि व अध्यक्ष अस्तित्व में आए। परन्तु समय के साथ-साथ इन सुधारों पर प्रशासन की रूढ़ीवादिता हावी हो गई। नौकरशाही भारतीयों को स्वशासन के योग्य नहीं समझती थी। लॉर्ड कर्जन ने इन सभी उदारवादी नीतियों का विरोध किया तथा स्थानीय संस्थाओं पर सरकारी नियंत्रण को बढ़ा दिया। लॉर्ड कर्जन की दृष्टि में यह सुधार बहुत अधिक क्रांतिकारी थे, जिनसे प्रशासनिक कुशलता प्रभावित हो रही थी इसलिए उन्होंने राजीनतिक शिक्षा के स्थान पर प्रशासनिक कुशलता को अधिक महत्व दिया। उपायुक्त इन संस्थाओं पर हावी होने लगे जिनके पास इन संस्थाओं पर नियंत्रण और पर्यवेक्षण का अधिकार था। चुनाव भी सफल न हो सके, क्यों कि यह व्यस्क मताधिकार नहीं था। चुनाव में नगर की कुल दो प्रतिशत जनसंख्या ही हिस्सा ले सकती थी। इस प्रकार लॉर्ड रिपन द्वारा किए गए सुधार आंशिक रूप से ही सफल हो सके। लॉर्ड रिपन के शिक्षित करने का सिद्धान्त अधुरा रह गया और पूरा ध्यान प्रशासनिक कार्यकुशलता पर केन्द्रित कर दिया गया। उपायुक्त ही पूरे जिले में प्रभावशाली रह गया। लोगों में इतनी नागरिक चेतना का अभाव दिखा कि वे इन स्वशासन की इकाइयों को भली-भाँति संचालित कर सके। परन्तु लॉर्ड रिपन का योगदान खाली नहीं गया। उनके द्वारा किए गए सुधारों को वर्तमान में भी स्वशासन का आधार माना जाता है।

सन् 1907 में स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में एक नया मोड़ आया जब 'विकेन्द्रीकरण पर रॉयल आयोग' की स्थापना की गई, जिसका कार्य केन्द्र, प्रान्त तथा इसके अधिनस्थ इकाइयों के मध्य वित्तीय व प्रशासनिक सम्बन्धों का अध्ययन करना था। आयोग ने स्थानीय स्वशासन के विषय का गहन अध्ययन किया तथा इनकी विफलता के लिए निम्न निष्कर्ष निकाले-अत्यधिक सरकारी नियंत्रण; मताधिकार का अधिकार का संकुचित होना; अत्यल्प संसाधन; शिक्षा और प्रशीक्षण का अभाव; योग्य और समर्पित लोगों की कमी; सेवाओं पर स्थानीय निकायों का अपर्याप्त नियंत्रण। रॉयल कमीशन ने रिपोर्ट में लिखा कि धन का अभाव ही स्थानीय संस्थाओं के प्रभावशाली ढ़ंग से काम न करने में प्रमुख बांधा बनी हुई है। आयोग ने स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को मजबूत बनाने हेतु अनेक सुझाव दिए।

अतः शक्ति के विकेन्द्रीकरण और क्रमिक लोकतांत्रिकरण के लिए आयोग ने निम्न सिफारिशें की-अध्यक्ष गैर-सरकरी जन प्रतिनिधि हो; अधिकतम सदस्य गैर-सरकारी जन प्रतिनिधि हों; स्वशासन की इकाइयों को अधिक वित्तीय स्वायत्ता तथा बजट पर नियंत्रण प्रदान किया जाए; बड़े नगरपालिकाओं को और भी अधिक शक्ति प्रदान की जाए जिससे वे अधिशासी अधिकारियों के साथ ही साथ शिक्षित स्वास्थ्य अधिकारियों को नियुक्त कर सकें।

1915 में भारतीय सरकार के प्रस्ताव में इन सिफारिशों पर प्रतिक्रिया दी गई। प्रस्ताव में नए करों का सुझाव अस्वीकृत कर दिया गया और आयोग के सुझाव केवल कागज़ी कार्यवाही ही बने रहे। 28 अप्रैल 1915 के प्रस्ताव में भारत सरकार ने इन सुझावों के क्रमिक कार्यन्वयन का सुझाव दिया। पंजाब वह पहला प्रांत था जिसने

सर्वप्रथम रॉयल आयोग की सिफारिशों के आधार पर सन् 1911 में नगरपालिका अधिनियम पारित किया। इसी प्रकार अन्य प्रान्तों ने भी अधिनियम पारित किए। इस अधिनियम के तहत नगरपालिकाओं पर सरकारी नियंत्रण को कम करने, चुनाव की प्रक्रिया को अपनाने तथा चुनाव के माध्यम से अध्यक्ष को चुनने की व्यवस्था की गई थी। परन्तु व्यवहार में नगरीय शासन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया क्यों कि यह भी प्रयास किया गया था कि इसके पूर्व के अधिनियमों के प्रावधानों को पूर्ण रूप से न खारिज किया जाए। 1908 से लेकर 1918 तक चुने गए प्रतिनिधियों की संख्या में बढ़ोत्तरी तो दूर की बात थी, बल्कि इसमें कमी आने लगी थी।भारत शासन अधिनियम 1909 में विधान परिषदों में साम्प्रदायिक मतदान की व्यवस्था की गई थी। 1910 में मुस्लिम लीग ने स्थानीय चुनावों में भी साम्प्रदायिक आधार पर मतदान करवाने की मांग की। कई मामलों में साम्प्रदायिक मतदान को स्वीकार भी कर लिया गया परन्तु इसने स्थानीय शासन की व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डाला जिससे इसका विकास अवरूद्ध हो गया। मई 1918 में मॉन्टफोर्ड सुझाव में कहा गया कि स्थानीय संस्थाओं को प्रतिनिधि संस्था बना दिया जाए। उन पर नियंत्रण कम हो और उन्हें गलतियों से सीखने दिया जाए। रॉयल कमीशन के सुझावों को उन्होंने पृष्ठांकित किया तथा नगरपालिकाओं को कर लगाने के अधिक अधिकार दे दिये गये।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि इस चरण में नगरीय शासन के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिसके कारण लोकतंत्र का प्रसार हुआ और स्थानीय निकायों को वित्तीय दायित्व भी सौंपे गये।

12.3.3.3 सन् 1927 से 1937 तक का काल

इस काल में भारत तथा ब्रिटेन में भारत के स्वतंत्रता संग्राम का दबाव बढ़ता जा रहा था। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार को भारतीय जनता के समर्थन की आवश्यकता थी इसलिए ब्रिटिश सरकार ने 20 अगस्त 1917 की ऐतिहासिक घोषणा की जिसके द्वारा भारतीयों को प्रशासन की प्रत्येक शाखा में भागीदारी का अवसर प्रदान करने की बात की गई तथा स्थानीय शासन के माध्यम से भारत में उत्तर दायी सरकार के निर्माण पर बल दिया गया। सन् 1918 के मॉन्टेग-चेम्सफॉर्ड प्रतिवेदन में स्वशासन को पूर्णतः प्रतिनिधिक और उत्तर दायी बनाए जाने की सिफारिश की गई। इसी आधार पर 16 मई 1918 के भारत सरकार के प्रस्ताव में प्रान्तों को यह सुझाव दिया गया कि नगरपालिका बोर्डों में अधिकतम सदस्य निर्वाचित हों, मतदान के अधिकार को और भी नीचले स्तर तक ले जाया जाए जिससे अधिकतम लोगों को यह अधिकार प्राप्त हो सके और साथ ही साथ इन निकायों का अध्यक्ष भी गैर-सरकारी तथा निर्वाचित हो। क्योंकि अब तक केवल नगरों के छः प्रतिशत लोगों को ही मतदान का अधिकार प्राप्त था तथा दो तिहाई अध्यक्ष सरकारी अधिकारी ही थे। बोर्डों को यह अधिकार दे दिया गया कि वे संवैधानिक दायरे में रहते हुए स्थानीय करारोपण कर सकते हैं परन्तु व्यय बजट द्वारा तय सीमा तक ही की जा सकेगी। उन्हें यह भी अधिकार दे दिया गया कि वे किस मद में कितने राजस्व का व्यय करेंगे उसका निर्धारण वे स्वयं करें। बाहरी नियंत्रण को भी सीमितकर दिया गया। सरकार केवल उन्हीं मामलों में हस्तक्षेप करेगी जब उसे ऐसा प्रतीत होगा कि कोई बोर्ड अपने कार्यों का संचालन करने में अयोग्य हो गई है। अल्पसंख्यकों को पृथक मताधिकार न प्रादन कर उन्हें मनोनीत करने की व्यवस्था को अपना लिया गया। हालांकि पंजाब प्रान्त में इसे अपनाने का प्रयास किया गया परन्तु इस कार्य में असफल होने के बाद पुनः पृथक मताधिकार प्रदान करने की व्यवस्था को अपना लिया गया। इसके पश्चात कई नगरों में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था अपनाई गई।

भारत शासन अधिनियम 1919 ने द्वैध-शासन व्यवस्था को स्थापित किया। स्थानीय स्वशासन को प्रांतीय विधायिका के प्रति उत्तर दायी लोकप्रिय मंत्री के अधीन रख दिया गया। इस अधिनियम के तहत करों की एक सूची तैयार की गई जिसे केवल स्थानीय निकाय ही आरोपित कर सकते थे तथा वे कर केवल स्थानीय निकायों के लिए ही लगाए जा सकते थे। इससे स्थानीय निकायों को और भी अधिक स्वायत्तता प्राप्त हो गई। कई प्रान्तोंमें

नगरपालिका अधिनियमों में संशोधन भी किया गया जिसके द्वारा इन स्थानीय निकायों को और भी अधिक स्वायत्तता प्रदान की गई, निकायों को और भी अधिक प्रतिनिधिक बनाया गया और गैर-सरकारी अध्यक्षों की व्यवस्था भी सुनिश्चित की गई। इन प्रयासों ने निःसंदेह स्थानीय स्वशासन को और भी अधिक लोकतांत्रिक बनाया परन्तु प्रशासनिक कार्यकुशला पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने लगा। कई नगरपालिकाओं पर भ्रष्टाचार के मामले चलने लगे। यह महसूस किया गया कि स्थानीय स्वशासन की इकाइयों में भ्रष्टाचार और कार्यकुशला में गिरावट का मुख्य कारण यह था कि जब इन निकायों को सलाह, मार्गदर्शन और नियंत्रण की आवश्यकता सबसे अधिक थी, तब इन्हें सरकारी नियंत्रण से मुक्त कर दिया गया। अतः प्रशासनिक कार्यकुशलता को बढ़ाने और भ्रष्टाचार पर आवश्यक अंकुश लगाने हेतु प्रांतीय सरकारों को नगरपालिका कार्यकारी अधिकारी का पद सृजित करने के लिए कहा गया। 1920 में 1919 के भारत सरकार अधिनियम लागू होने पर स्थानीय शासन हस्तांतरित विषय बन गया जिसका नियंत्रण लोकप्रिय शक्तियों के अधीन हो गया। केन्द्रीय सरकार ने प्रांतीय सरकारों को इस विषय में निर्देश देने बंद कर दिए और प्रत्येक प्रांत को अपनी-अपनी आवश्यकता अनुसार स्वयत्त संस्थाओं का विकास करने की अनुमति मिल गई। स्थानीय करों व प्रांतीय कारों की सूची को अलग कर दिया गया। परन्तु वित्त अभी भी आरक्षित विषय था, अतः भारतीय मंत्री इस विषय में कुछ नहीं कर सके। स्वशासन की इस क्रियान्विति का मूल्यांकन 1930 में साइमन आयोग ने किया और इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया कि उत्तर प्रदेश, बंगाल व मद्रास के अतिरिक्त तथा ग्राम पंचायतों के क्षेत्र में इन संस्थाओं में कोई उन्नति देखने को नहीं मिली। स्वायत्त संस्थाओं की दशा 1919 के बाद बिगड़ गई है। अतः आयोग ने सुझाव दिया कि इन स्वायत्त संस्थाओं पर सरकार का नियंत्रण बढ़ा देना चाहिए। इस काल में प्रान्तोंद्वारा जो विभिन्न अधिनियम बनाये उनमें मुख्य रूप से निम्नलिखित विशेषताएं थीं-स्थानीय संस्थाओं का गठन प्रायः पूर्णरूप से निर्वाचन के आधार पर रखते हुए निर्वाचक मण्डल का भी विस्तार किया गया; स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के अध्यक्ष पद पर गैर-सरकारी व्यक्ति की नियुक्ति को स्वीकृति दी गई; स्थानीय संस्थाओं को अधिक प्रशासनिक शिक्तयाँ प्रदान की गई; स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को वित्तीय क्षेत्र में पहले से अधिक शक्तियाँ दी गई थीं।

अतः यह देखा जा सकता है कि इस काल में नगरीय स्वशासन के निकायों को लोकतांत्रिक आधार पर संचालित करने के प्रयास किये गये जिससे स्थानीय प्रशासनिक कार्यकुशलता में कमी आई। इस काल में नगरीय निकायों के कार्यपद्धति को न ही पूर्ण रूप से विफल और न ही सफल माना जा सकता है। कुछ प्रान्तों में इन निकायों के द्वारा अच्छा प्रदर्शन किया गया तो कुछ प्रान्तोंमें यह प्रयोग विफल हो गया।

12.3.3.4 सन् 1937 से 1947 तक का काल

इस काल में स्थानीय शासन जीर्णोद्धार तथा पुनर्निर्माण की अवस्था में था। भारत शासन अधिनियम 1935 के तहत प्रांतीय स्वायत्तता ने नगरपालिकाओं को और भी प्रोत्साहन प्रदान किया। इस अधिनियम के माध्यम से प्रान्तों में द्वैद शासन को समाप्त कर दिया गया। स्थानीय सरकार को प्रांतीय विषय के रूप में मान्यता दे दी गई। परन्तु इस अधिनियम में स्थानीय सरकारों के लिए कोई कर की व्यवस्था नहीं की गई थी। इस परिवर्तन से स्थानीय सरकारों को नुकसान हुआ, क्योंकि जिन करों का रोपण पूर्व में पूर्णतयः स्थानीय माना जाता था, उन करों के रोपण का अधिकार भी प्रांतीय सरकारों को मिल गया। इसी दौरान द्वितीय विश्व युद्ध का प्रारम्भ 1939 में हो गया जिसके कारण प्रांतीय स्वायत्तता प्राप्त होने के बावजूद भी स्थानीय निकायों का सशक्तिकरण सम्भव नहीं हो सका, क्योंकि सभी का ध्यान स्थानीय स्वशासन से उठ कर केवल सुरक्षा तक ही सीमित रह गया जिसकी देख-रेख पूर्णरूप से जिला प्रशासन के स्तर से होनी थी। सन् 1947 में ब्रिटिश भारत को छोड़कर चले गए और स्थानीय निकायों का विकास पूर्ण रूप से कर पाने में अक्षम रह गए। 1935 के अधिनियम को 1937 में प्रांतीय भाग में लागू किए जाने

से प्रान्तों में स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को और भी अधिक गति मिली। लोकप्रिय सरकारें वित्त का नियंत्रण करती थीं और इसीलिए इन संस्थाओं को अधिक धन उपलब्ध करा देती थीं, प्रांतीय स्थानीय करों के बीच जो पृथक्कीकरण था वह समाप्त हो गया। लगभग सभी प्रान्तों में स्थानीय संस्थाओं को अधिक कार्यभार दे दिया गया। परन्तु उनकी कर लगाने की शक्तियाँ लगभग वही रहीं, अपितु कुछ कम कर दी गई अर्थात चुंगी बढ़ाने, व्यापारों, व्यवसायों तथा संम्पत्ति पर कर लगाने की शक्तियाँ कम कर दी गई। विकेन्द्रीकरण आयोग की सिफारिशों को अनदेखा कर दिया गया। स्वतंत्रता के समय नये करों को लगाने के लिए प्रान्तीय सरकारों से आज्ञा लेनी आवश्यक थी।

12.4 स्वतंत्र भारत में नगरीय स्वशासन का विकास

15 अगस्त सन्1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। 26 जनवरी सन् 1950 में भारतीय संविधान लागू हुआ, जिसमें भारत को एक सम्प्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में स्थापित किया गया। स्वतंत्र होने के उपरान्त भारत के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि भारतीय लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाया जाए। इस निश्चय से स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के विकास की नवीन आशाएं बंधीं। भारतीय संविधान में स्थानीय स्वायत्त शासन को राज्य सूची के अंतर्गत रखा गया। संविधान के चौथे अध्याय राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अंतर्गत अनुच्छेद-40 में राज्य को निर्देशित किया गया कि वह ग्राम पंचायतों का गठन अधिक अच्छे ढ़ंग से करे और उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में अधिक अच्छे ढ़ग से कार्य करने के लिए समर्थ बनाने की भावना से उन्हें आवश्यक शक्तियाँ प्रादान की जानी चाहिए, परन्तु नगर स्थानीय निकायों के बारे में कोई निर्देश नहीं था। नगर स्थानीय इकाइयों का संदर्भ केवल संविधान की राज्य तथा समवर्ती सूचियों में पाया जाता है। राज्य सूची में क्रमांक 05 पर यह अंकित है, ''स्थानीय शासन अर्थात् स्थानीय स्वशासन अथवा ग्राम प्रशासन हेतु नगरमहापालिकाओं, इम्प्रूवमेंट ट्रस्टों, जिला बोर्ड़ों, खनन बंदोबस्त सत्ताओं तथा अन्य स्थानीय सत्ताओं का गठन तथा शक्तियाँ।''समवर्ती सूची के क्रमांक 20 पर ''आर्थिक तथा सामाजिक नियोजन''अंकित है, जिसके अंतर्गत स्वाभाविक रूप से नगर नियोजन भी आता है। इस प्रकार मूल रूप से संविधान, नगर स्थानीय शासन को राज्यों के अधिकार-क्षेत्र में रखता हैऔर केन्द्र सरकार की भूमिका न्यूनाधिक रूप में परामर्शदाता तथा उत्प्रेरक की है।

स्वतंत्र भारत में एक दशक तक नगरीय शासन के क्षेत्र में महानगरों में नगर निगम तथा छोटे नगरों में नगर परिषद् या नगरपालिकाएं जिस रूप में ब्रिटिश विरासत से प्राप्त हुईं थीं, उसी रूप में निरन्तर क्रियाशील बनी रहीं। यह आशा की जा रही थी कि स्वतंत्र भारत में स्थानीय इकाइयाँ राष्ट्रीय नीतियोंके निर्माण में सहायक सिद्ध होंगी। परन्तु संवैधानिक दर्जा प्राप्त न होने के कारण इसकी शक्तियाँ, कार्य और इसकी भूमिका पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ दशकों तक भी नगरीय स्वशासन की स्थिति कमोबेस वही बनी रही। हालांकि इसमें सुधार के प्रयास जारी रहे। यह बड़े आश्चर्य का प्रश्न है कि नगरीय स्वशासन की इकाइयों का कोई उल्लेख राज्य के नीति-निदेशक तत्वों में भी नहीं किया गया था और न ही योजना आयोग द्वारा इस पर कोई ध्यान दिया गया। सर्वप्रथम तीसरे पंचवर्षीय योजना में इसका जिक्र किया गया। इससे पूर्व प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में केवल यह आलोचना की गई कि नगरीय स्वशासन की इकाइयाँ अपने दायित्वों का निर्वाह करने में सफल नहीं हो पा रही हैं। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत यह विश्वासजताया गया कि नगरीय शासन तथा नगरों की समस्याओं का समाधान नगरीय स्वशासन की इकाइयों के द्वारा ही सम्भव है। नगरों का विस्तार हो रहा है और नगरीय जीवन के स्तर को सुधारने का कार्य इन्हीं इकाइयों के द्वारा सम्भव हो सकता है। तृतीय पंचवर्षीय योजना में नगरीय भूमि के मूल्य नियंत्रण, नगर विकास के लिए मास्टर प्लान, गृह निर्माण हेतु मापदण्ड निर्धारण व विकास कार्यक्रमों के लिए इन संस्थाओं को उत्तर दायी बनाया गया।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में ग्राम-नगर सम्बन्ध समिति तथा नगरीय स्थानीय निकायों के वित्तीय संसाधनों की वृद्धि हेतु मंत्रियों की समिति(Committee on Augmentation of Financial Resources of Urban Local Bodies) द्वारा दिए गए सुझावों पर विचार किया गया कि राज्य सरकार स्थानीय स्तर पर संसाधनों में वृद्धि करने हेतु आवश्यक कदम उठाए। सप्तम् पंचवर्षीय योजना में भी योजना आयोग केवल आलोचक की भूमिका में दिखती है। इस पंचवर्षीय योजना में भी योजना आयोग का यह कहना था कि नगरीय जीवन स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है, जिसका कारण यह है कि नगरीय स्वशासन की इकाइयाँ निष्क्रिय हो गई हैं और वित्तीय संकट के कारण वे अपना कार्य कर पाने में भी सक्षम नहीं हो पा रहीं हैं। परन्तु हम केन्द्र व राज्य सरकारों पर ही दोषारोपण नहीं कर सकते, क्योंकि उनके द्वारा कई प्रयास निरन्तर किये जा रहे हैं जिन्हें निम्नांकित रूप में समझा जा सकता है।

12.4.1 केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा गठित समितियाँ और आयोग

नगरीय स्वशासन की कार्यशैली के अध्ययन हेतु समय-समय पर केन्द्र सरकार द्वारा विभिन्न समितियों व आयोगों का गठन किया गया जो कि निम्नवत् हैं-

1. **स्थानीय वित्तीय जाँच समिति(The Local Finance Enquiry Committee)सन्1949 से 51-** इस समिति के द्वारा यह सिफारिश की गई कि स्थानीय निकायों हेतु कर व्यवस्था अलग से कर दी जाए, जिसमें राज्य अथवा केन्द्र किसी का कोई हस्तक्षेप न हो।
2. **कर जाँच आयोग(The Taxation Enquiry Commission) 1953-54-** इस समिति के द्वारा यह सिफारिश की गई कि नगरीय स्वशासन की इकाइयों का खर्च उनके आय से कहीं अधिक है, इसलिए उनके आय हेतु अलग से कर व्यवस्था सुनिश्चित की जाए जिसपर किसी का कोई हस्तक्षेप न हो।
3. **नगरपालिका कर्मचारियों की प्रशिक्षण समिति(The Committee on the Training of Municipal Employees) 1963-** इस समिति ने प्रशिक्षण पर बल देते हुए नगरपालिका कर्मचारियों के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में यह सुझाव दिया गया कि इसके लिए केन्द्र और राज्य के स्तर पर अलग-अलग प्रशिक्षण संस्थानों की व्यवस्था की जाए। इस सिफारिश को स्वीकार करते हुए केन्द्र सरकार ने मुनिसिपल प्रशासन में प्रशिक्षण और अनुसंधान केन्द्र की स्थापना आई0आई0पी0ए0, नई दिल्ली में कर दी। इसके तुरन्त बाद प्रांतीय प्रशिक्षण और अनुसंधान केन्द्र का निर्माण लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ; उस्मानिया विश्वविद्यालय, हायद्राबाद; इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ शोसल वेलफेयर एण्ड बिजनेस मैनेजमेन्ट, कलकत्ता; तथा ऑल इण्डिया इन्स्टीट्यूट ऑफ लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट, बाम्बे में कर दिया।
4. **ग्रामीण-नगरीय सम्बन्धसमिति(The Rural-Urban Relationship Committee)1963 से 66-** इस समिति का प्रतिवेदन तीन अंकों में आया जिसके तहत विभिन्न मुद्दों पर चर्चा की गई जैसे- नगरीय विकास तथा योजना निर्माण हेतु मशीनरी; नगरीय स्थानीय निकायों की संरचना; नगरपालिका कार्मिकों की व्यवस्था; नगरीय स्थानीय निकायों का वित्त; नगरीय सामुदायिक विकास में जन भागीदारी; राज्य सरकार और नगरीय स्थानीय निकायों के मध्य सम्बन्ध; तथा ग्रामीण-शहरी सम्बन्ध। मुख्यतः इस समिति की सिफारिश यह थी कि ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों के मध्य परस्पर सहयोग और अंतर्निभरता को बढ़ावा दिया जाए।
5. **नगरीय स्थानीय निकायों के वित्तीयसंसाधनों की वृद्धि हेतु मंत्रियों की समिति(The Committee of Ministers on Augmentation of Financial Resources of Urban Local Bodies) 1963-** वित्तीय स्थिति को सुधारने हेतु इस समिति की यह सिफारिश थी कि नगरीय स्थानीय निकायों को करारोपण के लिए क्षेत्र निश्चित कर दिए जाएं; करारोपण के अतिरिक्त आय के श्रोतों

को तैयार किया जाए तथा नगरों के विकास के लिए संवैधानिक नगरीय विकास बोर्डों की स्थापना की जाए।

6. **नगरपालिका कर्मचारियों के सेवा दशा पर समिति(The Committee on Service Conditions of Municipal Employees) 1965 से 68-** इस समिति के यह प्रस्ताव दिया गया कि राज्य के स्तर पर ऐसे कार्मिकों को तैयार किया जाए जो स्थानीय स्वशासन की इकाइयों में भली भाँति कार्य करने योग्य हों तथा उनकी सेवा दशा बेहतर हो जिससे वे अपने कार्य को सुचारू रूप से कर सकें।

उपरोक्त के अतिरिक्त प्रशासनिक सुधार समिति के द्वारा भी नगरीय स्वशासन की इकाइयों को मजबूती देने पर बल दिया गया है। इसी क्रम में कई राज्य सरकारों के द्वारा भी समय-समय पर नगरीय स्वशासन की इकाइयों को सशक्त करने हेतु समितियों का गठन किया गया है। जैसे-असम में सन् 1969 में द फाइनान्सेज ऑफ मुनिसिपल कमिटी; दिल्ली में सन् 1948 में द दिल्ली मुनिसिपल ऑर्गनाइजेशन एन्क्वायरी कमिटी, कमिशन ऑन फाइनेन्सेज ऑफ मुनिसिपल कॉरपरेशन ऑफ दिल्ली, न्यू दिल्ली मुनिसिपल कमिटी 1968; गुजरात में द मुनिसिपल रैस्नलाइजेशन कमिटी 1961; हरियाणा में रिसोर्स कमिटी (लोकल बॉडिज) 1988, मुनिसिपल ग्रान्ट्स कमिशन। इसी प्रकार केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़िसा, पंजाब, तमिलनाडु आदि में भी कई समितियों और आयोगों का गठन किया गया जिसके माध्यम से नगरीय स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को सशक्त करने का प्रयास किया गया।

इसी क्रम में स्थानीय स्वशासन के केन्द्रीय परिषद् का भी नाम उल्लेखनीय है। 1948 में केन्द्रीय स्वस्थ्य मंत्री की अध्यक्षता में केन्द्र सरकार के स्वस्थ्य मंत्रालय ने एक संगोष्ठी का आयोजन किया जिसमें यह प्रस्ताव पारित हुआ कि प्रत्येक वर्ष सभी राज्यों के स्थानीय स्वशासन मंत्री एक साथ संगोष्ठी का आयोजन करेंगे। स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद् का गठन राष्ट्रपति द्वारा 1954 में किया गया जिसकी अध्यक्षता पहले केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री करते थे (वर्तमान में नगरीय विकास मंत्री करते हैं) तथा उसके अन्य सदस्य सभी राज्यों के स्थानीय स्वशासन मंत्री होते हैं।

इसका कार्य स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करना; स्थानीय स्वशासन के विधायी मामलों से जुड़े सुझाव देना; स्थानीय इकाइयों के वित्तीय संरक्षण हेतु केन्द्र को सुझाव देना;तथा विभिन्न राज्यों में नगरीय स्वशासन की इकाइयों के कार्यों की विवेचना करना है। इसके अतिरिक्त केन्द्र तथा राज्य सरकारों के द्वारा नगरीय स्वशासन की इकाइयों के सशक्तिकरण हेतु समय-समय पर विभिन्न बैठकों, संगोष्ठियों तथा सेमिनारों का आयोजन भी किया जाता रहा है जैसे-द कान्फरेंसेस ऑफ ऑल इण्डिया कॉउन्सिल ऑफ मेयर्स; द मुनिसिपल कमिस्नर्स कान्फरेंस; कान्फरेंस ऑफ स्टेट मिनिस्टर्स ऑफ लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट इत्यादि।

12.4.2 नगरीय विकास मंत्रालय

सन् 1985 में स्थापित नगरीय विकास मंत्रालय नगरीय स्वशासन के क्षेत्र में एक मील का पत्थर साबित हुआ। शुरूआत में नगरीय शासन स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीन रखा गया था। 1958 तक स्वास्थ्य मंत्रालय ही ग्रामीण व शहरी शासन की देखरेख करता था। सन् 1958 में इसे सामुदायिक विकास मंत्रालय के अधीन रख दिया गया। सन्1966 में नगरीय विकास को ''Works and Housing''मंत्रालय के अधीन किया गया जो आगे चल कर ''Ministry of Works, Housing and Urban Development''बन गया। 1967 में नगरीय शासन को पुनः स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीन रखकर इसका नामकरण ''Ministry of Health, Family Planning, Works, Housing and Urban Development'' के रूप में कर दिया गया। 1973 में इसे ''Ministry of Works and Housing''के अधीन कर दिया गया और अंततः इस हेतु अलग से एक मंत्रालय 1973 में गठित किया गया।

परन्तु नगरीय स्वशासन की समस्याओं का अंत तब तक सम्भव नहीं था, जब तक कि इसे संवैधानिक मान्यता न प्राप्त हो। इस क्रम में सन् 1989 में संसद में नगरपालिका बिल प्रस्तुत किया गया जो कि लोक सभा में तो पारित हो गया परन्तु राज्य सभा में पारित न हो सका। इसके उपरान्त पनुः प्रयास कर सन् 1992 में 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के रूप में यह पारित हो सका जिसने नगरीय स्वशासन को संवैधानिक मान्यता प्रदान कर दी।

अभ्यास प्रश्न-

1. ब्रिटिश शासनकाल में स्थानीय शासन का आरम्भ कब से माना जाता है?
2. भारत में नगरीय स्थानीय स्वशासन को कब संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ?
3. नगरीय विकास मंत्रालय की स्थापना कब हुई?
4. किस भारत शासन अधिनियम के तहत प्रांतीय स्वायत्तता की बात की गई?

12.5 सारांश

भारत में स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के विकास का इतिहास बहुत ही लम्बा रहा है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक इसके रूप में बहुत परिवर्तन आया है। परन्तु ब्रिटिश काल में स्थानीय स्वशासन की इकाइयों का विकास जिस रूप में हुआ उसने स्वतंत्र भारत के स्थानीय स्वशासन की नींव रखी और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चातनगरीय स्थानीय स्वशासन अपने मूल रूप में विकसित होने से पूर्व कई उतार-चढ़ाव से गुजरा। विभिन्न समितियों के सिफारिशों, संगोष्ठियों और प्रयासों के आधार पर नगरीय स्थानीय स्वशासन की इकाइयों का विस्तार हुआ और अंततः इसे एक संवैधानिक रूप प्रदान किया जा सका।

12.6 शब्दावली

लोककल्याणकारी राज्य- जनता की भलाई करने वाली सरकार, समृद्ध- सम्पन्न, दोषारोपण- आरोप लगाना

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1687, **2.** 1992, **3.** 1985, **4.** 1935

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रदीप सचदेवा, लोकल गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, डोर्लिंग किंडरश्ली (इण्डिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2011
2. जयाल, एन0जी0 और प्रताप भानू मेहता, पॉलिटिक्स इन इण्डिया, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2010
3. प्रदीप सचदेवा, डाइनेमिक्स ऑफ मुनिशिपल गर्वनमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1991
4. बर्थवाल,सी0पी0, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2010
5. जोशी, आर0पी0 और अरूणा भारद्वाज, भारत में स्थानीय प्रशासन, शील सन्स, जयपुर, 1999

12.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. खन्ना, आर0 एल0, मुनिसिपल गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, मोहिन्द्रा कैपिटल पब्लिसर्श, चंड़ीगढ़, 1967

2. शर्मा, एस0के0 तथा वी0एन0 चावला, मुनिसिपल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डियाः सम रिफलेक्शन्स, इनटर्नेशनल बुक को0, जालंधर, 1975
3. कौशिक, एस0के0, लीडरशिप इन अर्बन गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1986
4. मुतालिब, एम0ए0 और एन0 उमापथि, अर्बन गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, रिजनल सेन्टर फॉर अर्बन एण्ड इन्वार्नमेन्टल स्टडीज, हैद्राबाद, 1981
5. चतुर्वेदी, टी0वी0, सिविक कन्सेसनेश,आई0आई0पी0ए0, नई दिल्ली, 1979

12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश काल में स्थानीय स्वशासन के विकास पर प्रकाश डालिए।
2. स्वतंत्र भारत में स्थानीय स्वशासन के विकास का वर्णन कीजिए।
3. नगरीय स्वशासन के महत्व का वर्णन कीजिए।

इकाई- 13 नगरीय शासन

इकाई की संरचना

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 चौहतरवें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएं
13.3 नगर पंचायत
13.4 नगर परिषद
13.5 नगर निगम
13.6 अन्य नगर निकाय
    13.6.1 अधिसूचित क्षेत्र समिति
    13.6.2 छावनी मण्डल
    13.6.3 एकल उद्देश्यीय अभिकरण
13.7 चौहतरवें संविधान संशोधन अधिनियम की व्यवस्थाएं
13.8 सारांश
13.9 शब्दावली
13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.13 निबन्धात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

भारत बड़ी ही तीव्र गति से आधुनिकीकरण और शहरीकरण की ओर बढ़ रहा है, जबकि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय और कई दशकों तक भारत को गावों का देश कहा जाता था। आधुनिकीकरण ने भारत की तस्वीर ही बदल डाली है। जिन क्षेत्रों में पहले गाँव देखे जाते थे, वे भी आज शहरों में बदलते जा रहे हैं। देश की अधिकतम जनसंख्या गाँवों से शहरों की ओर पलायन कर रही है। गाँवों में मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और सुख-सुविधा के साधन भी दुर्लभ होते हैं। गाँवों में सबसे बड़ी समस्या मुद्रा और रोजगार की होती है, क्योंकि ग्रामीण इलाकों में अनाज, दलहन, तेल आदि रोजमर्रा के जीवन में उपयोगी समझे जाने वाले संसाधन तो प्रचूर मात्रा में उपलब्ध होते है परन्तु ग्रामीण लोगों के पास पैसों की भारी कमी होती है और रोजगार के अवसर भी लगभग शून्य ही होते हैं। इन समस्याओं का समाधान शहरों में आकर ही सम्भव हो पाता है। अतः भारी संख्या में गाँव के लोगों का शहरों की ओर पलायन होता है। इस पलायन के कारण शहरों की जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होती रहती है और कई छोटे-छोटे ग्रामीण बाजार भी शहरों में तब्दील होने लगते हैं। ऐसे में शहरों पर बढ़ते दबाव और शहरों की बढ़ती संख्या को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि लोकतंत्र का प्रसार शहरों में भलीभँति हो सके, जिससे शहरों में वे मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सकें, जिनकी खोज में शहरों की तरफ गाँव के लोगों के द्वारा पलायन होता है। शहरों में इन मूलभूत सुविधाओं को सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को सशक्त किया जाए, जिससे स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर किया जाना सम्भव हो सके।

शहरी स्थानीय स्वशासन की इकाइयों की प्रकृति एवं उनका प्रकार ब्रिटिश शासन की धरोहर मानी जा सकती है। भारत में स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक विकास का महत्वपूर्ण अंश भी माना जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात स्थानीय स्वशासन को राज्य सूची के अंतर्गत रखा गया। अतः भारत के सभी राज्यों में शहरी स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं की संख्या एवं संगठन समान नहीं रही, यद्यपि इन निकायों में कुछ सामान्य विशेषताएं थीं। तृतीय पंचवर्षीय योजना में राज्य सरकारों से नगरों में स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को विकसित करने हेतु वांछनीय स्त्रोत जुटाने में सहायता करने एवं अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण की अपेक्षा की गई थी। शहरों में भूमि के मुल्यों पर नियंत्रण, शहरी विकास हेतु मास्टर प्लान, गृह निर्माण हेतु मानदण्ड निर्धारित करने का उत्तर दायित्व नगरीय स्थानीय संस्थाओं को सौंपा गया। नगरीय स्थानीय प्रशासन की प्रशासकीय कुशलता बढ़ाने हेतु सुझाव देने के लिए भारत सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न समितियाँ गठित की गईं व उनके सुझावों से राज्य सरकारों को अवगत कराया गया।

लेकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में शहरों के नागरिकों को अपने स्वयं के मामलों का प्रशासन संचालित करने के लिए स्वशासन के व्यापक अधिकार देने हेतु नगरीय संस्थाओं के अधिक सशक्त बनाने एवं संवैधानिक दर्जा देने के लिए भारतीय संविधान में 74वाँ संशोधन किया गया जो 01 जून 1993 से लागू हो गया है। 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारतीय संविधान में एक नया भाग 9 क 'नगरपालिका'जोड़ दिया गया है। इन संस्थाओं का उल्लेख 243 वें अनुच्छेद में है। 74वें संविधान संशोधन में तीन प्रकार के नगरीय निकायों के गठन की व्यवस्था की गई-नगर पंचायत,नगर परिषद तथा नगर निगम। परन्तु इस अधिनियम में भी कई ऐसे प्रावधान हैं जो कि राज्यों हेतु छोड़ दिया गया है। राज्य उक्त के सम्बन्ध में अपनी सुविधा के अनुसार कुछ नियमों का निर्माण कर सकते हैं जैसे-महिलाओं के आरक्षण के सम्बन्ध में 74वें संविधान संशोधन में कुल सीटों की एक तिहाई सीटें महिलाओं हेतु आरक्षित रखने की बात की गई है, किन्तु कुछ राज्यों ने इससे आगे बढ़ते हुए महिलाओं को 50 प्रतिशत तक आरक्षण प्रदान किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि 74वें संविधान संशोधन के प्रावधान एक प्रतिमान के रूप में स्थापित किए गए हैं जिनके आधार पर ही राज्यों के द्वारा नगरीय स्वशासन की इकाइयों का संचालन किया जाना है। इस इकाई में हम सर्वप्रथम 74वें संविधान संशोधन की विशेषताओं का वर्णन करेंगे। उसके उपरान्त नगरीय स्वशासन की उपरोक्त इकाइयों का अध्ययन करेंगे तथा 74वें संविधान संशोधन के अंतर्गत नगरीय स्वशासन की व्यवस्था को विस्तार से समझेंगे।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- 74वें संविधान संशोधन के मुख्य लक्षणों को जान सकेंगे।
- 74वें संविधान संशोधन के उपरान्त भारत में नगरीय शासन के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- 74वें संविधान संशोधन के उपरान्त नगरीय शासन में आए बदलाव को जान सकेंगे।

13.2 चौहतरवें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएं

74वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताओं को समझने के लिए इसे निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत रखा जा सकता है-

1. नगरपालिकाओं को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है-नगर पंचायत जो कि ग्रामीण से शहरी क्षेत्र की ओर संक्रमण कर रहे संक्रमाणकालीन क्षेत्र होते है; नगर परिषद् छोटे शहरी क्षेत्र होते है; तथा नगर निगम बड़े शहरी क्षेत्र होते हैं।
2. सदस्यों के निर्वाचन के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। शहर की जनसंख्या के अनुपात में अनुसुचित जाति एवं जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रखे जाते हैं। इनमें एक तिहाई स्थान अनुसूचित जाति एवं जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित होते हैं तथा सम्पूर्ण सदस्यों का एक तिहाई स्थान भी महिलाओं के लिए आरक्षित होते हैं। अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है, परन्तु यदि राज्य चाहे तो अन्य पिछड़ा-वर्ग के लिए आरक्षण का प्रावधान कर सकते हैं।
3. नगरपालिकाओं का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित कर दिया गया है। कार्यकाल समाप्त होने के छः माह पूर्व ही नई नगरपालिका का चुनाव सम्पन्न कराए जाने की व्यवस्था है।
4. नगरपालिकाओं का चुनाव सम्पन्न कराने का उत्तर दायित्व राज्य निर्वाचन आयोग पर छोड़ा गया है।
5. नगरपालिका के अध्यक्ष पद पर अनुसुचित जाति, अनुसुचित जनजाति एवं महिलाओं का स्थान किस प्रकार आरक्षित रहेगा, इसका निश्चय राज्य सरकार द्वारा कानून बनाकर किया जाएगा।
6. संविधान संशोधन में 12वीं अनुसूची जोड़ दी गई है जिसमें नगरपालिकाओं द्वारा सम्पन्न किये जानेवाले विभिन्न प्रकार के कार्यों की सूची निश्चित कर दी गई है, जैसे-नगर योजना सहित शहरी योजना, आर्थिक एवं सामाजिक विकास के कार्यक्रम, सड़क एवं पुल, जल आपूर्ति, जनस्वास्थ्य इत्यादि।
7. अनुच्छेद-243म, में यह उपबंधित किया गया है कि अनुच्छेद-243झ, के अधीन गठित वित्त आयोग नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति का भी पुनर्विलोकन करेगा और अपनी सिफारिशें राज्यपाल को देगा।
8. जिला योजना के लिए समिति की स्थापना की व्यवस्था दी गई। इसके अनुसार प्रत्येक राज्ये में जिले के स्तर पर एक जिला योजना समिति का गठन किया जाएगा, जो जिले में पंचायतों और नगरपालिकाओं द्वारा बनाई गई योजनाओं को समेकित करेगी और पूरे जिले के लिए विकास योजना के लिए प्रारूप तैयार करेगी।
9. राज्य विधान-मण्डल विधि निर्माण द्वारा नगरपालिकाओं के लिए राज्य की संचित निधि में से सहायता अनुदान दे सकता है।
10. नगरपालिकाओं के निर्वाचन के मामले में न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक लगाई गई है।

13.3 नगर पंचायत

नगर पंचायत के सम्बन्ध में जानने के लिए आईये निम्नांकित बिन्दुओं का अध्ययन करते हैं-

1. **नगर पंचायत का गठन-** एक लाख तक जनसंख्या वाले संक्रमणकालीन क्षेत्र अर्थात जो न पूरी तरह ग्राम हैं और ना पूरी तरह शहर अपितु ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र बनने की प्रक्रिया में हैं, उनमें नगर पंचायत के गठन की व्यवस्था की गई है। यह पूर्व में प्रचलित कस्बा क्षेत्र समिति का ही रूप है। संक्रमण क्षेत्र का निर्धारण राज्यपाल द्वारा जनसंख्या के अतिरिक्त जनसंख्या के घनत्व, राजस्व, गैर-कृषि कार्यों में नियोजन के प्रतिशत, आर्थिक महत्व इत्यादि के आधार पर किया जा सकता है। राजस्थान में ऐसे क्षेत्रों को नगरपालिका कहा जाता है तथा अध्यक्ष/ सभापति को नगरपालिका अध्यक्ष कहा जाता है।
2. **नगर पंचायत की संरचना-** 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में व्यवस्था की गई है कि किसी नगरीय निकाय के सभापति का निर्वाचन राज्य विधान मण्डल द्वारा निर्धारित रीति के अनुसार किया जाता है। इस अधिनियम के अनुसार सभी स्थानों की पूर्ति प्रत्यक्ष निर्वाचन के द्वारा किया जाना है। प्रत्येक नगरपालिका

क्षेत्र को इस हेतु विभिन्न वार्डों में विभक्त किया जाता है। राज्य सरकार यदि चाहे तो नगरीय प्रशासन का विशिष्ट ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों, उस क्षेत्र के लोकसभा, राज्य सभा, विधान सभा या विधान परिषद के सदस्यों को भी स्थान दे सकती है। अनुसुचित जाति व जनजातियों के लिए उस नगर निकाय क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में स्थानों का आरक्षण किया गया है। कुल आरक्षित स्थानों में से एक तिहाई स्थान इन वर्गों की महिलाओं के लिए भी आरक्षित रखे गए हैं। इसी प्रकार नगर निकाय क्षेत्र के प्रत्यक्ष चुने जाने वाले स्थानों में से एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए, अनुसूचित जाति व जनजातियों की महिलाओं के आरक्षण सहित, आरक्षित किए गए हैं। सभी आरक्षित स्थानों को चक्रानुक्रम से नगर निकाय क्षेत्र में आरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है। अधिनियम में यह भी व्यवस्था है कि राज्य सरकार कानून बनाकर नगर निकायों के अध्यक्ष/ सभापति के पद पर भी अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित कर सकती है। अन्य पिछड़े वर्गों के आरक्षण का प्रावधान करने का अधिकार भी राज्य सरकारों को ही दे दिया गया है।

74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा पूरे देश में नगर निकायों का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित किया गया है। यदि इस अवधि से पूर्व किसी नगर निकाय को भंग किया जाये तो उसे पूर्व में सुनवाई का समुचित अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक है। भंग किये जाने पर 06 माह की अवधि में पुनः चुनाव कराने आवश्यक होंगे। ऐसी स्थिति में नव-निर्वाचित नगर निकाय केवल शेष अवधि तक ही कार्य करेगा। यदि भंग किये जाने के समय शेष अवधि छः माह से कम है तो नवीन निर्वाचन करना आवश्यक नहीं होगा।

3. **नगर पंचायत की कार्य, शक्तियाँ व उत्तरदायित्व-** नगर पंचायत एक निगमित निकाय है। नगरीय निकायों को सौंपे जाने वाले कार्यों को 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में एक नई अनुसूची 12वीं अनुसूची जोड़कर सूचीबद्ध किया गया है। इसके अतिरिक्त संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए किसी राज्य का विधान मण्डल विधि द्वारा नगर निकायों को ऐसी शक्तियाँ व प्राधिकार प्रदान कर सकता है जो उनको स्वशासन की संस्था के रूप में आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करना व ऐसे कार्यों का निष्पादन करना सम्मिलित है जो उन्हें सौंपे जायें। राज्य विधान-मण्डल द्वारा नगर निकायों को विधि द्वारा करों, शुल्कों, पथकरों और फीसों के उद्ग्रहण, संग्रह एवं विनियोग के लिए भी प्राधिकृत किया जा सकता है।

13.4 नगर परिषद

नगर परिषद के सम्बन्ध में विस्तार से जानने के लिए निम्नाकित बिन्दुओं का अध्ययन करते हैं-

1. **नगर परिषद का गठन-** 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा नगर परिषदों की स्थापना की व्यवस्था छोटे नगरों में की गई जो महानगर की श्रेणी में नहीं आते अर्थात् ये एक लाख से अधिक तथा 05 लाख तक की जनसंख्या वाले लघु शहरी क्षेत्र हैं।
2. **नगर परिषद की संरचना-** नगरपरिषदों के सभी स्थानों की पूर्ति प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा की जाती है, जिस हेतु समस्त नगर परिषद प्रादेशिक क्षेत्र को वार्डों में विभाजित किया जाता है। वार्डों के प्रतिनिधि को पार्षद कहते हैं। नगर परिषद के अध्यक्ष के निर्वाचन की विधि राज्य विधान मण्डलों की इच्छा पर आधारित होती है। नगर परिषद में भी नगर पंचायतों/नगरपालिकाओं के समान ही अनुसुचित जातियों, जनजातियों, महिलाओं एवं पिछड़े वर्गों के आरक्षण के प्रावधान किए गए हैं। नगर परिषद का कार्यकाल भी पांच वर्ष निर्धारित किया गया है। कार्यकाल सम्बन्धी अन्य प्रावधान भी नगर पंचायत अथवा पालिकाओं के

समान ही हैं। कार्य, शक्तियों और उत्तर दायित्व की भी एक समान व्यवस्था है। नगर परिषद की संरचना में परिषद,अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष,अधिशासी अधिकारी एवं आयुक्त और समितियाँ आती हैं।

3. **नगर परिषद की कार्य, शक्तियाँ एवं उत्तर दायित्व-** नगर परिषदों को एक निगमित निकाय माना गया है अर्थात् इसे शाश्वत उत्तराधिकार प्राप्त होता है। यह सम्पत्ति का क्रय तथा विक्रय कर सकती है। इसकी एक सामान्य मोहर भी होती है। यह किसी के विरूद्ध वाद ला सकती है तथा इसके विरूद्ध भी वाद लाया जा सकता है। नगर परिषद पर राज्य सरकार का नियंत्रण और पर्यवेक्षण रहता है।
   नगर परिषदों के कार्य 12वीं अनुसूची में सूचीबद्ध कार्यों के क्षेत्राधिकार तक है। राज्य विधान मण्डल इन्हें ऐसी शक्तियाँ व उत्तर दायित्व सौंप सकता है, जो इन्हें स्वशासन की संस्थाओं के रूप में विकसित करे। राज्य विधानमण्डल इन्हें सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास के लिए योजनाएं तैयार करने एवं इस हेतु कार्यों के सम्पादन हेतु भी निर्देशित कर सकता है। इन्हें फीसों, शुल्कों, पथकरों के उद्ग्रहण, संग्रह एवं विनियोग हेतु प्राधिकृत किया जा सकता है। इन पर राज्य सरकार का नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण भी रहता है।

13.5 नगर निगम

नगर निगम के सम्बन्ध में जानने के लिए आईये निम्नांकित बिन्दुओं का अध्ययन करते हैं-

1. **नगर निगम का गठन-** नगर निगम स्थानीय स्वशासन की शीर्षस्थ इकाई है, परन्तु नगरीय स्थानीय शासन का संगठन ग्रामीण स्थानीय शासन की भाँति सांगठनात्मक नहीं है। निगम अन्य स्थानीय निकायों की तुलना में सर्वाधिक सम्मानीय हैं तथा यह अन्य नगर निकायों की तुलना में अधिक स्वयत्ता का उपयोग भी करता है। 74वें संविधान संशोधन द्वारा 05लाख से अधिक जनसंख्या वाले बृहत् शहरी क्षेत्रों में निगम की स्थापना की व्यवस्था की गई है। राज्यों में निगमों की स्थापना राज्य विधान मण्डल के अधिनियम द्वारा की जाती है। निगम का प्रमुख महापौर या मेयर कहलाता है। राज्य सरकार को नगर पंचायत तथा नगर परिषद की भाँति निगमों पर भी नियंत्रण व पर्यवेक्षण रखने का अधिकार होता है। राज्य विधान मण्डल के अधिनियम में निगम की संरचना, शक्तियों, विभिन्न अधिकारियों व विभागों के मध्य शक्तियों के वितरण व निगम के भौगोलिक सीमाओं के विवरण का उल्लेख रहता है।
2. **नगर निगम की संरचना-** 05 लाख से ऊपर जनसंख्या होते हुए भी किसी नगर में नगर निगम की स्थापना की जाये अथवा नहीं, यह सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल द्वारा जनसंख्या के घनत्व, राजस्व, गैर-कृषि कार्यों में नियोजन के प्रतिशत, आर्थिक महत्व, इत्यादि के आधार पर, जैसा वे ठीक समझें, लोक अधिसूचना के द्वारा निर्देशित कर सकते हैं। किसी भी नगर निगम के संगठन में निम्नलिखित चार घटक होते हैं-परिषदया बोर्ड,मेयर तथा उपमेयर अथवा महापौर तथा उपमहापौर, निगम आयुक्त और समितियाँ।74वें संविधान संशोधन द्वारा नगर निगमों का कार्यकाल पूरे देश में एक समान 05 वर्ष निर्धारित किया गया है। नगर निगमों में निर्वाचन की व्यवस्था तथा कार्यकाल सम्बंधी अन्य प्रावधानों की व्यवस्था अन्य नगरीय निकायों के समान ही 74वें संविधान संशोधन द्वारा रखी गई है।
3. **नगर निगम की कार्य, शक्तियाँ एवं उत्तर दायित्व-** नगर निगम एक कानूनी निकाय होता है। इसकी अपनी एक मोहर होती है। इसे शाश्वत उत्तराधिकार प्राप्त होता है। इसे सम्पत्ति क्रय एवं विक्रय का अधिकार होता है तथा यह किसी के विरूद्ध 'वाद' ला सकता है। नगर निगमों को वे ही कार्य सम्पन्न करने होते हैं जो राज्य विधान मण्डल द्वारा निगम निर्माण अधिनियम में उल्लेखित होते हैं। विभिन्न राज्यों में निगमों के कार्यों, शक्तियों व स्वायत्तता में भिन्न्ता है, यद्यपि एक सामान्य आधार मानकर ही निगमों को कार्य सौंपे जाते हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक विकास एवं सामाजिक आय से सम्बन्धित योजनाओं के

निर्माण एवं निष्पादन का कार्य भी राज्य सरकारों द्वारा निगमों को प्रदान किया जा सकता है। निगमों के कार्य, शक्तियां एवं सीमा क्षेत्र (भौगोलिक) तथा स्वायत्तता नगर पंचायतों व नगर परिषदों की तुलना में अधिक व्यापक होते हैं।74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा संवैधानिक दर्जा प्राप्त उपरोक्त तीन नगरीय निकायों-नगर पंचायत, नगर पालिका, नगर परिषद् एवं नगर निगम के अतिरिक्त भारत में तीन प्रकार के अन्य नगरीय निकाय भी हैं। परन्तु इन्हें संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं है। ये निकाय हैं-अधिसूचित क्षेत्र समिति, छावनी मण्डल, एकल उद्देशीय अभिकरण।

13.6 अन्य नगर निकाय

आईये अन्य नगर निकायों के अन्तर्गत हम निम्नाकिंत अधिसूचित क्षेत्र समिति, छावनी मण्डल और एकल उद्देश्यीय अभिकरण के सम्बन्ध में अध्ययन करते हैं-

13.6.1 अधिसूचित क्षेत्र समिति

नवीन विकासशील शहरों अथवा पर्यटन स्थलों एवं सांस्कृतिक या ऐतिहासिक महत्व रखने वाले छोटे नगरों एवं कस्बों में, जहाँ राज्य सरकार यह अनुभव करती है कि वहाँ नगर पालिका स्थापित नहीं की जा सकती, वहाँ क्षेत्रीय समितियाँ स्थापित की जाती हैं। राज्य सरकार सरकारी गजट में अधिसूचना जारी कर इन समितियों का गठन कर सकती है। इसलिए इन्हें अधिसूचित क्षेत्र समिति कहते हैं। इन पर राज्य के नगरपालिका अधिनियम के केवल वे ही नियम लागू होते हैं, जिन्हें सरकारी गजट में अधिसूचित किया जाता है। सदस्यों की संख्या का निर्धारण भी राज्य सरकार द्वारा ही किया जाता है। इन समितियों के सदस्य प्रायः सरकार द्वारा ही मनोनीत होते हैं तथा इन सदस्यों में से ही राज्य सरकार द्वारा सभापति एवं उपसभापति की नियुक्ति करती है। उड़िसा में ऐसे क्षेत्रीय समितियों की संख्या सर्वाधिक है।

13.6.2 छावनी मण्डल

छावनी मण्डल केन्द्र सरकार द्वारा नियंत्रित संस्था होती है। इसका तात्पर्य यह है कि छावनी मण्डल के संचालन पर केन्द्र सरकार के सुरक्षा विभाग का नियंत्रण होता है। इसके संचालन में राज्य सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है। भारत में छावनी मण्डल की व्यवस्था ब्रिटिश शासन के दौरान ही 'छावनी मण्डल अधिनियम 1924'के द्वारा स्थापित हुआ था। इसके पश्चात सन् 1956 में इसे संशोधित किया गया। वर्तमान समय में भारत में लगभग 62 छावनी मंडल हैं।

संविधान की सातवीं अनुसूची में संघीय सूची की तीसरी प्रविष्टी में छावनी मण्डल के गठन, परिसीमन, शक्तियों तथा स्थानीय स्वशासन का प्रावधान है। छावनी मण्डल की स्थापना ऐसे स्थानों पर की जाती है, जहाँ सेना छावनी में रहती है। ऐसे स्थानों पर सेना की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु छावनी के आस-पास बाजार एवं असैनिक बस्तियाँ विकासित हो जाती हैं। अतः सैनिक छावनियों के निकट विकसित स्थानों पर स्थानीय प्रशासन को संचालित व नियंत्रित करने हेतु छावनी मण्डल स्थापित किए जाते हैं। अधिकतर छावनियाँ बड़े-बड़े नगरों के निकट होती हैं जैसे लखनऊ, आगरा, वाराणसी आदि में इस प्रकार की छावनियाँ देखी जा सकती हैं।

छावनी मण्डल में आधे सदस्य सेना के अधिकारी व आधे सदस्य असैनिक नागरिक होते हैं जो निर्वाचन के द्वारा सदस्य बनते हैं।छावनी मण्डल के सदस्यों की संख्या प्रायः 03 से 15 तक होती है। छावनी मंडल का अध्यक्ष/सभापति सैनिक छावनी का सर्वोच्च अधिकारी होता है तथा उपसभापति का निर्वाचन असैनिक नागरिकों

में से किया जाता है। निर्वाचित असैनिक सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष है जबकि सैनिक अधिकारियों का कार्यकाल उनके पद पर बने रहने तक रहता है।

13.6.3 एकल उद्देश्यीय अभिकरण

नगरीय प्रशासन में केवल किसी एक विशिष्ट उद्देश्य को पूरा करने के लिए बनाये जाने वाले संगठनों को एकल उद्देशीय अभिकरण कहते हैं। इन अभिकरणों को पदत्त शक्तियों की सीमा क्षेत्र तक ये अभिकरण स्वायत्त होते हैं। इनके आय के स्त्रोत भी पृथक होते हैं। इन अभिकरणों की स्थापना के पक्ष में तर्क दिया जाता है कि कुछ समस्याएं ऐसी होती हैं, जो नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण तेज़ी से बढ़ रही हैं जैसे जलाशय, मलमूत्र निस्तारण, कचड़े या गंदगी की समस्याएं आदि। नगरपालिकायें व नगर निगम इस प्रकार की सेवाओं के संचालन हेतु आवश्यक प्रशासनिक एवं तकनीकी सुविधाएं जुटा सकने में समर्थ नहीं हो पाती, क्योंकि उनके पास विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी समस्याओं की देख-रेख करनी होती है। ऐसे में एकल उद्देशीय अभिकरण महत्वपूर्ण हो जाते हैं। एकल उद्देशीय अभिकरण कई प्रकार के होते हैं जैसे- विकास प्राधिकरण, नगर विकास न्यास, आवासन मण्डल, बंदरगाह न्यास, इत्यादि।

1. **विकास प्राधिकरण-** विकास प्राधिकरण का गठन राज्य सरकार द्वारा अधिनियम के निर्माण के माध्यम से होता है। बड़े शहरों के विकास हेतु ऐसे प्राधिकरण बनाये जाते हैं जैसे दिल्ली विकास प्राधिकरण, लखनऊ विकास प्राधिकरण, इत्यादि। इनका उद्देश्य क्षेत्र का समुचित, सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित विकास करना होता है। इस हेतु यह योजनाएं तैयार करता है तथा उनका निष्पादन करता है। विकास प्राधिकरण क्षेत्र के विकास हेतु अन्य प्राधिकरणों जैसे नगर परिषद या नगर निगम तथा आवासन मण्डल आदि के साथ भी भगीदारी करता है। इसका एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी है कि यह क्षेत्र की विभिन्न विकास परियोजनाओं में समन्वयक की भूमिका का निर्वाह भी करता है। विकास प्राधिकरण के सभी सदस्य सरकार द्वारा ही मनोनीत होते हैं। प्रायः राज्य का विकास मंत्री या राज्यमंत्री इसका अध्यक्ष होता है। इसके अन्य सदस्य सामान्यतः सरकारी अधिकारी होते हैं।
2. **नगर विकास न्यास-** महानगरों में क्षेत्रों के विकास हेतु विकास प्राधिकरण बनाए जाते हैं। इसी तर्ज पर महानगरों की अपेक्षा छोटे नगरों में नगर विकास न्यास अथवा सुधार न्यास स्थापित किये जाते हैं। इनकी स्थापना राज्य के विधानसभा द्वारा की जाती है। यह निगमित निकाय होते हैं। जिसका तात्पर्य यह है कि इनकी अपनी मोहर होती है और इनके पास शाश्वत उत्तराधिकार एवं सम्पत्ति क्रय-विक्रय का अधिकार भी होता है। इनके कुछ सदस्य मनोनीत तो कुछ निर्वाचित भी हो सकते हैं। परन्तु मुख्यतः इसमें मनोनीत सदस्य ही होते हैं और सरकारी अधिकारियों की संख्या अधिक होती है। इनका कार्य सड़कों, पार्कों, खुले स्थानों, शौचालयों, बाजारों की व्यवस्था करना, जनता की रहन-सहन की दशा को सुधारना, भवन निर्माण सम्बन्धी नियमों को लागू करना आदि होते हैं। नगर विकास/सुधार न्यास अपने विकास सम्बन्धी कार्य पूरा करने के पश्चात उस क्षेत्र की देख-रेख करने हेतु नगर परिषदों/ निगमों को हस्तांतरित कर देता है।
3. **आवासन मण्डल-** आधुनिक काल में गावों से शहरों की ओर पलायन की प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती जा रही है। इसके कारण शहरों में जनसंख्या का दबाव भी निरन्तर बढ़ रहा है। अतः शहरवासियों को आवास सम्बन्धी अनेक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। जैसे-महंगे भूखण्डों व किरायों की ऊची दरों आदि के कारण झुग्गी-झोपड़ियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। इस समस्या के समाधान हेतु सरकार के द्वारा बड़े शहरों में आवासन मण्डल स्थापित किए जाते हैं, जो नगरों में व्यवस्थित एवं

पर्यावरण की दृष्टि से स्वच्छ मकानों का निर्माण कर पानी, बिजली, ड्रेनेज आदि की सुविधाओं से युक्त कॉलोनियों का निर्माण कर मकानों की नीलामी द्वारा विक्रय करते हैं, साथ ही किराया-क्रय पद्धति के द्वारा उन लोगों को मकान देने की व्यवस्था करते हैं जो मकान की एकमुस्त राशि नहीं दे सकते। आवासन मण्डल के सदस्य भी सरकार द्वारा ही मनोनीत होते हैं।

4. **टाउनशिप-** टाउनशिप ऐसे क्षेत्र में स्थापित किए जाते हैं, जिनका विकास औद्योगिक नगर के रूप में होता है।जैसे-भिलाई, जमशेदपुर, बोकारो, सिन्दरी, तालचेर, आदि। ऐसे औद्योगिक नगरों में उन्हीं उद्योगों में कार्यरत कर्मचारी व अधिकारी निवास करते हैं तथा उनकी आवासीय बस्तियाँ बस जाती हैं। अतः इन स्थानों के स्थानीय प्रशासन के संचालन हेतु टाउनशिप का निर्माण किया जाता है। टाउनशिप उस क्षेत्र में पानी, बिजली, शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन, बाजार आदि की व्यवस्था करता है। सम्बन्धित उद्योगों के द्वारा ही इस हेतु वित्तीय व्यवस्था किया जाता है। ये टाउनशिप सरकार से भी अनुदान प्राप्त करते हैं। टाउनशिप का अध्यक्ष उद्योगों द्वारा मनोनीत होता है। अधिकांश सदस्य भी उद्योगों द्वारा ही मनोनीत होते हैं। कुछ निर्वाचित व कुछ सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य भी होते हैं। इन क्षेत्रों के नियंत्रण व पर्यवेक्षण हेतु सरकार द्वारा प्रशासक की नियुक्ति की जाती है।
5. **बंदरगाह न्यास-** बंदरगाह न्यास की स्थापना समुद्र के किनारे उन स्थानों पर की जाती है जहाँ बंदरगाह बने हुए हैं। वहाँ रह रहे नागरिकों की सुविधा हेतु स्थानीय स्वशासन की संस्था के रूप में बंदरगाह न्यास की स्थापना की जाती है जैसे-विशाखापट्नम पोर्ट ट्रस्ट, कोचीन पोर्ट ट्रस्ट, आदि। पोर्ट ट्रस्ट अथवा बंदरगाह न्यास का कार्य बंदरगाहों पर साफ-सफाई की व्यवस्था, समान उतारने-चढ़ाने की व्यवस्था, गोदाम की व्यवस्था सुनिश्चित करना तथा यात्रियों को सुविधा प्रदान करना होता है। पोर्ट ट्रस्ट का अध्यक्ष अथवा सभापति सरकार द्वारा मनोनीत सरकारी अधिकरी होता है। अन्य सदस्यों में से कुछ सरकार द्वारा मनोनीत तथा कुछ व्यापारियों द्वारा निर्वाचित होते हैं।

13.7 चौहतरवें संविधान संशोधन अधिनियम की व्यवस्थाएं

चौहतरवें संविधान संशोधन अधिनियम की निम्नांकित व्यवस्थाऐं हैं। आईये विस्तार से इनका अध्ययन करते हैं-

1. **सदस्य एवं पीठासीन अधिकारी-** नगर स्थानीय इकाइयों में तीन प्रकार के सदस्य होते हैं- निर्वाचित, मनोनीत तथा पदेन।नगर स्थानीय निकायों में मनोनीत अथवा पदेन सदस्य के रूप में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने वाले सदस्यों के अतिरिक्त अन्य सभी सदस्य स्थानीय निकाय के निर्वाचन क्षेत्रों, जिन्हें वार्ड कहा जाता है, से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने जाते हैं।

   मनोनीत सदस्य वे सदस्य होते हैं जिन्हें राज्य विधान-मण्डल, विधि द्वारा, प्रतिनिधित्व प्रदान करती है। ऐसे व्यक्तियों को मनोनीत किया जाता है जिन्हें नगरपालिका प्रशासन में विशेष ज्ञान अथवा अनुभव प्राप्त हो। ऐसे सदस्यों को स्थानीय निकायों की चर्चाओं में भाग लेने का अधिकार तो होता है, परन्तु मत देने का कोई अधिकार नहीं होता।

   राज्य विधान मण्डल, विधि निर्माण द्वारा, निम्न प्रकार के व्यक्तियों को पदेन प्रतिनिधित्व प्रदान कर सकता है- लोक सभा और विधान सभा के सदस्यों को उन निकायों में, जिनकी सीमाओं में उनके चुनाव-क्षेत्र पूर्ण अथवा आंशिक रूप में पड़ते हों; राज्य सभा और विधान परिषद के सदस्यों को, उन स्थानीय निकायों में जिनकी सीमाओं में वे मतदाता के रूप में पंजीकृत हों; तथा ऐसी समितियों के पीठासीन अधिकारी, जिनका प्रावधान राज्य विधान-मण्डल ने किसी भी नगर क्षेत्र के लिये किया हो।

प्रत्येक नगर स्थानीय निकाय में पीठासीन अधिकारी की व्यवस्था होती है, परन्तु उनके निर्वाचन की विधि के सम्बन्ध में राज्य विधान-मडण्ल द्वारा निर्णय लिया जाता है।

2. **स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन-** लोकतंत्र को तभी सफल बनाया जा सकता है जब निर्वाचन स्वतंत्र और निष्पक्ष हो। इसलिए नगर स्थानीय निकायों के स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन हेतु राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना की व्यवस्था की गयी है। एक ही राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा ग्रामीण और नगरीय, दोनों स्थानीय निकायों का निर्वाचन सम्पन्न कराया जाता है।
3. **वार्डों की समितियाँ-** 74वें संविधान संशोधन में नगर स्थानीय निकायों में वार्डों की समितियों के गठन का निर्देश देखने को मलता है। ऐसी समितियाँ उन स्थानीय निकायों के क्षेत्रों में गठित की जाती हैं, जिनकी जनसंख्या तीन लाख अथवा उनसे अधिक हो। प्रत्येक वार्डों की समिति में नगर स्थानीय इकाई की सीमा के अंतर्गत अवस्थित एक या अधिक निर्वाचन वार्ड हो सकते हैं। प्रत्येक वार्डों की समिति का गठन, उसकी सीमाएं तथा उसके स्थानों को भरे जाने की विधि 74वें संशोधन में राज्य विधान मण्डल के निर्णय पर छोड़ दिया गया है। परन्तु यह संशोधन इतना अवश्य स्पष्ट करता है कि नगर स्थानीय निकाय का वह सदस्य, जो उन वार्डों की समिति के क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता हो, स्वतः ही उस वार्ड समिति का प्रतिनिधि हो जाएगा और उस वार्ड की समिति का पीठासीन अधिकारी भी होगा। जहाँ इस प्रकार के सदस्य दो या दो से अधिक होगें, वहाँ वार्डों की समिति उनमें से किसी एक को पीठासीन अधिकारी निर्वाचित करेगी।

   उपरोक्त के अतिरिक्त राज्य विधान मण्डल किसी अथवा सभी नगर स्थानीय निकाय क्षेत्रों के लिए अन्य प्रकार की समितियों की स्थापना भी कर सकता है। इस प्रकार की समितियों के पीठासीन अधिकारी ही इस स्थानीय निकाय के पदेन सदस्य होते हैं, जिनके क्षेत्र में वो समितियाँ स्थित होती हैं।
4. **आरक्षण-** 73वें संशोधन के समान 74वाँ संविधान संशोधन में भी नगर स्थानीय निकायों में अनुसुचित जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। तदानुसार, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए प्रत्येक नगर स्थानीय निकाय में भी सीधे निर्वाचन से भरे जाने वाले कुल स्थानों में से उतने स्थान आरक्षित होंगे, जो अनुपात उस निकाय क्षेत्र में, उनकी जनसंख्या का कुल जनसंख्या से है। पिछड़े वर्गों के पक्ष में भी सीधे भरे जाने वाले स्थान में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। परन्तु आरक्षण की विधि राज्य विधान मण्डलों पर छोड़ दी गई है, क्योंकि 74वें संशोधन के पारित होने के समय पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण पर उनकी नीति न बन सकी थी।

   जहाँ तक महिलाओं का प्रश्न है, पत्येक स्थानीय निकाय में सीधे भरे जाने वाले स्थनों में से एक तिहाई स्थान महिलाओं लिए आरक्षित कर दिए गए हैं। इसे कार्यरूप देने के लिए अनुसूचित जातियों के कुल आरक्षित स्थानों में से एक तिहाई, अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित स्थानों में से एक तिहाई, पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित स्थानों में से एक तिहाई तथा अनारक्षित स्थानों में से एक तिहाई क्रमशः उसी वर्ग के महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे, अर्थात अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़े-वर्ग तथा अनारक्षित।

   यह निश्चित करने के लिए कि वही वार्ड बार-बार होने वाली निर्वाचनों में एक ही वर्ग के लिए आरक्षित न हो जाए, 74वाँ संविधान संशोधन आरक्षण के सिद्धान्त को चक्रानुक्रम में कार्यान्वित करने का निर्देश देता है।

सदस्यों के समान नगर स्थानीय निकायों के पीठासीन आधिकारियों के पदों में भी अनुसूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है, परन्तु आरक्षण की विधि का निर्णय राज्य विधान मण्डल पर छोड़ दिया गया है।

5. **कार्यकाल-** 74वें संविधान संशोधन के अनुसार, प्रत्येक नगर स्थानीय निकाय का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित कर दिया गया है। इस अवधि से अधिक इसका विस्तारण नहीं किया जा सकता। 05 वर्ष का कार्यकाल पूर्ण होने से पूर्व ही नए निर्वाचन कराना आवश्यक है। 05 वर्ष पूर्ण होने से पूर्व ही नगर स्थानीय निकायों को विघटित किए जाने की व्यवस्था है। 74वाँ संविधान संशोधन विघटन के कारणों का उल्लेख नहीं करता, वरन् मात्र यह कहता है कि ''विघटन से पूर्व, नगरपालिका को सुनवाई का तर्कसंगत अवसर प्रदान किया जायेगा।''यदि किसी स्थानीय निकाय को विघटित किया जाता है, तो विघटन की तिथि से 06 माह के अन्दर नये निर्वाचन सम्पन्न किए जाने चाहिए तथा नव-निर्वाचित निकाय पूर्व निकाय, जिसके विघटन के कारण नया निर्वाचन हुआ है, के अवशेष कार्यकाल का ही उपयोग कर सकेगा। परन्तु यदि पूर्ववर्ती निकाय का कार्यकाल 06 माह से कम बचा है, तो नव-निर्वाचित निकाय पूरे 05 वर्ष के कार्यकाल का उपभोग करेगा।

6. **अधिकार तथा दायित्व-** अब तक नगर स्थानीय निकाय अपने अधिकारों के लिए पूर्णतयः अपनी राज्य सरकारों पर ही निर्भर थे। परन्तु 74वें संविधान संशोधन ने पहली बार उनके अलग अधिकार-क्षेत्र की व्यस्था की है। इस अधिकार-क्षेत्र में उन्हें निम्नांकित दायित्व दिए गए हैं-आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजनाऐं बनाने कातथा उन कार्यों के सम्पादन और उन योजनाओं के कार्यान्वयन का जो उन्हें सौंपी जायें (बारहवीं अनंसूची में दिये कार्यों को सम्मिलित करते हुए)।

इनके अधिकार-क्षेत्र में जो मामले सौंपे गये हैं, उनका उल्लेख 12वीं अनुसूची में दिया गया है, जिसे कि 74वें संविधान संशोधन के माध्यम् से भारतीय संविधान में जोड़ा गया है। इस अनुसूची में निम्नलिखित 18 विषय हैं-नगर नियोजन,भूमि प्रयोग का नियमन तथा भवनों का निर्माण,आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए नियोजन,मार्ग तथा पुल का निर्माण,गृह, औद्योगिक तथा वाणिज्यिक कार्यों के लिए जलापूर्ति,जन स्वास्थ्य, स्वच्छता, मल-सफाई तथा ठोस अपशेष प्रबन्धन,अग्नि शमन सेवाऐं,नगर वानिकी, पर्यावरण की सुरक्षा तथा पारिस्थितिकी मामलों की प्रोन्नति,समाज के दुर्बल वर्गों के, जिसके अन्तगर्त अपंग एवम् मानसिक रूप से अविकसित सम्मिलित हैं, हितों की रक्षा,झुग्गी-झोपड़ियों का सुधार तथा उच्चीकरण,नगर गरीबी उन्मूलन,पार्क, बगीचे, खेल-कूद के मैदान, सुख-साधन, सुविधाएं,सांस्कृतिक, शैक्षिक तथा सौन्दर्यपरक आयामों की प्रन्नोति,दफन तथा कब्रिस्तान, दाह संस्कार तथा शमशान तथा विद्युत शव दाहगृह,कांजी हाऊस, पशुओं पर निर्दयता पर रोक,महत्वपूर्ण सांख्यिकी, जिसमें जन्म एवं मृत्यु का पंजीकरण सम्मिलित है,सार्वजनिक सुख-साधन, जिसके अंतर्गत मार्ग, प्रकाश, गाड़ी खड़ी करने का स्थान, बस स्टॉप तथा जन- सुविधाऐं भी सम्मिलित हैं और पशु-बध स्थलों तथा चर्म शोधनशालाओं का नियमन।

7. **वित्तीय स्रोत तथा वित्तीय नियंत्रण-** इन निकायों के वित्तीय आधार सुदृढ़ करने के उद्देश्य से 74वाँ संविधान संशोधन राज्य विधान-मण्डल को विधि-निर्माण करने की सत्ता प्रदान करता है ताकि-

   - नगर स्थानीय निकायों को करों, शुल्कों, मार्ग करों तथा फीस आरोपित करने की सत्ता प्राप्त हो सके।

- नगर स्थानीय निकायों को राज्य सरकार द्वारा आरोपित तथा एकत्रित करों, शुल्कों, मार्ग करों, तथा फीस प्रदान की जा सके, तथा
- राज्य के संचित कोष से, सहायक अनुदान देने की व्यवस्था की जा सके।

राज्य वित्त आयोग को वित्तीय संसाधन संस्तुत करने का कार्य प्रदान कर दिया गया है। यह आयोग निम्न के बारे में सिद्धान्तों का निर्धारण करेगा-राज्य तथा नगर निकायों के मध्य राज्य सरकार द्वारा आरोपित करों, शुल्कों, मार्ग करों, तथा फीस से प्राप्त शुद्ध आय के वितरण की व्यवस्था तथा इस आय का विभिन्न स्तरों के स्थानीय निकायों के मध्य वितरण; उन करों, शुलकों, मार्ग करों तथा फीस का निर्धारण, जो कि नगर स्थानीय निकायों द्वारा आरोपित अथवा विनियोजित किये जा सकते हों; तथा राज्य के संचित कोष से स्थानीय निकायों को सहायक अनुदान देने की व्यवस्था।

अधिक वित्तीय स्रोतों का अर्थ है कि इन पर कठोर वित्तीय नियंत्रण भी स्थापित किया जाए ताकि धन का दुरूपयोग न हो सके। अतः 74वाँ संशोधन राज्य विधान मण्डल को विधि द्वारा नगर स्थानीय निकायों के लेखों का अनुरक्षण, तथा इन लेखों के अंकेक्षण के बारे में प्रावधान बनाने का अधिकार प्रदान करता है।

8. **अपवाद-** 74वें संशोधन के प्रावधान भारतीय संविधान के अनुच्छेद-244 के अंतर्गत गठित अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजातीय क्षेत्रों तक लागू नहीं होंगें, जब तक कि संसद विशेष रूप से इसके प्रावधानों को इन क्षेत्रों पर लागू न कर दे। यह व्यवस्था इन क्षेत्रों में आवासित स्थानीय शासन की परम्परागत संरचना को बनाए रखने तथा उनकी रक्षा के लिए की गयी है, जिसे कि 74वें संविधान संशोधन के द्वारा छेड़ना उचित नहीं माना गया।

   74वाँ संशोधन की व्यवस्थाओं का प्रभाव दार्जिलिंग गोरखा पर्वतीय परिषद् के कार्यों तथा अधिकारों पर भी नहीं पड़ेगा, जिसका गठन पश्चिम बंगाल राज्य के दार्जिलिंग जनपद के पर्वतीय क्षेत्रों के लिए किया गया है।

9. **विकेन्द्रित नियोजन (जनपद स्तरीय एवं महानगर स्तरीय)-** नगर स्थानीय शासन के पुनर्गठन के अतिरिक्त, 74वाँ संविधान संशोधन जनपद तथा महानगर स्तरों पर नियोजन का प्रावधान भी करता है। 74वाँ संशोधन जनपद स्तर पर जनपद नियोजन समिति के गठन की व्यवस्था करता है। इस समिति का गठन तथा स्थानों को भरने की प्रक्रिया राज्य विधान-मण्डल पर छोड़ दी गई है। परन्तु यह व्यवस्था की गई है कि जनपद नियोजन समिति के कुल स्थानों में 4/5 स्थान जिला पंचायत के सदस्यों तथा जनपद में नगर स्थानीय निकायों के सदस्यों से उस अनुपात में निर्वाचित होंगे, जो अनुपात जनपद में ग्रामीण क्षेत्रों तथा नगर क्षेत्रों की जनसंख्या में पाया जाता हो। प्रत्येक जनपद नियोजन समिति का एक अध्यक्ष होगा तथा उसके चयन की विधि राज्य विधान-मण्डल की इच्छा पर छोड़ दी गयी है।

   राज्य विधान-मण्डल, विधि के द्वारा, जनपद नियोजन समिति द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों को निर्धारित कर सकता है, तथापि 74वाँ संशोधन विशेष रूप से इस समिति को दो कार्य प्रदान करता है- जनपद में ग्रामीण तथा नगर स्थानीय निकायों द्वारा बनायी गयी योजनाओं को समेकित करना तथा सम्पूर्ण जनपद की विकास योजना का प्रारूप तैयार करना।

   इस समिति को जनपद की विकास योजना का प्रारूप बनाते समय यह ध्यान रखना पड़ेगा कि ग्रामीण तथा नगर स्थानीय निकायों के मध्य समान हित के मामले, जिसके अंतर्गत स्थानिक नियोजन, जल तथा अन्य भोतिक तथा प्राकृतिक संसाधनों में हिस्सेदारी, आधारिक संरचना का विकास तथा पर्यावरणीय संरक्षण सम्मिलित हैं; उपलब्ध वित्तीय अथवा अन्य संसाधनों के प्रकार तथा उनकी मात्रा; तथा ऐसी

संस्थाओं तथा संगठनों से परामर्श, जैसा कि राज्यपाल निर्धारित करें। एक बार जहाँ जनपद नियोजन समिति ने जनपद की विकास योजना का प्रारूप बना लिया, इसका अध्यक्ष इस योजना को राज्य सरकार के विचारार्थ अग्रसारित करेगा।

74वाँ संविधान संशोधन प्रत्येक महानगर नियोजन समिति की स्थापना का निर्देश देता है। इसका गठन तथा स्थानों को भरने की प्रक्रिया राज्य विधान-मण्डल के निर्णय पर छोड़ दिया गया है। तथापि 74वाँ संशोधन स्पष्ट रूप से यह निर्धारित करता है कि महानगर नियोजन समिति के कम से कम दो-तिहाई सदस्य महानगर क्षेत्र में अवस्थित नगर स्थानीय इकाइयों के निर्वाचित सदस्यों तथा ग्रामीण स्थानीय इकाइयों के अध्यक्षों से उस अनुपात में चुनें जायेंगे, जो अनुपात महानगर क्षेत्र में ग्रामीण और नगर स्थानीय निकायों की जनसंख्या के मध्य हो। इसके अतिरिक्त, राज्य विधान-मण्डल महानगर समिति में केन्द्र तथा राज्य सरकार तथा साथ ही ऐसे संगठनों एवम् संस्थाओं के अधिकारियों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करेगा, जैसा कि वह उचित समझे। महानगर नियेजन समिति का प्रमुख एक अध्यक्ष होगा, जिसके चयन की प्रक्रिया राज्य विधान मण्डल द्वारा निर्धारित किये जाने की व्यवस्था है।

महानगर नियोजन समिति को सम्पूर्ण महानगर क्षेत्र की विकास योजना का प्रारूप बनाने का दायित्व सौंपा गया है। नियोजन तथा समन्वयन के कार्यों का निर्धारण राज्य विधान मण्डल द्वारा किया जायेगा। विकास योजना का प्रारूप बनाते समय महानगर नियोजन समित को अग्रलिखित को ध्यान में रखना पड़ेगा-महानगर क्षेत्र ग्रामीण तथा नगर स्थानीय निकायों द्वारा बनायी गयी योजनायें; नगर तथा ग्रामीण स्थानीय निकायों के मध्य समान हित के मामले, जिसके अंतर्गत क्षेत्र का समन्वित स्थानिक नियोजन, आधारिक संरचना का समन्वित विकास तथा पर्यावरणीय संरक्षण सम्मिलित है; केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित किये गये कुल उद्देश्य एवम प्राथमिकताऐं; तथा महानगर क्षेत्रों में केन्द्र और राज्य सरमाकर के अभिकरणों द्वारा किये जाने वाले व्ययों की मात्रा तथा उनका स्वरूप तथा अन्य वित्तीय अथवा अन्य संसाधनों की उपलब्धता।महानगर नियोजन समिति से यह भी अपेक्षा किया जाता है कि वह राज्य के राज्यपाल द्वारा निर्धारित संस्थाओं और संगठनों से भी परामर्श करेगी।

महानगर नियोजन समिति द्वारा महानगर विकास योजना तैयार होने पर इसका अध्यक्ष इसे राज्य सरकार के विचारार्थ प्रेषित कर देगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. 74वें संविधान संशोधन में किन तीन प्रकार के नगरीय निकायों के गठन की व्यवस्था की गई है?
2. संविधान की 12वीं अनुसूची में कितने विषय हैं?
3. नगरपालिकाओं के निर्वाचन के मामले में न्यायालय के हस्तक्षेप पर किस अनुच्छेद द्वारा रोक लगाई गई है?

13.8 सारांश

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि नगरीय स्वशासन की इकाइयों का सही अर्थों में सशक्तिकरण तभी सम्भव हो सका है जब नगरीय स्वशासन को संवैधानिक मान्यता प्रदान करते हुए इसे संविधान में शामिल कर लिया गया। परन्तु संवैधानिक दर्जा प्राप्त होने मात्र से ही नगरीय स्वशासन की इकाइयों को पूर्णरूप से सशक्त की पाना सम्भव नहीं हो सका है क्योंकि वर्तमान में भी इन इकाइयों को जिस स्वयत्तता की आवश्यकता है वह उन्हें प्राप्त नहीं हो सकी है। इसके लिए अभी और भी सुधारों की आवश्यकता है जिसका अध्ययन हम अगली इकाई में करेंगे।

आधुनिक समय में निरन्तर शहरों पर बढ़ते जनसंख्या के दबाव के कारण शहरों में मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्तिहेतु आवश्यक संसाधनों की कमी है। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि इन निकायों को अधिक से अधिक स्वतंत्रता प्रादान की जाए तथा राज्यों के अनावश्यक हस्तक्षेप को कम किया जाए। परन्तु साथ ही यह भी आवश्यक हो जाता है कि इन निकायों पर आवश्यक दृष्टि बनाए रखी जाए, नहीं तो इनके भ्रष्ट हो जाने का खतरा भी बढ़ जाता है।

13.9 शब्दावली

पलायन- एक स्थान से अन्य स्थान को जाना, विकास प्राधिकरण- नगरों के विकास के लिए बनाए गये सरकारी विभाग, टाउनशिप- औद्योगिक नगर,जहाँ उद्योगों से जुड़े लोगों के लिए बसाया गया नगर, विघटन- समाप्त या अलग-अलग करना

13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नगर पंचायत, नगर परिषद् तथा नगर निगम, **2.** 18, **3.** अनुच्छेद-243 (य छ)

13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रदीप सचदेवा, लोकल गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, डोर्लिंग किंडरश्ली (इण्डिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2011
2. जयाल, एन0जी0 और प्रताप भानू मेहता, पॉलिटिक्स इन इण्डिया, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2010
3. प्रदीप सचदेवा, डाइनेमिक्स ऑफ मुनिशिपल गर्वनमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1991
4. बर्थवाल,सी0पी0, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2010
5. जोशी, आर0पी0 और अरूणा भारद्वाज, भारत में स्थानीय प्रशासन, शील सन्स, जयपुर, 1999

13.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. खन्ना, आर0एल0, मुनिसिपल गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्टे"शन इन इण्डिया, मोहिन्द्रा कैपिटल पब्लिसर्श, चंड़ीगढ़, 1967
2. शर्मा, एस0के0 तथा वी0एन0 चावला,मुनिसिपल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डियाः सम रिफलेक्शन्स, इनटर्नेशनल बुक को0, जालंधर, 1975
3. कौशिक, एस0के0, लीडरशिप इन अर्बन गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1986
4. चतुर्वेदी, टी0वी0, सिविक कन्सेसनेश,आई0आई0पी0ए0, नई दिल्ली, 1979

13.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नगर निगम पर एक निबन्ध लिखिए।
2. नगर पंचायत की कार्य, शक्तियाँ एवं उत्तर दायित्व पर प्रकाश डालिए।
3. 74वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।